इन्सान

यज्ञदत्त शर्मा

आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

INSAN

(a novel)

by

Yagya Datt Sharma

Rs. 4.50

Second Edition, 1961

प्रकाशक

रामलाल पुरी

संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

☐

मूल्य

रुपए ४.५०

☐

द्वितीय संस्करण

१९६१

☐

मुद्रक

सैण्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस

दिल्ली-६

प्रिय शर्माजी,

श्री 'राकेश' जी ने आपका उपन्यास 'इन्सान' मुझे दिया था। पढ़ गया हूँ। आपने प्रकाशित होने से पूर्व ही इस पुस्तक के पढ़ लेने का अवसर दिया, इस कृपा के लिए अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

उपन्यास के सम्बन्ध में अपने विचार लिख रहा हूँ।

आपने अपने इस उपन्यास का बीज पंजाब के उस भयंकर उत्पात में रखा है जो भारतीय इतिहास का शायद सबसे काला धब्बा है। आरम्भ में आपने इस काल का बड़ा ही रोमाञ्चकारी वर्णन किया है। आरम्भ का वर्णन बहुत सजीव हुआ है। उस लज्जाजनक उत्पात का वर्णन जब मैं पढ़ रहा था तो दो-एक बार चित्त इतना विक्षुब्ध हुआ कि जी में आया कि पुस्तक बन्द कर दूं।

रमेश और शान्ता तथा कमला और आजाद के चरित्र निस्सन्देह आपने बहुत आकर्षक चित्रित किए हैं.........
रमेश और शान्ता के मिलन के समय आपने मनोविवरणों का प्रदर्शन बड़े ही कौशल और सुन्दर ढंग से किया है।

मैं आपको इस सुन्दर रचना के लिए बधाई देता हूँ। आपमें उपन्यासकार की प्रतिभा है, कथानक के सुकुमार स्थलों को पहचानने की शक्ति है और पात्रों में आदर्श की प्रतिष्ठा करने की योग्यता है।

मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

काशी

आपका
हजारीप्रसाद द्विवेदी

दो शब्द

'इन्सान' उपन्यास का प्रारम्भ भारत-विभाजन से होता है और प्रारम्भ में उसी का चित्रण किया गया है। 'इन्सान' के प्रधान पात्र रमेश बाबू, शान्ता और आजाद भारत में आकर अपने-अपने कार्य पर जुट जाते हैं और फिर उपन्यास से विभाजन की काली छाया एकदम लुप्त हो जाती है। भारत-विभाजन के काले पटल पर यदि कोई चमकदार और प्रकाशमान समस्या रही है तो वह यही है कि 'पुरुषार्थी' रो-रो कर अपनी करुण कहानी कहने के लिए नहीं बैठे, बल्कि वे कर्मठता के पथ पर आरूढ़ होकर उन्नति की ओर अग्रसर हुए हैं। इस प्रकार कुछ आलोचक तथा मेरे सजीव पाठक इस प्रारम्भिक भारत-विभाजन के चित्रण को अनावश्यक भी समझ सकते हैं परन्तु बात वास्तव में यह नहीं है। उपन्यास आद्योपान्त समस्यामूलक है और जिन समस्याओं का स्पष्टीकरण इसमें मैंने करने का प्रयत्न किया है उनका जन्म और विकास बहुत कुछ भारत-विभाजन पर ही आधारित है। उदाहरणस्वरूप आज संसार के राजनैतिक विकास में 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' जैसी प्रतिक्रियावादी संस्था का जन्म लेना, पंजाब में सिक्खों का साम्राज्य स्थापित करने की योजना बनाना इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं जिनका भारत-विभाजन से अप्राथक्यीय सम्बन्ध है। फिर अराजकता का अवसर पाकर भारत में कम्यूनिस्ट पार्टी का वितंडावाद और तोड़-फोड़ की नीति भी इसी विभाजन के फलस्वरूप बलवती हुई। इसी अराजकता में कम्यूनिस्टों ने चीन में साम्राज्य स्थापित किया, बर्मा में विद्रोह किया और इण्डोनेशिया में चिनगारी सुलगाई। इसीलिए भारत की वर्तमान समस्याओं पर एक दृष्टि डालने के लिए यह मैंने आवश्यक समझा कि इस उपन्यास का प्रारम्भ भारत-विभाजन से ही करूँ।

उपन्यास में जितने भी पात्र मैंने दिए हैं वे सब काल्पनिक हैं। मेरे कुछ पाठक उपन्यास को पढ़कर शायद यह भी अनुभव करें कि मेरे इस उपन्यास में कम्यूनिस्ट पार्टी का विरोध किया गया है, परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता। जहाँ तक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, मेरे उपन्यास का नायक रमेश स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति है, जो मानवता का सच्चा प्रतीक है और प्रत्येक मानव को प्रेम करता है। वह वीर है, साहसी है, कर्तव्यपरायण है और उसमें कार्य-कुशलता की क्षमता है। अन्य पात्रों के विषय में यहाँ विस्तारपूर्वक लिखना व्यर्थ ही है क्योंकि पात्रों के लिए तो मैंने उपन्यास ही लिखा है। कहानी कहकर केवल दिल बहलाने के लिए मैं नहीं आया। मेरे पात्र चेतन अवस्था में रहते हैं, अवचेतन या अचेतन का प्रभाव उन पर नहीं है।

'इन्सान' आज के आदर्श भारतीय मानव का प्रतीक है जिसमें आदर्शवाद के लिए यथार्थवाद का गला नहीं घोंटा गया और न ही छिछोरे यथार्थवाद को लेकर भारतीय आदर्शों की ही मिट्टी खराब की गई है।

विभाजन के समय भारत की सोई हुई दानव-प्रवृत्तियाँ किस प्रकार देश और विदेशी कुप्रभावों का बल पाकर जाग्रत हो उठीं और उनके हाथों में मानव किस प्रकार मदारी के बन्दर की भांति नाचा, इसका सजीव चित्रण इस उपन्यास में दिया गया है, राष्ट्रीय तथा सामाजिक उथल-पुथल के क्षेत्र में मानवता के अटल सिद्धान्तों को लेकर 'इन्सान' का निर्माण किया है, सहानुभूति और सद्भावना के साथ भारत और पाकिस्तान के बिखरे हुए विस्तृत क्षेत्र में से यों ही कुछ सुशिक्षित और सभ्य पात्र उठा लिए हैं जिनका लक्ष्य हर सम्भव परिस्थिति में मानवता की रक्षा करना है। पारस्परिक भेदभाव और घृणा को आश्रय न देकर ऐसी विनाशक शक्तियों के प्रति विद्रोह किया गया है।

मेरा 'इन्सान' क्रान्तिकारी है, प्रगतिशील है, परन्तु निर्माण के पथ पर, खण्डहरों में पुष्पों के बीज बोकर नहीं, उद्यानों में लहलहाती हुई खेती उगाकर। बुद्धि की कसौटी पर कसकर वह न अविश्वास के सामने मस्तक झुकाता है और न ही विदेशी प्रगतिवाद के हाथों की कठपुतली ही बन सकता है। उसका अपना मार्ग है और अपनी समस्याओं को सुलझाने के अपने रास्ते। वह सबकी अच्छाइयों को अपनाकर अपने सांचे में ढालता है।

भारत के इस विश्रृंखल काल में मेरा 'इन्सान' भारतीय जीवन को श्रृंखला-बद्ध करने में समर्थ होगा—यह मेरा विश्वास है।

यज्ञदत्त शर्मा

इ न्सा न

१

लाहौर की गली-गली और बाजार-बाजार में मानव-रक्त से होली खेली जा रही थी। इन्सान जानवर बन गए थे। हिन्दुत्व और मुसलमानियत के नाम पर 'हर-हर महादेव' और 'अल्लाह हो अकबर' के पवित्र नारे मानवता से गिरे हुए व्यक्ति स्वार्थ और अंग्रेजी शासन के फूट-पूर्ण जाल में फँसकर इतने ऊँचे स्वरों से लगा रहे थे कि जितने सम्भवत: महमूद गजनवी और नादिरशाह के समय में भी न लगे हों। प्रत्येक व्यक्ति पागल था, दीवाना था। एक विचित्र दशा बन गई थी शहर की। धर्म का भूत मानवता के सिर पर चढ़ कर बोल रहा था और शासन की बागडोरें शहर के छटे हुए गुण्डों के हाथों में आ चुकी थीं। आवारागर्दी का बोलबाला था। ये गुन्डे ही निर्बलों की सम्पत्ति की रक्षा के लिए चौकीदार बन गए थे। चारों ओर आतंक छाया हुआ था। हिन्दुओं की बस्ती में मुसलमान और मुसलमानों की बस्ती में हिन्दू प्राणों को हथेली पर लेकर ही जा सकते थे। मनुष्य कहे जा सकने वाले हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्बन्ध आपस में विच्छेद हो गए थे। ब्रिटिश सरकार ने बागडोरें ढीली कर दी थीं। शासन-व्यवस्था का ढाँचा छिन्न-भिन्न हो चुका था।

भारत-पाकिस्तान के सीमा-कमीशन ने अपना नि 'य सुना दिया। निर्णय का सुनाना था कि भारत और पाकिस्तान में रक्त की नदियाँ बह गईं। मानव दानव बन गया। निर्दयता पराकाष्ठा को पहुँच गई। दो-दो और चार-चार वर्ष के बच्चों को पैर-पर-पैर रखकर हत्यारे धर्म के पागल दीवानों ने चीर डाला। फूल से सुकुमार भी के लालों को पिशाचों ने उठा-उठा कर पृथ्वी पर इस प्रकार पटक दिया, जैसे धोबी पत्थर पर मैले कपड़ों को छाँटता है। नन्हीं-नन्हीं बालिकाओं को केशों से पकड़कर दीवारों में दे मारा गया। नादान और अनजान भारत के सपूतों को, भारत की भावी आशाओं को, भुनगों की भाँति कुचल दिया गया। निर्दयता का केवल यहीं पर अन्त नहीं हुआ। नारी-जाति का जो अपमान हुआ वह भारत और पाकिस्तान के इतिहास

में वह कलंक बनकर रह गया है कि जिसका धब्बा संभवत: युग-युग तक आने वाली पीढ़ियाँ अपने रक्त से धोकर भी न मिटा सकेंगी। भोली और सुकुमार बालिकाओं पर मन-माना बलात्कार हुआ, अत्याचार हुआ। बालिकाओं को अंग-भंग करके, हाथों को पीछे बाँधकर, नंगी मर्यादा विहीन करके जुलूस निकाले गए। उन्हें देखकर दानवता अट्टहास कर रही थी, पिशाचिता मन-मग्न होकर खिलखिला रही थी, निर्लज्जता अपने पराक्रम पर पुलकायमान थी और मानवता भयभीत होकर न जाने किस कोने में जाकर छुप गई थी ? मानवता लज्जित थी दानवता के सम्मुख।

रात्रि का समय था, चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार था। शहर में कर्फ्यू लगा था। बिजली के तार काट दिए गए थे और कहीं पर भी प्रकाश की एक रेखा दिखलाई नहीं दे रही थी। कभी-कभी कहीं पर कुछ मशालें चमकती दिखलाई दे जाती थीं। रमेश बाबू अपने मकान की छत पर खड़े यह दृश्य देख रहे थे। इतने में उन्होंने देखा कि वे मशालें एक मकान के पास पहुँचीं और थोड़ी ही देर पश्चात् उस मकान से चिंगारियाँ निकलने लगीं। रात्रि की शांति में एक भीषण चीत्कार हुआ और वे धीरे-धीरे एक हुल्लड़बाजी में विलीन-सा होने लगा। 'अल्लाह हो अकबर' के नारे लगे और उन्हीं के बीच धीमी-धीमी चीख-पुकारें भी सिमटकर रह गई।

रमेश बाबू कॉलेज के छात्र थे, एम० ए० के अंतिम वर्ष में पढ़ रहे थे। अनारकली बाजार में दूसरी मंजिल पर एक कमरा उनके पास किराए पर था, उसी में वह रहते थे। कुछ देर तक रमेश बाबू इस काण्ड को देखते रहे। मशाल वालों का दल उस जलने वाले मकान से आगे बढ़कर दूसरे मकान पर आया और थोड़ी देर में उस मकान से भी लपटें निकलने लगीं। कुछ समय तक रमेश बाबू सोचते रहे कि सम्भवत: अब भी पुलिस आकर इस काण्ड को रोकने का प्रयत्न करे, परन्तु यह विचार व्यर्थ ही निकला। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा कि पुलिस वालों का एक दल भी उन्हीं गुण्डों के साथ था और वह उन्हें उनके कार्य में प्रोत्साहन दे रहा था। यह देखकर रमेश बाबू के रोंगटे खड़े हो गए। उन्हें अचानक ध्यान आया कि हो-न-हो यही दशा आज समस्त शहर की हो। यह ध्यान आते ही उनके बदन में बिजली-सी दौड़ गई। उनका सिर चकराने लगा। वह किंकर्तव्यविमूढ़ से वहाँ से चलने के लिए उद्यत हो गए।

शहर की दशा कितने ही दिनों से बिगड़ी हुई थी। इसीलिए इधर-उधर बहुत ध्यानपूर्वक जाना होता था। रमेश बाबू ने सफेद सिलवार पहनी और उस पर काली अचकन। सिर पर एक टर्किश कैप लगाई और फिर दियासलाई के प्रकाश से शीशे के सामने खड़े होकर अपने ऊपर दृष्टि डाली। अब वह मुसलमान थे, उन्हें हिन्दू समझने का भ्रम किसी को नहीं हो सकता था। फिर उन्होंने अपने कमरे का द्वार खोला और धीरे-धीरे सड़क पर उतर गए। नीचे उतर कर उस कमरे की ओर एक बार डबडबाई

आँखों से देखा और फिर निश्वास छोड़कर कमरे को नमस्कार किया, "विदा...... विदा...... विदा......"

रमेश बाबू बड़ी सावधानी से पग आगे की ओर बढ़ा रहे थे। उनके हृदय में रह-रह कर शान्ता की स्मृति जागृति हो रही थी। वह विचार रहे थे कि कहीं उनके पहुँचने से पूर्व ही वहाँ सब कुछ स्वाहा न हो चुका हो। मार्ग का दृश्य बड़ा भयानक था। जिधर भी दृष्टि जाती थी मकानों से अंगारे उछलते दिखलाई दे रहे थे। कितने ही प्रकार की चीत्कार-ध्वनियाँ रमेश बाबू के कानों में गूँज कर रह जाती थीं। सड़क के बीच और किनारों पर छुरों की नोकों के ग्रास बने मानव सिसक रहे थे, कराह रहे थे और कुछ पड़े थे अचेत, मौन और शान्त। रमेश बाबू बड़ी ही निर्भीकता से आगे बढ़ रहे थे अपने को उन मशाल वाले शिकारी कुत्तों की दृष्टि से बचाते हुए। अचानक उनमें से किसी की दृष्टि उन पर पड़ गई। एक झुंड़-का-झुंड़ गुण्डों का उनकी ओर लपका, परन्तु उनके वस्त्रों को देखकर एक दम ठिठक गया। उनमें से एक आगे बढ़ कर बोला, "मियाँ तुम कौन हो और ऐसी रात में कहाँ जा रहे हो?"

"मैं कौन हूँ, यह तुम लोग मेरी शक्ल देख कर अंदाजा नहीं लगा सकते? खैर, यह वक्त इस तरह बर्बाद करने का नहीं है, ये ही दो चार दिन हैं। हमें जो कुछ करना है, कर गुजरना चाहिए। अभी-अभी एक बीस काफिरों का झुंड़ दाँई ओर वाली सड़क से गया है, तुम लोग यदि जल्दी से उनका पीछा कर सको तो उन्हें पकड़ सकते हो। उनके पास बीस हजार रुपया नकद है। देर करने पर वे लोग लापता हो जाएँगे। अगर आप लोग मेरे इस काम को सँभाल लें तो मुझे दूसरे काम पर जाना है। वहाँ एक नौजवान इस्लामी-जाँबाजों का दस्ता मेरी राह देख रहा होगा।" रमेश बाबू ने गम्भीरतापूर्वक साहस के साथ कहा। उनकी मुद्रा का गाम्भीर्य उन व्यक्तियों को रमेश बाबू के धर्म के विषय में सशंकित न कर सका।

रमेश बाबू की बात सुनकर एक काला मुश्टंडा, जो इन गुण्डों का नायक प्रतीत होता था, आगे बढ़ा और रमेश बाबू की पीठ ठोक कर बोला, "शाबाश नौजवान! तुम अपने काम पर जाओ, यहाँ का काम हम सँभाल लेंगे। उन काफिरों की क्या मजाल जो हमारे खूँखार पंजों से छूटकर जा सकें।" यह कहकर उन्होंने 'अल्लाह हो अकबर' का नारा लगाया और सब के सब दाँई ओर जाने वाली सड़क पर, जो कि रमेश बाबू ने बतलाई थी, पागलों की भाँति आँखें मींचकर भाग लिए।

उनके कुछ दूर चले जाने पर रमेश बाबू ने निर्भीक-श्वास ली और तीव्र गति से अपने लक्ष्य की ओर चल दिए। मार्ग भयानक था। रात्रि के घोर अंधकार में कहीं पर बिजली की बत्ती का पता नहीं था। चारों ओर होने वाला हा-हाकार और चीत्कार हृदय को दहला देता था। रमेश बाबू स्थिरता और गम्भीरता के साथ बराबर आगे

बढ़ रहे थे। उनके हृदय में साहस था और शान्ता की प्रेम-स्मृति उनकी चाल में विद्युत की गति का संचार कर रही थी। एक बार उन्हें ध्यान आया कि वह इस कठिन समय में आजाद से सहायता लें, परन्तु आजाद के मुहल्ले में पहुँचना आज असम्भव था। सम्भवत: उसके मकान पर पहुँचने के पूर्व ही उनके बदन की बोटी-बोटी उड़ा दी जाए और यदि वह आजाद के पास तक पहुँच भी गए तो तब भी क्या आशा है कि उनका वह साथी आज भी मानवता के उन्हीं सिद्धान्तों पर अटल होगा, जिन पर रहने की रमेश बाबू उससे आशा रखते थे। क्या इस्लामी-दीवानगी का भूत उनके सिर पर सवार नहीं हो गया होगा ?

विचारों की तन्मयता और शान्ता की चिन्ता में घबराए से रमेश बाबू हवा की गति से शान्ता की कोठी की ओर बढ़ रहे थे। मन चाहता था कि वह किसी तरह उड़कर शान्ता के पास पहुँच जाएँ। मार्ग में इधर-उधर के भयानक दृश्यों से आँखें मींचे, सिर को हथेली पर रखे, रमेश बाबू आगे बढ़ रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि आस-पास में क्या हो रहा था ? जिस समय वह शान्ता की कोठी के पास पहुँचे तो देखा कि चारों ओर लपटें-ही-लपटें दिखलाई दे रही थीं। कहीं-कहीं पर प्रबल चीत्कार भी सुनाई दे रहा था, परन्तु उस समय उनसे कोई भी अनुमान लगाना असम्भव था। रमेश बाबू सीधे उस जलती हुई बस्ती में घुस गए और आग की लपटों को चीरते हुए उस कोठी पर पहुँच गए, जिस में शान्ता रहती थी।

कोठी का द्वार खुला पड़ा था। बरांडे की छत जल कर पृथ्वी पर गिर चुकी थी। इधर-उधर की कोठरियाँ भी जल कर भस्म हो चुकी थीं। कहीं कोई पूरी वस्तु दिखलाई नहीं दे रही थी। रमेश बाबू ने पागल की भाँति कोठी के हॉल में घुस कर कई बार शान्ता-शान्ता कहकर पुकारा, परन्तु वहाँ निस्तब्धता छाई हुई थी और किसी भी जीवित व्यक्ति का खोज नहीं मिला। जलती ज्वाला के प्रकाश में रमेश बाबू ने शान्ता के वृद्ध पिता को छुरे का शिकार बना हुआ रक्त में लथ-पथ पड़ा देखा और पास ही पड़ा था उनका पुराना नौकर बिलासी। दोनों के शव से कुछ हटकर शान्ता की माताजी का शव पड़ा था और शान्ता का कहीं पता नहीं था। रमेश बाबू का दिल बैठ गया। एक बार उन्होंने अपनी दृष्टि नीले आकाश पर डाली और अपने जीवन को अंधकारमय पाया। रमेश बाबू के जीवन की प्रकाश-किरण का अब कहीं भी पता नहीं था। उनके पैरों की गति स्थिर हो गई, सिर चकराने लगा और वह एक क्षण के लिए माथे पर हाथ रखकर गिरे हुए मकान के एक पत्थर पर बैठ गए। उनके चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार था।

अभी बैठे एक ही क्षण हुआ होगा कि उन्हें एक ओर से कुछ गुण्डों का समूह आता दिखलाई दिया। रमेश बाबू के निराश-हृदय में आया कि अब वह क्यों इस

प्रकार छुप-छुप कर अपने जीवन को बचाकर मारे-मारे फिरें ? एक बार चाहा कि वह अपने को उन गुण्डों के हवाले करदें। कहें—लो ! मानव-रक्त के प्यासे कुत्तो ! यदि अभी तुम्हारी प्यास न बुझी हो तो मेरा रक्त भी पी लो। सम्भवतः मेरा ही रक्त पीकर तुम्हारे हृदयों को शान्ति मिलसके। परन्तु फिर उन्होंने विचार किया कि इस प्रकार मर जाना कायरता है। जीवन में उत्साह की एक विद्युत-तरंग-सी दौड़ गई और वह कर्तव्यशील व्यक्ति की भाँति पत्थर पर से उठकर खड़े हो गए। उन्होंने सोचा कि क्या उन्हें हिन्दू-वीरों का संगठन करके इस अत्याचार का सामना करना चाहिए ? इन धर्म के दीवानों का डट कर सामना करना चाहिए ? जिस प्रकार ये नीच, हिन्दुओं को बिना अपराध मौत के घाट उतार रहे हैं उसी प्रकार इन पर भी हाथ साफ करना चाहिए और दिखला देना चाहिए कि हमारी नसों का रक्त भी अभी ठंडा नहीं पड़ा है। यह विचार आते ही रमेश बाबू के सीने में उभार आ गया और भुजदंड कुछ करने के लिए फड़क उठे।

फिर उनके मन में ध्यान आया कि क्या यह दशा केवल लाहौर की ही है ? क्या केवल इसी नगर के सिर पर इस प्रकार की दानवता सवार है ? क्या यह धर्म के नाम पर भारत की सभ्यता और मानवता को नष्ट करने वाले केवल लाहौर में ही आकर बस गए हैं ? इसी समय अचानक उनके मन में विचार आया कि लाहौर का अब भारत से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह पाकिस्तान का नगर है। यदि यह अपनी सभ्यता को खो बैठा है और यहाँ मानवता का ह्रास हो चुका है, तो मैं ही क्यों उसी भ्रष्ट-मार्ग पर चलकर भारत और अपने मस्तक पर कलंक का टीका लगाऊँ। मैं भारत माता का सच्चा सपूत अपने आप को कभी-कभी समझकर अभिमान से फूला नहीं समाता। फिर क्या आज मेरा यही कर्तव्य है कि मैं भी उसी कलंकित और अपमानित कार्य में अपने को जुटा दूँ जिसकी कालिमा को आने वाले युग-युग तक पाकिस्तान न धो सकेगा ?

रमेश बाबू के चित्त में एक हलचल पैदा हो गई। हृदय एक क्षण में उड़कर भारत की सीमा में घुसने के लिए व्याकुल हो उठा। रमेश बाबू लाहौर छोड़कर निकल जाने के प्रयत्न में संलग्न हो गए। भाँति-भाँति की अफवाहों को सुनकर उनका सिर चकरा रहा था। जब रमेश बाबू ने सुना कि भारत से आने वाली मुसलमान-शरणार्थियों की गाड़ी पर पूर्वी पंजाब में इस प्रकार हमले किए गए कि उसमें से अनेकों व्यक्ति मौत के घाट उतर गए, तो उनका हृदय और भी प्रबल आकांक्षाओं के साथ भारत पहुँचने के लिए छटपटाने लगा।

२

आज आजाद को नींद नहीं आ रही थी। वह बिस्तर पर पड़ा बराबर करवटें बदल रहा था। भारत के विभाजन की उसके हृदय पर एक गहरी चोट थी; परन्तु फिर भी वह यह आशा रखता था कि यदि देश के दो भाग भी बन गए तब भी क्या हुआ ? दोनों में रहने वाले तो वे ही पुराने व्यक्ति हैं, जिनको पास-पास रहते शताब्दियाँ व्यतीत हो चुकी हैं, जिनके दादे-परदादे एक ही बस्ती के श्मशानों और कब्रिस्तानों में लेटकर मिट्टी बन चुके हैं। उनका निर्माण एक ही मिट्टी और पानी से हुआ है। फिर क्यों उनमें यह कटु विद्वेष की भावना बनी रहेगी ?

इसी समय उनके बुजुर्ग नौकर ने नीचे से आकर आवाज देते हुए कहा, "हुजूर ! आज तो गजब हो गया ! खुदा जाने क्या होकर रहेगा ? पुलिस और फौज दोनों बदमाश गुण्डों का साथ दे रही हैं। पास वाला हिन्दुओं का मुहल्ला गुण्डों ने जलाकर खाक कर दिया और वहाँ से हाय-हाय की दर्दनाक चीख-पुकारें आ रही हैं। जरा छत पर चढ़कर देखिए, शहर में आफत मची हुई है।" उस की आवाज में ऐसा दर्द था कि मानों कोई उनके अपने मकान और बाल-बच्चों को जला रहा था।

"क्या चारों ओर आग लगी हुई है ?" आजाद ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हाँ ! जब से लाहौर के पाकिस्तान में आने की खबर मिली है, उस समय से हिन्दुओं को यहाँ के गुण्डों ने गाजर-मूली की तरह काटना शुरु कर दिया है। पुलिस और फौज गुण्डों की सरदार बन बैठी है। लूटमार करने में बराबर उनका हाथ बँटा रही है।" गम्भीरतापूर्वक बुजुर्गवार ने उत्तर दिया।

"तब तो मुझे जाना ही होगा।" कहकर आजाद खड़ा हो गया। अपने अधूरे वस्त्र पहने और वह तुरन्त जीने से नीचे उतर गया। बुजुर्ग नौकर "मालिक-मालिक, आका-आका" चिल्लाता रह गया, परन्तु आजाद ने मानों कुछ सुना ही नहीं। वह विद्युत की गति से खटाखट करता हुआ जीने से नीचे उतर गया और सीधा अपने गैराज के पास पहुँच कर उसने मोटर बाहर निकाल ली।

मोटर पौं-पौं करके हवा से बातें करने लगी और आजाद अपने इच्छित लक्ष्य पर पहुँच गया। बस्ती पर गुण्डों का साम्राज्य था। कितने ही शव पटरी पर इधर-उधर पड़े थे और उन विशाल अट्टालिकाओं का सामान जो लूट से बचा था अग्नि के हवाले किया जा रहा था। आजाद की कार सीधी शान्ता की कोठी पर पहुँची। कोठी चारों ओर से लुटेरों ने घेरी हुई थी। बराँडे और बगल के दो कमरों से आग की लपटें निकल रहीं थीं। कोठी के प्रधान द्वार टूट चुके थे। बहुत से बदमाश केवल माल असबाब लूट कर ले जाने में संलग्न थे। शान्ता के पिता छुरे के शिकार हो चुके थे और नौकर की

एक मुशटण्डे से हाथापाई हो रही थी । आजाद के कार से उतरते ही एक बदमाश ने पीछे से आकर उस नौकर के पेट में भी छुरा भोंक दिया । वह भी लड़खड़ाता हुआ पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गया ।

"खबरदार बदमाशो !" कार से उतरता हुआ आजाद बोला। "इस्लाम के नाम पर दाग लगाने वाले गुण्डो ! ठहरो मैं अभी तुम्हें मौत के घाट उतारता हूँ।" आजाद के दोनों हाथों में दो रिवालवर थे और उसने दोनों से दो गोलियाँ इस प्रकार छोड़ीं कि दो बदमाश तड़प कर धराशायी हो गए। उनका गिरना था कि भीड़ काई की तरह फट गई और आजाद सावधानी से कोठी के अन्दर घुसता चला गया।

जलती हुई चिंगारियों के प्रकाश में शान्ता ने आजाद को पहचान कर कहा, "भैया आजाद ! बचाओ ! इन हत्यारों ने पिताजी को मार डाला।" इतना कहकर शान्ता, अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। इसी समय जलती हुई छत से एक कड़ी गिरी और उसके आघात से वहीं पर शान्ता की माताजी का भी प्राणान्त हो गया। शान्ता हिड़क-हिड़क कर रोने लगी। "पिताजी के साथ माताजी का भी आश्रय जाता रहा।" रोते हुए शान्ता ने कहा।

"यह रोने का समय नहीं है शान्ता ! धैर्य से काम लो ! शीघ्रता करो ! कार बाहर खड़ी है। अभी हमें रमेश की भी खबर लेनी है। खुदा जाने अनारकली का क्या हाल होगा ?" आजाद ने शान्ता को सँभालते हुए बहुत गम्भीरतापूर्वक कहा।

रमेश बाबू का ध्यान आते ही शान्ता खड़ी हो गई। दोनों बाहर आकर कार में बैठ गए। अपना सर्वस्व खोकर भी शान्ता शान्त थी, मानों सहन करने के लिए अभी और कुछ शेष रह गया था। कार तीव्र गति के साथ चली जा रही थी। वायु-मण्डल साँय-साँय कर रहा था। आज शहर के कोने-कोने में होली जलती दिखाई दे रही थी। यह दानवता की होली थी मानवता के वक्षस्थल पर। आजाद का हृदय बैठा जा रहा था यह विचार करके कि 'जो इन्सान नहीं बन सकते उन्हें अपने को मुसलमान कहने का क्या हक है ? धर्म के नाम पर यह बदमाशी का ढोंग रचा जा रहा है। इन्सान अपनी दानवी आकांक्षाओं के वशीभूत होकर राक्षस बन गया है। ऐसी करतूतें करने पर पाकिस्तान पाकिस्तान न रहकर नापाकिस्तान बन जाएगा।' इस प्रकार विचारों की घोर उद्विग्नता में भी आजाद ने अपने को सँभाला और वह अपने कर्तव्य की ओर अग्रसर हुआ।

शान्ता का सब कुछ समाप्त हो चुका था। माँ, बाप, धन-सम्पत्ति इस प्रकार चले गए, मानों सब स्वप्न थे। अब वह निराधार थी, निराश्रित, संसार में अकेली। भैया आजाद ने उन गुण्डों से उसकी रक्षा की, इसके लिए वह उनकी आभारी थी। उसके अंधकारपूर्ण जीवन में अब केवल एक ही प्रकाश-किरण की सम्भावना थी, रमेश

बाबू के मिलन की। उसका हृदय उस दृश्य का स्मरण करके काँप जाता था जब उसके पिताजी अकेले सीना तानकर अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए उन छुरेबाजों के सम्मुख डट गए थे। फिर अचानक उसे ध्यान आया कि कहीं अनारकली में गुण्डों का इसी प्रकार साम्राज्य न छाया हुआ हो ? यदि ऐसा ही हुआ होगा तो रमेश बाबू ने भी डट कर उनका सामना किया होगा।

कार चली जा रही थी और साथ-साथ आजाद और शान्ता के मनों की विचारावलियाँ भी अबाध रूप से प्रवाहित हो रही थीं।

"अब कितनी देर है अनारकली पहुँचने में ?" घबराई और भर्राई-सी आवाज में शान्ता ने पूछा।

"बस हम लोग अब पहुँचने ही वाले हैं वहाँ।" गम्भीरतापूर्वक आजाद ने उत्तर दिया।

फिर दोनों मौन हो गए और अपनी-अपनी विचार-धाराओं में बहने लगे। आखिर अनारकली का बाजार आ गया और कार रमेश बाबू के कमरे पर चढ़ने वाले जीने के सामने रुक गई। जीना खुला पड़ा था। दोनों तीव्रगति के साथ जीने पर चढ़ गए। ऊपर कमरे का सब सामान अस्त-व्यस्त पड़ा था। एक ओर किताबों का ढ़ेर पड़ा धीरे-धीरे सुलग रहा था और दूसरी ओर फरनीचर का ढ़ेर। बिस्तर इत्यादि का कहीं कुछ पता नहीं था। एक कोने में एक टूटे फ्रेम से निकला हुआ एक फोटो पड़ा था। आजाद ने धीरे से हाथ बढ़ा कर उस फोटो को उठाया। वह वही था जिसे एक दिन उन तीनों ने अनारकली के मोहन-स्टूडियोज में खिचवाया था।

रमेश बाबू का वहाँ पता नहीं था। निराश होकर दोनों कमरे से नीचे उतर आए।

शान्ता का मन पहले से भी अधिक खिन्न होकर अनेकों प्रकार के संकल्प-विकल्पों में फँस गया। उसके जीवन का यह अन्तिम आश्रय भी आज इस कठिन समय में विधाता ने उससे छीन लिया। आजाद के अनेकों प्रकार आश्वासन देने पर भी शान्ता अपनी विह्वलता को शान्त न कर सकी। उसकी आँखों से बहने वाली अश्रुओं की धारा किसी प्रकार भी बन्द नहीं हो रही थी। वह कितनी ही देर तक निरन्तर रोती रही कि सम्भवतः रोने से ही हृदय का भार कुछ हल्का हो सके।

"अब तो पत्थर का हृदय बनाना होगा बहन ! पत्थर का नहीं, फौलाद का। रोना तुम जैसी साहसी वीर देवी को शोभा नहीं देता।" आजाद ने गम्भीरतापूर्वक कहा

"परन्तु भैया ! करूँ क्या ? मेरे ऊपर तो एक साथ ही आपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। आज संसार मेरे लिए एक क्षण में अंधकारपूर्ण हो गया। क्या करूँ ? किधर

जाऊँ ? तुम ही कहो ! किसका आश्रय लूँ ? मेरा सब कुछ लुट चुका। जिस आशा पर हृदय के सब घावों को दबा कर पीड़ा को भुला देने का प्रयास करने चली थी, वह भी…" कहते-कहते शान्ता का गला रुँध गया और वह अब रो भी न सकी।

"बहन ! आश्रय खुदा का है, और किसी का नहीं। जब तक मेरी देह में प्राण बाकी हैं, तुम्हारा कोई भी बाल बाँका न कर सकेगा। तुम्हारी मान-मर्यादा के लिए मैं अपने प्राणों की बाजी लगा दूँगा और मैं तुझे यकीन दिलाता हूँ कि रमेश भैया अवश्य कहीं पर जीवित हैं। यदि खुदा ने साथ दिया तो एक-न-एक दिन मैं अवश्य उन्हें खोज कर तुम्हारे सामने ला खड़ा करूँगा। अब तुम मेरे साथ चलो।" शान्ता को साहस दिलाते हुए अपूर्व विश्वास के साथ आजाद ने कहा।

"परन्तु कहाँ ?" शान्ता ने भयभीत होकर पूछा।

"मेरे घर, और कहाँ ?" निर्भीकतापूर्वक सीना उभार कर आजाद बोला।

"नहीं भैया ! नहीं ! यह नहीं होगा। मैं तुम्हारे सर्वनाश का कारण नहीं बनूँगी। आज की दुनिया दीवानी हो रही है। मानव दानव बन चुका है। उचित और अनुचित का अनुमान लगाने का मस्तिष्क इन बदमाशों के पास कहाँ ? मुझे तुम्हारे साथ देख कर ये तुम्हारे भी प्राणों के ग्राहक बन जाएँगे।" बहुत स्थिरता के साथ शान्ता ने नेत्रों में आँसू भर कर कहा, "यह मैं नहीं करूँगी, कभी नहीं करूँगी।"

"मेरे प्राणों के !" वीरतापूर्वक आजाद ने दाँत किटकिटाते हुए कड़क कर अपनी दोनों जेबों से दो रिवालवर निकालते हुए कहा, "एक-एक बदमाश के लिए मेरी एक-एक गोली काफी होगी और आखिरी दो गोलियाँ मेरे और तुम्हारे लिए।" आजाद का मुख-मंडल दमक रहा था। आजाद का मुख देख कर शान्ता के हृदय में पैदा होने वाली समस्त मुसलमान-जाति के प्रति ग्लानि और घृणा न जाने किस समय काफूर हो गई। माँ-बाप की मृत्यु और धन-सम्पत्ति का बलिदान सब इस मानवता के सामने तुच्छ हो गए। उसने आज आजाद के मुख-मंडल पर मानवता की साक्षात प्रतिमा देखी।

"नहीं भैया ! नहीं ! मुझे अपनी ओर से तुम्हारे साथ चलने में कोई आपत्ति नहीं। आपत्ति पड़ने पर प्राणों का मोह भी मैं हँसते-हँसते त्यागने की क्षमता रखती हूँ। परन्तु तुम्हारे अनमोल प्राणों को इस प्रकार नष्ट होता मैं नहीं देख सकती। तुम्हारे विचारों के व्यक्ति उँगलियों पर ही गिने जा सकते हैं। आज पाकिस्तान को आवश्यकता है तुम जैसे युवकों की। यदि तुम जीवित रहे तो न मालूम मुझ जैसी कितनी अबलाओं की रक्षा कर सकोगे। मैं तुम्हारी शक्ति केवल अपने तक ही सीमित नहीं कर देना चाहती। कर्तव्य तुम्हें पुकार रहा है। मुझे तुम डी० ए० वी० कॉलेज के शरणार्थी-कैम्प में पहुँचा दो।" "जितने दिन यहाँ पर रहना होगा तुम

मुझसे भेंट करने अवश्य आना ।" शान्ता ने कुछ ठहर कर गम्भीरतापूर्वक कहा ।

"जैसी तुम्हारी इच्छा बहन !" मन भारी करते हुए आजाद ने कहा, "परन्तु किसी भी मुसीबत में जब तक तुम पाकिस्तान की सीमा में रहो, मुझे न भूल जाना । विना भय आधी रात को भी याद करोगी तो मुझे अपने पास पाओगी ।" निर्भीक स्वर में आजाद बोला ।

"तुम से भी भला डरूँगी भैया ! तुम से भी संकोच करूँगी ?" कहते हुए शान्ता की आँखें डबडबा आईं । "अब शीघ्रता करो, समय बड़ा नाजुक है । पुलिस और फौज भी अपने कर्तव्यों को तिलांजलि दे चुकी हैं । वे भी सोच रहे हैं कि इस अराजकता में जितनी भी लूट-मार की जा सके, कर ली जाए । दुनिया भर के वदमाश आज धर्म के ठेकेदार वन कर मानवता का गला घोंट रहे हैं । तुमको रोकना है इस बढ़ती हुई पारस्परिक द्वेष की ज्वाला को और मुझे विश्वास है कि तुम रोक सकोगे ।" शान्ता ने कहा ।

"मैं प्रयत्न करूँगा बहन ! और आज से अपना जीवन इसी कार्य के अर्पण कर दूँगा । चलो अब तुम्हें डी० ए० वी० कॉलेज में छोड़ आऊँ, फिर शहर की दशा देखनी होगी ।" आजाद स्थिरता के साथ बोला ।

कार डी० ए० वी० कॉलेज की ओर जा रही थी । मार्ग में एक मकान पर कुछ बदमाशों की भीड़ लगी हुई थी और वह उसके दरवाजे को तोड़ना चाहते थे । भीड़ में कई आदमियों के हाथों में छुरे थे और उस मकान के अन्दर वाले प्राणियों को मौत के घाट उतारने के लिए दीवानों की तरह बहादुरी से अपने भुजदंडों को थपथपा रहे थे ।

यह दृश्य आजाद न देख सका । उसने कार रोकी और कड़क कर बोला, "इस्लाम के कलंको ! भाग जाओ ! वरना अभी सब को जमीन पर बिछा दूँगा ।" कहता हुआ आजाद उस भीड़ की तरफ अपने दोनों हाथों में रिवालवर लिए हुए बढ़ा । भीड़ भाग खड़ी हुई, परन्तु एक गुण्डा बगली काट कर हाथ में छुरा लिए आजाद की तरफ तेजी से लपका । शान्ता अब शान्त न रह सकी । वह शीघ्र कार से उतर पड़ी और मोटर का हेंडिल उसने अपने हाथ में सँभाल लिया । ज्यों ही वह छुरा लिए हुए गुण्डा आजाद की तरफ बढ़ा, शान्ता ने कसकर हेंडिल उसकी खोपड़ी पर मारा और वह लड़खड़ा कर भूमि पर गिर पड़ा ।

आजाद ने यह कांड घूम कर देखा तो उसका हृदय प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो उठा । वह आनन्द-विभोर होकर बोला, "शावाश शान्ता, शावाश ! तुमने कमाल किया ।"

द्वार के अन्दर वाले व्यक्ति यह सब देख रहे थे, परन्तु फिर भी आजाद शक्ल से मुसलमान प्रतीत होता था; इसलिए फाटक खोलने का साहस नहीं हो रहा था। अब उसके मुँह से, 'शाबाश शान्ता' शब्द सुनकर उनमें साहस आगया और उन्होंने द्वार खोल दिए। उसमें से दो लड़कियाँ और एक लड़का घबराए हुए बाहर निकले। एक सूटकेस उनके हाथ में था, शायद यही उनकी साथ ले चलने वाली सम्पत्ति थी। समय कुछ पूछने का नहीं था। उन्हें भी आजाद ने कार में बिठला लिया और कार फिर तीव्र गति से चलने लगी।

सब को डी० ए० वी० कॉलेज में सुरक्षा के साथ पहुँचा कर आजाद अपने घर आया। घर पर उसका वृद्ध नौकर चिंता-निमग्न बैठा था। रमेश बाबू के न मिलने का आजाद के दिल पर बहुत बड़ा आघात था और उसका विचार न जाने कहाँ-कहाँ चक्कर लगा रहा था। वह सोच रहा था कि 'यदि रमेश बाबू को गुण्डों ने मार डाला होता तो कोई कारण नहीं था कि वे लोग उसके शव को भी उठाकर अपने साथ ले गए होते। फिर वहाँ रक्त की एक बूंद भी कहीं दिखलाई नहीं दे रही थी। रही बात सामान की, सो सामान वह स्वयं ही छोड़ गए होंगे।' इस प्रकार विचार कर आजाद ने अपने मन को किसी प्रकार सांत्वना दी।

३

शान्ता की ओर से निराश होकर रमेश बाबू लाहौर-स्टेशन की तरफ चल दिए। स्टेशन की दशा बिलकुल विचित्र थी। आदमियों के शव इधर-उधर इस प्रकार पड़े थे, मानों भंगियों ने बीमारी फैलाने वाले कुत्ते-बिल्लियों को जहर की गोलियाँ खिला दी हों। स्टेशन पर सन्नाटा था। हिन्दू नाम की कोई चीज दिखलाई नहीं देती थी। साथ ही शरीफ मुसलमानों की भी वहाँ कमी थी। हर व्यक्ति, जो भी वहाँ जाता था, उसके मुख पर मुर्दनी के चिन्ह दिखलाई दे रहे थे। कोई अपने किसी पारिवारिक-सम्बन्धी के लिए चिन्तित था तो कोई किसी के लिए। किसी की बहिन दिल्ली में थी तो किसी का भाई अमृतसर में। किसी की भाभी अम्बाले में थी तो किसी का सारा परिवार-का-परिवार ही सहारनपुर में फँसा हुआ था। सब परेशान थे। एक वृद्ध मुसलमान जी भर कर कोस रहा था पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के विभाजन को। 'अंग्रेज जाता-जाता भी चाल खेल गया। आखिर यह खून-खराबा करा कर ही उसने दम

लिया। लेकिन कितने पागल हैं ये दीवाने भी। खामखा के लिए एक तूफान बर्पा कर दिया है। अब याद आता है उस बूढ़े गांधी का कहना। उसने कितना गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाया था कि हिन्दुस्तान को टुकड़े होने से बचाओ। तब पाकिस्तान के भूत ने हम लोगों के दिमाग खराब कर दिए थे। यह सब हम अपनी ही उस नासमझी का मजा चख रहे हैं। परन्तु क्या किया जाए? मियाँ होता है वही जो मंजूरे खुदा होता है, लाख करे इन्साँ तो क्या होता है?' यह बात रमेश बाबू के सामने उस वृद्ध ने बहुत दुःखी मन से कही। रमेश बाबू उस वृद्ध व्यक्ति की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए बोले:

"यही बात है बुजुर्गवार! बिलकुल यही बात है। खुदगर्ज लोगों को मजा आ रहा है और इज्जतदार आदमी कहीं के नहीं रहे। यहाँ हम लोग चन्द हिन्दुओं को मार कर, उन्हें बेइज्जत करके, उनका धन-माल लूटकर अपने मन में खुश हो रहे हैं; लेकिन हमें यह मालूम नहीं कि अभी छः करोड़ मुसलमान हिन्दुस्तान में पड़ा है। इस पाकिस्तान बनने ने उन बेचारों को तो तबाह करके रख दिया। उनके जान-माल की हिफाजत अब पाकिस्तान वहाँ जाकर कैसे करेगा? वहाँ मुसलमानों के हकूकों को मुस्लिम लीग कैसे बचाएगी?" कुछ क्रोध-सा दिखलाकर रमेश बाबू ने कहा।

"यही बात है बेटा! कई रोज से मेरा दिमाग परेशान है। समझ नहीं आता कि क्या करूँ? अभी-अभी मेरे सामने स्टेशन पर आते हुए एक हिन्दू-नौजवान को चन्द गुण्डों ने खत्म कर दिया। मेरे दिलपर ऐसा धक्का लगा कि मानों किसी पाजी ने मेरे इकलौते बेटे के पेट में छुरा भौंक दिया। लेकिन मैं करता क्या? जईफ आदमी ठहरा और फिर वे दस पन्द्रह थे। खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि उस वक्त जी चाहता था कि उन हरामजादों को कच्चा ही चबा जाऊँ; लेकिन........." बुजुर्गवार दाँत पीस कर कह रहे थे।

रमेश बाबू के दुःखी हृदय को इस वृद्ध से बातें करके कुछ सांत्वना मिली। उन्हें विश्वास हुआ कि अभी इन्सानियत का बिलकुल ह्रास नहीं हुआ है। मानवता अभी सिसक रही है और यह सब जो कुछ हो रहा है यह एक तूफानी पागलपन है, जो स्थायी न होकर अस्थायी है।

"तुम्हें कहाँ जाना है बेटा?" उस जईफ ने पूछा।

"जाना तो बहुत दूर है अब्बा जान! लेकिन जाया किस तरह जाए, अभी तक इसी शशोपंज में हूँ। कुछ अक्ल काम नहीं कर रही। मेरा घर बार, सब कुछ दिल्ली में है। मेरे बहन, भाई, चचा, ताया सब वहाँ हैं। दिल उनसे मिलने के लिए ऐसा छटपटा रहा है कि एक लहमे में वहाँ पहुँच कर उनकी खबर ले लूँ, लेकिन यह हो किस तरह? पास इतना रुपया नहीं कि हवाई जहाज में जा सकूँ और गाड़ी पर

जाना खतरे से खाली नहीं। सुना है कि जिस तरह रेल से जाने में पाकिस्तान की सरहद में हिन्दू के लिए जान का खतरा है उसी तरह उधर पहुँच कर हम मुसलमानों की शामत है।" रमेश बाबू बोले।

"यही सुना है बेटा ? मुझे भी दिल्ली जाना है। चलो एक से दो तो हो गए। बेटा ये गुण्डे लोग खुदगर्जी के लिए हिन्दुओं को मार रहे हैं। मजहब इनका बहाना है। लूटने में तो ये मुसलमानों को भी मारने से नहीं हिचकिचाते। एक बदमाश मेरा ही सूटकेस छीनकर भाग गया।" परेशानी में जईफ ने कहा।

"आपका ?" आश्चर्य से रमेश बाबू ने पूछा।

"हाँ मेरा।" बुजुर्गवार बहुत क्रोध में भरकर बोले।

'आपकी इस लम्बी सुफैद दाढ़ी का भी उन बेईमान ने कोई ख़याल नहीं किया।" आश्चर्य के साथ रमेश बाबू ने कहा।

इसके पश्चात् दोनों कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। थोड़ी देर मौन रहने के पश्चात् बुजुर्गवार बोले, "अच्छा बेटा ! अगर हम लोग रेल से ही चलें तो क्या करना होगा ?"

"जान को हथेली पर रखकर चलना होगा बुजुर्गवार ! पाकिस्तान की सरहद तक तो कोई खतरे का सामना नहीं करना होगा। हाँ उधर पहुँचकर जरूर मुसीबत है। भेष बदलने पर भी काम चल सकता है। लेकिन······" कहते हुए रमेश बाबू रुक गए।

"लेकिन क्या बेटा ?" घबराई-सी आवाज में जईफ ने पूछा।

"मैंने सुना है कि जिस पर उन्हें शक हो जाता है, वह लोग उसकी पूरी-पूरी जाँच करते हैं। पूरी जाँच से सब पता चल जाता है और फिर आपके मुँह पर तो दाढ़ी है। यह तो दूर से ही बुलावा दे डालेगी उन पाजियों को।" रमेश बाबू बहुत संजीदगी से बोले।

"तब फिर मुझे क्या करना होगा बेटा ?" जईफ ने गम्भीरतापूर्वक पूछा।

"यह वहीं चलकर सोच-विचार करेंगे बुजुर्गवार। यहाँ इस तरह की बातें न कीजिए। हवा के भी कान हैं। हो सकता है कि यहाँ पर हमारी इस तरह की बातें करने पर किसी को कुछ शक पैदा होने लगे और परेशानी पैदा हो जाए।" रमेश बाबू के दिल का चोर काँप रहा था। इसलिए उनका इस विषय पर अधिक बातें करने को मन नहीं हो रहा था।

"खुदा खैर करे। यह क्या कहते हो बेटा ? क्या यहाँ पर हमारे मुसलमान होने पर भी शक किया जा सकता है ?" घबराकर बुजुर्गवार ने रमेश बाबू से पूछा।

"क्यों नहीं ? कोई चीज नामुमकिन नहीं है। हो सकता है कि अभी चन्द गुण्डे

यहाँ आकर हमारी तालाशी लें ?" कहते-कहते रमेश बाबू चुप हो गए। वह इस मामले को अधिक तूल नहीं देना चाहते थे और न ही इस विषय पर अधिक बातचीत करना उचित समझते थे।

एक गाड़ी दस बज कर पन्द्रह मिनट पर छूटने वाली थी। उसी से ये दोनों सवार हो लिए और एक ही डिब्बे में दोनों सटकर बैठ गए। डिब्बे में सभी मुसलमान थे। चलती गाड़ी में न जाने कहाँ से दो आफत के मारे हिन्दू भी आकर अचानक चढ़ गए। वे बेचारे भय से काँप रहे थे। उन्हें तमाम डिब्बा यमदूतों से भरा हुआ दिखलाई दे रहा था। किसी प्रकार वे अपने प्राण बचाकर भाग जाना चाहते थे। गाड़ी चल पड़ी तो एक गुण्डे ने सब के सामने उनमें से एक को गला पकड़ कर ऊपर उठा लिया। समस्त डिब्बा सन्नाटे में रह गया।

"पटक दो काफिर को गाड़ी से बाहर।" दूसरे गुण्डे ने कड़क कर कहा।

"बस एक छुरा काफी होगा इस बदमाश के लिए।" तीसरी आवाज आई।

"भाग जाना चाहता है, हरामजादा। इसे मालूम नहीं है कि पाकिस्तान से एक भी हिन्दू बचकर नहीं निकल सकता है।" चौथी आवाज आई।

"यहीं पर दफना दिए जाएँगे, यहीं पर।" पाँचवें ने कहा।

"आखिर बन के रहा पाकिस्तान, मिट के रहा हिन्दुस्तान। फेंक दो उठाकर गाड़ी से बाहर, नाहक क्यों देर कर रहे हो ?" छठे ने कहा।

"क्यों खामखा के लिए गरीब के खून से हाथ रँगते हो ? क्या मिलेगा तुम्हें ?" आखिर एक आवाज उनके पक्ष में भी एक कोने से आई।

"अच्छा चलो इनके नाक कान काटकर छोड़ दो।" एक ने मखौल में हँस कर कहा।

रमेश बाबू चुप थे और बुजुर्गवार खून का घूँट ही पीकर रह गए थे। उनकी आँखों में खून उतर रहा था, परन्तु यहाँ उनका कुछ वश नहीं चल सकता था।

"अरे छोड़ दो यार ! नाचीज को मारकर क्या लोगे ?" फिर किसी ने कहा। इसी प्रकार की कुछ और भी आवाजें आईं, परन्तु उस गुण्डे पर इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ, मानों कहने वाले व्यर्थ के लिए अपनी-अपनी बकवास कर रहे थे। न उनके समर्थन से उसका कोई सम्बन्ध था और न उसके विपरीत कहने से। वह अपने कार्य में संलग्न था। उसने पहले उसकी खाना-तालाशी ली। जो रुपया जेबों से निकला उसे अपनी जेबों के हवाले किया और फिर लापरवाही से उठा कर उसे खिड़की से बाहर फेंक दिया। यही दशा दूसरे की भी हुई। सबकी नजरों के सामने दो जीते जागते इन्सान इस प्रकार गाड़ी से बाहर फेंक दिए गए है, कि मानों दो मिट्टी के व्यर्थ ढेले थे, जिनके जीवन का कोई मूल्य न था, जिनमें भगवान् ने व्यर्थ जान

डाली थी।

गाड़ी बराबर आगे बढ़ती चली गई। उन दो आदमियों के गिर जाने से उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह बराबर अपनी तीव्र गति से चल रही थी। रमेश बाबू के दिल में एक तूफान उठा और वह उसको शर्बत के घूंट की तरह पी गए, एक कायर की भाँति भी उसे कहा जा सकता है, परन्तु वीरता का अर्थ भी वहाँ मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। वह जा रहे थे इन्सानियत की उस आवाज की रक्षा के लिए जो दूर हिन्दुस्तान में उन्हें पुकार रही थी। गाड़ी की खटाखट के साथ रमेश बाबू के हृदय की धड़कन मिल रही थी। उनका वेश उनका साथ दे रहा था और फिर वह बैठे हुए थे उस जईफ के साथ, जिसे वह अब्बा कहकर सम्बोधित करते थे। इसीलिए किसी को भी उनके विषय में शंका करने का कारण नहीं था। सब लोग उन्हें बाप-बेटा समझने के भ्रम में थे।

डिब्बे में अनेकों प्रकार की चर्चा चल रही थी। कुछ लोग कह रहे थे कि पाकिस्तान प्राप्त करके मुसलमानों ने मोर्चा मार लिया। इस्लाम की हकूमत कायम करदी। परन्तु अधिकतर लोग इसके विपरीत ही थे। एक नौजवान जो कि रमेश बाबू के दूसरी ओर वाली सीट पर बैठा था यकायक कह उठा, "मैं कहता हूँ क्या हासिल कर लिया मुसलमानों ने? सिवाए बरबादी के मुझे तो कुछ नजर नहीं आता।"

"क्यों? क्या बरबादी है इसमें मुसलमानों की?" दूसरे साहब बोले।

"बरबादी की बात पूछते हो तो सुनो, तमाम हिन्दुस्तान के मुसलमानों के हकूकों का हमने खात्मा कर दिया पाकिस्तान लेकर। पाकिस्तान के सभी हिन्दू हिन्दुस्तान में जाकर रह सकते हैं, लेकिन अगर कभी हिन्दुस्तान के सभी मुसलमानों को पाकिस्तान में आना पड़ा तो जानते हो क्या हालत होगी? दाने-दाने के लिए मुहताज हो जाएँगे। न पहनने के लिए कपड़ा होगा, न खाने के लिए खाना और न रहने के लिए मकान। आपको पाकिस्तान मिलने के माने हैं हिन्दुस्तान के मुसलमानों के इन्सानी हकूकों का छिन जाना। मैं पूछता हूँ क्या अब वहाँ के मुसलमान वहाँ के हिन्दुओं के रहमोकरम पर नहीं हैं?"

"बिलकुल यही बात है।" जईफ ने समर्थन करते हुए कहा। "हम लोग यहाँ हिन्दुओं को मारकर खुश हो रहे हैं। लेकिन हमें समझना चाहिए कि यदि हम यहाँ पर एक हिन्दू को मारते हैं तो वहाँ इसका बदला दो-दो मुसलमानों को मारकर चुकाया जाता होगा। मैं पूछता हूँ आप में से कितने ऐसे हैं कि जिन का कोई-न-कोई रिश्तेदार हिन्दुस्तान में नहीं है? किसी का कोई अजीज है तो किसी का कोई। क्या उन लोगों की हिफाजत हम इसी इन्सानियत पर चाहते हैं जो हम लोगों ने अभी उन बेचारे दो हिन्दुओं के साथ दिखलाई?"

"मियाँ ग्रापको क्या मालूम है कि ग्रमृतसर ग्रौर पंजाब के उस इलाके में मुसलमानों के ऊपर क्या गुजर रही है?" कड़ककर उस गुण्डे ने लाल-पीली ग्राँखें करत हुए कहा।

"ठीक है! जो कुछ भी हो रहा है। उसे मैं तुम से जियादा जानता हूँ। ये बाल धूप में सुफेद नहीं किए हैं मैंने। वहाँ पर भी ऐसा काम करने वाले तुम्ही जैसे लोग होंगे। कोई ग्रास-ग्रौलाद वाला ग्रादमी ऐसे काम नहीं करेगा। ग्रपने को मुसलमान कहने वाला इन्सान ऐसा काम नहीं कर सकता।" बुजुर्गवार एक दर्द के साथ हृदय पर हाथ रखकर बोले।

"ग्रौर फिर तुम्हारा मकसद तो सिर्फ उनकी जेबों की तलाशी लेना ही था।" वह नौजवान बोला जो रमेश बाबू के सामने वाली सीट पर बैठा था।

"इसके माने हैं कि मैं सिर्फ लुटेरा हूँ, खुदाई खिदमतगार नहीं। इस्लाम ग्रौर पाकिस्तान का सच्चा खादिम नहीं?" कड़ककर वह गुण्डा बोला।

"नहीं! नहीं! नहीं!" ग्रपना मत जरा मजबूत देखकर जईफ बोले। "ये सिर्फ खुदगर्जी की चीजें हैं। तुम्हारे इस काम से इस्लाम को दाग लगेगा, समझे?"

ग्रपना मत जरा कमजोर देखकर ग्रौर ग्रपना समर्थन किसी भी कोने से न पाकर उस बदमाश को ग्रधिक बोलने का साहस नहीं हुग्रा। वह चुप-चाप एक ग्रोर ज्यों-का त्यों खड़ा रह गया।

जईफ फिर कहने लगे, "क्या तुम समझते हो कि तुम पाकिस्तान के सब हिन्दुग्रों का खात्मा कर डालोगे? इनमें से वे लोग जो ग्रपना धन, माल, स्त्री, बच्चों ग्रौर कुटुम्बियों को ग्रपनी ग्राँखों के सामने तड़प-तड़पकर मिटते हुए देखकर किसी तरह हिन्दुस्तान पहुँचेंगे। तुम जानते हो वे क्या कुछ गजब बर्पा नहीं करेंगे वहाँ। उन में से एक-एक के दिल की ग्राग कितने-कितने बेगुनाह मुसलमानों का खून बहाकर बुझेगी? तुमने कभी सोचा है इस बात पर? लेकिन तुम्हें सोचने से क्या मतलब? तुम्हारा मतलब तो उन लोगों की जेबें टटोल कर खत्म हो गया। साथ ही ग्रपने को इस्लाम का खिदमतगार साबित करने के लिए उन बेचारों को मौत के घाट भी उतार दिया।" कहते हुए जईफ दाँत किटकिटा कर चुप हो गए।

ग्रब सब लोग चुपचाप लज्जित से जईफ के मुँह पर देख रहे थे। वह नवयुवक उसका समर्थन कर रहा था। उसके दिल में इनके प्रति श्रद्धा हो गई थी। जईफ ने फिर कहना प्रारम्भ किया, "तुमने उन्हें गाड़ी से बाहर फेंका तो मेरा दिल टूट गया। मुझे ऐसा लगा कि मानों मेरे दोनों लड़के दिल्ली से मेरी खबर लेने के लिए रवाना हुए ग्रौर गाड़ी चलने पर किसी बदमाश ने उनका गला पकड़कर उन्हें गाड़ी से बाहर फेंक दिया।" कहते-कहते जईफ की ग्राँखों में ग्राँसू ग्रा गए। इस समय डिब्बे के

सभी लोग लज्जित थे अपनी उस करतूत पर। वह गुण्डा तो किसी से आँखें मिलाने के योग्य भी नहीं था। वह मुँह नीचा किए इस इन्तजार में खड़ा था कि दूसरा स्टेशन आए तो वह इस डिब्बे से नीचे उतर जाए। वहाँ खड़ा रहना उसके लिए कठिन हो गया था और उस जईफ पर तो वह मन-ही-मन दाँत पीस रहा था। उसका जी चाहता था कि उसे कच्चे को ही चबा जाए।

४

शरणार्थी-कैम्प की दशा बहुत खराब थी। सब के हृदयों में भय छाया हुआ था। सभी के अधूरे परिवार वहाँ पर थे। किसी को भाई से बिछुड़ने का दुःख था तो किसी को बहन से, किसी की माँ लापता थी तो किसी का पिता, किसी की स्त्री नहीं थी तो किसी का और कोई सगा-सम्बन्धी। परेशानी, ग्लानि, क्रोध, भय, आंतक, दयनीयता, विलाप और संताप का वहाँ ऐसा सामंजस्य था कि उसे देख कर दिल मुँह को आता था। घायल व्यक्तियों के लिए डाक्टरी-प्रबन्ध था, परन्तु वह सब ना के बराबर था बड़े-बड़े घरानों के बच्चे आज यहाँ पर निस्सहाय और पंगु बने अपने भाग्य को कोस रहे थे। लोगों में भाँति-भाँति की टीका-टिप्पणियाँ चल रही थीं। सभी लोग किसी प्रकार यहाँ से भारत जाने के लिए चिंतित थे। चाहते थे कि किसी प्रकार पाकिस्तान की सीमा पार कर सकें तो जान-में-जान आए।

"भाई! रेल से जाना तो बहुत ही भयानक है। पता नहीं भारत के हिन्दुओं को भी क्या हो गया है? इतनी कठोरता तो हिन्दुओं में कभी नहीं देखी गई।" एक व्यक्ति दुःख से कह रहा था।

"भाई! कठोरता भी क्या करे? यहाँ से जो पहली शरणार्थियों की गाड़ी गई, उस पर कितनी ही जगह पाकिस्तान की सीमा में गुण्डों ने रोक कर ऐसा अत्याचार किया कि अनेकों को मौत के घाट उतार दिया। उनका धन-माल सब लूट लिया और उनकी स्त्रियों की जो दशा की गई वह मुँह से कहते नहीं बनती," दूसरा व्यक्ति बोला।

"कहते हैं वह तो गाड़ी-की-गाड़ी ही समाप्त कर दी मुसलमानों ने।", तीसरा व्यक्ति बोला।

"इसीलिए तो आग लग गई वहाँ भी। लोग पहले से ही जले-भुने बैठे

थे। बंगाल के हत्याकाण्ड का घाव अभी तक भरा नहीं था कि उस पर इस प्रकार नमक छिड़का जाने लगा। वहाँ से आने वाली मुसलमान शरणार्थियों की गाड़ी की यह दशा होने का यही कारण है।" चौथे ने उत्तर दिया।

"ठीक ही किया उन लोगों ने। यही उचित था। जब तक थप्पड़ का जवाब घूँसे से नहीं मिलता, उस समय तक अक्ल ठिकाने नहीं आती।" पाँचवाँ क्रोध से कड़ककर बोला।

"तब तो आपके विचार से यही ठीक रहा न कि जो यहाँ से हिन्दू-शरणार्थियों की गाड़ियाँ जाएँ, उनमें जाने वालों को पाकिस्तानी मुसलमान गुण्डे मौत के घाट उतार दें और जो उधर से मुसलमानों की गाड़ियाँ आएँ उन्हें यहाँ के हिन्दू बदमाश समाप्त करदें। इधर ये आपके माल और आपकी आबरू के साथ खिलवाड़ करें और उधर वे उन्हें छुरों का शिकार बनाते रहें।" शान्ता, जो पास ही बैठी हुई इन लोगों की बातें सुन रही थी, बोली।

"यही बात है बहनजी! शायद आपको चोट कम लगी है। इसीलिए यह व्याख्यान आपके मुँह से निकल रहा है।" एक निष्ठुर व्यंग्य के साथ चौथे व्यक्ति ने कहा।

"चोट!" एक आह भर कर शान्ता बोली, "चोट की क्या पूछते हो भाई! मेरी माँ, मेरे पिता, मेरा सब कुछ इस ज्वाला में जलकर भस्म हो गया। आज इस संसार में ऊपर आकाश है और नीचे यह शरणार्थी कैम्प की पृथ्वी—यदि यह भी तुम्हारी दृष्टि में कम चोट है तो मैं और कुछ नहीं कहना चाहती; परन्तु हाँ यह अवश्य कहूँगी कि यह सब जो कुछ दिखलाई दे रहा है एक पागलपन है, दीवानगी है। इसे हम लोग जितना भड़काएँगे यह ज्वाला उतनी ही अधिक भड़केगी और यदि शान्त हो जाएँगे तो हमारा रक्त इसे अपने आप बुझा देगा।" गम्भीरता के साथ शान्ता ने कहा।

"ठीक कहती हो बेटी! मेरा भी यही मत है।" एक वृद्ध ने सिर हिलाते हुए गम्भीरतापूर्वक कहा।

"यह जो कुछ भी हो रहा है सब पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के ही नहीं, समस्त मानव-जाति के मस्तक से कभी न मिटने वाला कलंक का टीका है। इसे साफ करने के लिए अभी बलिदान की कमी है। यह बहुत बड़ा बलिदान चाहता है। हमारी इस दीवानगी को युग-युग तक आने वाली हमारी संतानें रो-रोकर कोसा करेंगी।" कहती-कहती शान्ता चुप हो गई। उसका दिल भर आया। उसके नेत्रों में आँसू थे।

वह फिर कहने लगी, "मुसलमान सभी बुरे नहीं हैं, हिन्दू सभी देवता नहीं हैं।

दोनों में इन्सान हैं और दोनों में दानव हैं। आज दानवता मानवता के सिर पर चढ़ कर बोल रही है। दोनों देशों की सत्ताएँ शिथिल हो रही हैं। जनता पागल है, नासमझ, मूर्ख। खुदगर्ज गुण्डे उनकी नासमझी से लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा कर रहें हैं। स्त्री-जाति का जो अपमान, मैं आज अपने कानों से सुन रही हूँ, उसे सुनकर दानव-हृदय भी विदीर्ण हो सकता है। परन्तु आज का मानव अपने को हिन्दू और मुसलमान कहता हुआ, धर्म का ठेकेदार बनता हुआ, अपनी माँ बहनों की आबरू लेने में तनिक भी संकोच नहीं करता। मानव की नीचता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी है। एक नारी को अपमानित करने में, उसके साथ अत्याचार और बलात्कार करने में, वह लज्जित नहीं होता, बल्कि खम ठोंक कर, अपने भुजदण्ड फड़काकर, आनन्द और बहादुरी का अनुभव करता है। हद हो गई है हृदय-हीनता की। आप लोग अपने दिलों पर हाथ रख कर कहिए कि क्या यह मानवता है कि यदि यहाँ हिन्दू के साथ निष्ठुर व्यवहार हुआ है तो वहाँ पर इसका बदला चुकाने के लिए एक निर-अपराध मुसलमान के साथ वही व्यवहार हो ?"

"बिलकुल वही होना चाहिए ! बल्कि उससे भी अधिक।" क्रोध में भर कर एक सरदारजी बोले, "क्या हम इतने कमजोर हैं कि इनसे इस प्रकार डरते रहेंगे ? हमें मरने की परवाह नहीं। हम जान को हथेली पर रखकर चलते हैं। हमारी इज्जत गई है, हम उसके लिए सब कुछ करेंगे। कोई ताकत हमारे इरादों को नहीं बदल सकती। मैंने अपने पाँच बच्चों को अपने सामने जमीन पर लेटते देखा है। मेरी स्त्री को मेरी आँखों के सामने छुरा भोंका गया है। मेरा घर लूट लिया, उसमें आग लगा दी गई। मैं भी चाहता था कि मुझे भी कोई आकर अपने छुरे का शिकार बनाए, लेकिन उसी समय एक नौजवान की कार आकर रुकी और उसने अपने रिवालवर की गोली से दो बदमाशों को जमीन पर लिटा दिया। गोली चलने पर सभी गुण्डे भाग खड़े हुए और वह मुझे अपनी कार में बिठला कर जीवन-भर रोने के लिए यहाँ छोड़ गया।" सरदारजी की आँखों में आँसू थे और उनका सिर क्रोध से चकरा रहा था।

शान्ता ने बहुत शान्तिपूर्वक सरदारजी की बातें सुनीं और फिर गम्भीरता-पूर्वक बोली, "क्या आप बतला सकते हैं कि वह कार जो आपको यहाँ पर छोड़ गई, किस रंग की थी ?"

"लाल रंग की।" सरदारजी ने धीरे से कहा।

"और आपको यह भी मालूम है कि वह कार वाला व्यक्ति कौन था, जिसने दो मुसलमान गुण्डों को मौत के घाट उतार कर आपकी जान बचाई ?" गम्भीर मुद्रा में ही शान्ता ने पूछा।

"नहीं, यह मैं कुछ नहीं जानता। मेरा दिमाग इतना खराब हो चुका था उस समय कि मैं उस बेचारे को धन्यवाद देना भी भूल गया।" सरदारजी ने बड़ी दीनता से उत्तर दिया।

"अच्छा ! तब में बतलाती हूँ आपको उसका नाम ! उसका नाम है मिस्टर आजाद और वह वह एक कट्टर मुसलमान है।" शान्ता ने उसी गम्भीरता से कहा।

"मिस्टर आजाद ! मुसलमान !" सबने बड़े ही आश्चर्य से कहा। सरदारजी ने यह नाम कई बार दोहराया और अन्त में मानों उन्हें विश्वास नहीं हुआ। वह कहने लगे, "नहीं, नहीं बेटी ! वह मुसलमान नहीं था। दाढ़ी अवश्य थी उसके छोटी-सी, परन्तु शायद वह यों ही बढ़ रही होगी, या उसने वेश बदलने के लिए बढ़ा ली होगी, परन्तु वह मुसलमान नहीं हो सकता। तुम्हें धोखा हुआ है, भ्रम हुआ है। तुम किसी और की बात कहती हो शायद।" सरदारजी एक साँस में कह गए। मुसलमान और हिन्दू की रक्षा करे, यह उन्हें असम्भव-सा प्रतीत हो रहा था।

"जी नहीं ! मैं उसे खूब जानती हूँ ! वह मेरा कॉलेज का साथी है और उसी ने मेरे भी प्राण गुण्डों से बचाए थे। मैं उसे नहीं भूल सकती। वह इन्सान है, मुसलमान नहीं।" कहते हुए शान्ता का हृदय गद्गद् हो रहा था और नेत्रों में आँसू आ रहे थे। शान्ता ने आजाद में अपने सगे भाई के दर्शन किए और सरदारजी की बात का स्मरण करके आजाद के प्रति उसकी श्रद्धा और भी अधिक हो गई।

यह बात सुनकर सभी लोग आश्चर्य-चकित रह गए और सरदारजी को ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों उनका खोया हुआ धन फिर से लौट आया। आजाद को उन्होंने 'बेटा आजाद' कह कर धीरे से पुकारा। "बेटी ! मुझे क्षमा करना; यदि मैं तुमसे कुछ अनुचित बात कह गया हूँ तो। मैं क्रोध में पागल हो चला था।" सरदारजी शान्ता की ओर मुँह करके बोले।

"आज का दुःखी-हृदय कोई भी बात अनुचित नहीं कहता। अनौचित्य की उसमें भावना ही खोजना मूर्खता है। आपत्ति के समय बुद्धि काम करना छोड़ देती है। इस कठिन समय में मैं आप लोगों को केवल यही बतलाना चाहती हूँ कि आप लोग यह समझ लीजिए और निश्चित रूप से समझ लीजिए कि जो लोग पाकिस्तान में हिन्दुओं का वध करके मुसलमानों के शुभचिंतक बनना चाहते हैं वे ही इस्लाम के कट्टर शत्रु हैं। भारत से आने वाले मुसलमान उन्हें गालियाँ देंगे। वे ही उनके सर्वनाश के कारण बन रहे हैं और इसी प्रकार भारत में जो लोग मुसलमानों का संहार कर रहे हैं वे नीच हमारे कट्टर शत्रु हैं। वे ही हमारे मार्ग में काँटे बन रहे हैं। वे ही हम लोगों को यहाँ से मुसलमान गुण्डों द्वारा भगाए जाने के कारण हैं। हमें उनसे घृणा करनी

चाहिए; वे घृणा के पात्र हैं। समय इसका स्वय प्रमाण देगा।" इतना कहकर शान्ता चुप हो गई।

"तुम सत्य कह रही हो बेटी। मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूँ।" सरदारजी ने सिर नीचा करके कहा और सभी लोग जो विपक्षी भावना रखते थे, अब अपनी भूल का अनुभव कर रहे थे।

इतने में सामने से एक कार आती दिखलाई दी। वही लाल कार थी और वह सीधी आकर वहीं पर रुकी। कार को देखकर शान्ता समझ गई कि भैया आजाद आ रहा है। शान्ता ने खड़े होकर नमस्कार किया और नमस्कार का उत्तर देते हुए आजाद बोला, "कहो बहन! यह क्या पंचायत लगा रखी है। ठीक तो रहीं कल! मैं कुछ ऐसे कामों में फँसा रहा कि यहाँ आकर तुम से मिलना मुमकिन ही नहीं हो सका। यहाँ एक दो बार आया अवश्य, परन्तु समय इतना कम था कि तुमसे मिल नहीं सका।"

"शहर की क्या दशा है भैया!" शान्ता ने उत्सुकता से पूछा।

"दशा क्या है बहन! वही दशा है। खुदगर्ज लोगों की बन आई है। शासन मानों समाप्त हो चुका है। पुलिस को तो लापता ही समझो। हाँ, मिलिट्री कहीं-कहीं पर अवश्य दिखलाई देती है, परन्तु वह भी एक अजीब ढंग से काम कर रही है। जनता की रक्षा का ध्यान किसी को नहीं है। अत्याचार अपनी हद को पहुँच गया है। एक रुपए के लिए एक इन्सान की जान लेना बुरा नहीं समझा जाता। हर आदमी इस नई मिली आजादी का यह मतलब समझ रहा है कि वह अपनी दीवानगी प्रदर्शित करने के लिए आजाद है। कोई ताकत नहीं है जो उसके मार्ग में रुकावट पैदा कर सके।

मजहब के नाम पर मजहब के कलंक मनमानी कर रहे हैं। लाहौर की शानदार बस्ती को उजाड़ कर, जला कर, लूट कर, खाक में मिलाया जा रहा है। उनको कोई कुछ कहने-सुनने वाला नहीं रहा। गुण्डों का बोलबाला है। मिलिट्री बराबर लुटेरों का साथ दे रही है। सरकार के इरादे का पता नहीं चलता, परन्तु दिखावट में वह रोकना अवश्य चाहती है। हो सकता है कि वास्तव में चाहती भी हो, परन्तु आज का मुसलमान इस बात का यकीन किस तरह करे कि जिसके कानों में इतने दिन से मुस्लिम-लीग आपसी द्वेष का जहर घोलती आई है। आज वह कैसे समझे कि उसी मुस्लिम-लीग के नेता हिन्दुओं और उनके जान-माल की रक्षा करना चाहते हैं।

शरीफ खान्दानी मुसलमानों की हालत तुम लोगों से भी खराब है। तुम खुल कर अपनी राय का इजहार तो कर सकते हो, वे यह भी नहीं कर सकते। अगर वे ऐसा करने का साहस करते हैं तो उन्हें काफिर होने का फतवा दिया जाता है और वह फतवा देने वाले हैं ये मुल्ले।

तुम जानती हो शान्ता कि मुझे इन मुल्ले और तिलकधारी पंडितों से कितनी घृणा है ? ये लोग जनता के पैसे पर पलते हैं और जनता में ही द्वेष और वैर की आग फूँकना इन नीचों का उद्देश्य रहता है । मैं कहा करता था कि यदि भारत को भारत बनाना है तो इन पंडित और मुल्लों को एक लाइन में खड़ा करके गोली से उड़ा देना चाहिए । मानवता के वृक्ष की जड़ों में ये वे खतरनाक कीड़े हैं कि जो पेड़ की खूराक को स्वयं चाट जाना चाहते हैं । इनका सर्वनाश होना उतना ही आवश्यक है जितना देशकी तरक्की का होना । ये ही हमें गुमराह करने वाले हैं । आपस में नफरत का प्रचार करना ही इनका काम है । मानव मानव नहीं रह सकता जब तक इस तबके का वीज नाश नहीं हो जाता ।"

आजाद कहता जा रहा था और सब लोग शान्तिपूर्वक सुन रहे थे । किसी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला । सब शान्त थे, मौन, केवल आँखें आजाद के मुख पर टिकी हुई थीं । आजाद के पास एक पाँच-छ: वर्ष की लड़की खड़ी थी, जो कार से उसी के साथ उतरी थी । अभी तक शान्ता का ध्यान उस ओर नहीं गया था । अचानक उसे देखकर पूछा, "यह कौन है भैया ?"

"यह तुम्हारे लिए एक छोटी वहन लाया हूँ शान्ता । इसे मेरी अमानत समझ कर अपने पास रखना ।" कहकर आजाद की आँखों से आँसू गिर पड़े । सभी लोगों ने बड़े आश्चर्य से एक मुसलमान को इस प्रकार रोते हुए देखा, क्योंकि उनकी दृष्टि में वहाँ पर किसी भी मुसलमान के लिए रोने का कोई कारण नहीं था ।

शान्ता ने कुछ अधिक पूछना उचित नहीं समझा और प्यार से उस वच्ची को उठा कर छाती से लगा लिया । वह बड़े दुलार से बोली, "तुम्हारा नाम क्या है वेटी ?"

"शान्ता" बच्ची ने कहा ।

"यह शान्ता जूनियर है ।" आजाद मुस्करा कर बोला, "अपने घर में केवल यही अकेली बची है । अकस्मात् मैं उधर से निकल रहा था । यह नजारा मेरी आँखों के सामने आ गया । लेकिन वाह ! खूब जवान था इस बच्ची का पिता भी ? देखकर तवीयत खुश हो गई, और इसकी माता, वह तो शेरनी थी । दोनों पर पचासों बदमाशों का झुण्ड टूट पड़ा था । प्राणों का मोह त्याग कर दोनों ने स्वयं अपने मकान में पहले आग लगाई और फिर दोनों कृपाण लेकर उस झुण्ड से भिड़ गए । अफसोस उनके जीते जी मैं वहाँ न पहुँच सका । जब मैं पहुँचा तो माता पृथ्वी पर पड़ी सिसक रही थी और पिता मर चुका था । इस बच्ची की तरफ लपक कर चलने वाले वदमाश को मेरी गोली का निशाना बनना पड़ा । इनकी माँ को मैं हस्पताल ले गया, लेकिन वहाँ जाकर उसने भी दम तोड़ दिया ।"

"मेरी शान्ता !" कहकर एकबार फिर शान्ता ने उस बच्ची को सीने से लगा लिया। शान्ता को ऐसा दिखलाई दिया कि मानों आजाद स्वयं उसी की अपनी पिछले दिन की कहानी दुहरा रहा था। पिछले दिन का पूरा दृश्य उसकी आँखों के सामने चित्रित हो उठा। उसने अपनी कोठी में आग लगती हुई देखी और माता-पिता को छुरें और छत से गिरने वाली लकड़ी का शिकार होते हुए देखा था। शान्ता का तमाम बदन काँपने लगा और वह शान्त होकर बच्ची को गोद में लिए पृथ्वी पर जहाँ-की-तहाँ बैठ गई। शान्ता की आँखों से अनजाने में ही आँसू निकल-निकल कर पृथ्वी पर गिरने लगे और वह थोड़ी देर तक ऊपर को नहीं देख सकी।

इसी समय शान्ता का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित कराते हुए आजाद ने कहना प्रारम्भ किया, "बहन शान्ता ! मैंने तमाम शहर खोज लिया परन्तु कहीं भी मैं रमेश बाबू का पता नहीं निकाल सका।"

"क्या कहा भैया ?" शान्ता ने स्वप्निल अवस्था से जागृत-सी होकर कहा।

"शहर का कोना-कोना मैंने छान लिया, स्टेशन से जाने वाली हर गाड़ी देखी, हर मोटर पर गया परन्तु कहीं भी रमेश बाबू न मिल सके ?"

"फिर क्या विचार है भैया ? क्या उन्हें भी किसी नीच ने मौत के घाट उतार दिया ?" शान्ता ने करुण दृष्टि से आजाद के मुख पर देख कर पूछा।

"नहीं बहन ! नहीं ! यह असम्भव है। एक बार उस कमरे से सुरक्षित उतरने पर कोई ताकत नहीं है जो रमेश बाबू का बाल भी बाँका कर सके। मेरा तो मन यह कहता है कि वह पाकिस्तान की सीमा पार कर चुके।" गम्भीरतापूर्वक आजाद ने कहा।

"यह केवल आपका अनुमान मात्र है !" शान्ता दीनतापूर्वक बोली।

"अनुमान नहीं बहन ! यह मेरा हृदय कह रहा है और यह सत्य है, असत्य हो नहीं सकता।" आजाद आत्मविश्वास के साथ दृढ़तापूर्वक बोला।

"यह सच है कि जिसका कोई सबूत नहीं, परन्तु फिर भी जो मैं कह रहा हूँ उसमें मेरी रूह बोल रही है। खैर ! जो कुछ भी सही। आने वाला समय बतलाएगा। मैंने तुम दोनों के लिए हवाई जहाज की सीटों का इन्तजाम कर दिया है। ये लो अपने टिकट।" टिकिट शान्ता के हाथ में देते हुए आजाद ने कहा। "बुधवार को सुबह नौ बज कर पैंतीस मिनट पर चलने वाले जहाज से तुम जा सकोगी। टिकट देहली के हैं। मैडेन-होटल, कश्मीरी गेट, में मैंने तुम्हारे लिए कमरा नम्बर पच्चीस किराए पर तै कर दिया है। जब तक कोई और उचित प्रबन्ध न हो, तब तक तुम वहाँ सुरक्षित रह सकोगी। शायद इस बीच में मेरी कोई सूचना तुम्हें न मिल सके, तो तुम चिंतित न होना।

बुधवार की सुबह मैं स्वयं तुम्हें लेजाकर एरोड्रम पर सवार करा दूँगा। अब यहाँ पर और अधिक रहना तुम्हारे लिए उचित नहीं।" कहते हुए आजाद का दिल भारी हो आया। शान्ता शान्त थी। उसने केवल यही कहा, "जो तुमने प्रबन्ध किया है, उचित ही है भैया ? अब और हो भी क्या सकता है इसके अतिरिक्त ? और कुछ चारा भी तो नहीं है।"

"अच्छा ! खुदा हाफिज ! मैं अब जाता हूँ।" कहकर आजाद अपनी कार पर सवार हो गया और सब लोग कार को दूर तक जाती हुई देखते रहे।

५

"पूर्वी पंजाब की दशा पश्चिमी पंजाब से कुछ अधिक अच्छी नहीं थी। दोनों नर-संहार के क्षेत्र बने हुए थे। एक ओर यदि हिन्दुओं का बीज-नाश करने का प्रयत्न किया जा रहा था तो दूसरी ओर मुसलमानों का। गाँव की भोली जनता को भारत के प्रमुख लीडरों के नाम पर खुदगर्ज लोगों ने बहका कर वे अनर्थ कराए कि जिन्हें सुनकर कलेजा मुँह को आता है।

इस बदलती हुई परिस्थिति का कुछ दल विशेषों ने अपने शक्ति-संगठन करने में प्रयोग किया है। हिन्दू-जनता की रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर कुछ उनके ठेकेदार बन बैठे, ठीक उसी प्रकार जैसे पाकिस्तान में मुसलमान-जनता के ठेकेदार मुसलमान गुण्डे थे। जनता भी इनकी ओर आकर्षित हुई; एक सहानुभूति के साथ, एक उत्साह के साथ और साथ ही उस समय पैदा होने वाली झूठी और छिछली धार्मिक भावना को लेकर। हिन्दू-समाज का एक काफी बड़ा दल इस सूत्र में बँधकर हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गया।

भारत-विभाजन से पूर्व मुस्लिम लीग के डाइरेक्ट एक्शन का इन लोगों ने मुँह तोड़ उत्तर दिया। लाहौर, दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, बिहार, यू० पी० सभी जगह डाइरेक्ट एक्शन ने अपना रंग दिखलाया था, परन्तु उसमें उन्हें मुँह की खानी पड़ी थी। जस रूप से यह जवाब दिया गया था वह कांग्रेस के सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत था, परन्तु फिर भी उस कार्य से लीगी गुण्डेबाजी का दमन हुआ और एक आतंक की भावना लीगियों के हृदय में पैदा हो गई। भारत की हिन्दू-जनता पर इसका प्रभाव पड़ा और उन्होंने आंशिक रूप में इस दल को इस आपत्ति में अपना

संरक्षक-सा मान लिया।

भारत-विभाजन के पश्चात् परिस्थिति नितान्त विपरीत हो गई। दोनों सरकारों के उत्तरदायित्व पृथक्-पृथक् हुए और इसीलिए ऐसे समय में धार्मिक संस्थाओं का कार्य-क्षेत्र भी बदल गया। मुस्लिम लीग अपने डाइरेक्ट ऐक्शन को देख चुकी थी और उसमें उसे मुँह की खानी पड़ी थी। वह मुँह की खाने वाली बात का गुबार खुद-गर्ज लोगों के दिलों में बुरी तरह भरा हुआ था। विभाजन होते ही वह दबा हुआ ज्वालामुखी पहाड़ एकदम फूट निकला। लाहौर में नंगी तलवारें लेकर निकला हुआ जुलूस वहाँ के मुसलमानों को भूला नहीं था। लाहौर में रक्त की नदियाँ बहा देनेवाला नारा भी उनके कानों में बुरी तरह चुभा हुआ था। अवसर पाते ही रक्त की नदियाँ बहनी प्रारम्भ हो गई थीं।

अपने ही हाथों द्वारा लगाई हुई ज्वाला अपने ही घर में दहक उठी। पश्चिमी पंजाब में सिक्खों की शामत आ गई। खोज-खोजकर उन्हें गुण्डों ने शिकार बनाया। उनके वस्त्र और वेष-भूषा उनके लिए साइनबोर्ड बन् गए। और लोगों की तरह बच कर निकलना उनके लिए कठिन हो गया। भारत-सरकार ने उन्हें वहाँ से निकाल लाने में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाई।

पश्चिमी पंजाब के इस नरमेध यज्ञ का गहरा प्रभाव पूर्वी पंजाब पर पड़ा। कुछ दिन के लिए सरकारी बागडोरें ढीली पड़ गईं और अत्याचार के बन्धन मुक्त हो गए। हिन्दू-गुण्डा-दल ने परिस्थिति का लाभ उठाकर अपने हाथ साफ करने प्रारम्भ कर दिए। भारत का विभाजन होते ही भारत में मुसलमान-जनता का साहस समाप्त हो गया। उन्होंने अपने को निस्सहाय पाया और हिन्दुओं की दया पर अपने को छोड़ दिया। ऐसी परिस्थिति में उनकी कमजोरी देखकर हिन्दू जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए अप्रगतिशील दलों ने अपनी पूरी शक्ति उसी कार्य में लगा दी जो कार्य कि पश्चिमी पंजाब में लीग और वहाँ के होम-गार्ड कर रहे थे।" कहते-कहते रमेश बाबू को मानव की खुदगर्जी पर क्रोध आ गया। वह उत्तेजित होकर बोले, "लेकिन बाबा! यह दानवता सदा नहीं रह सकती। इस प्रकार मानव-जाति का संहार कराने वाले दल कभी भी अपने ध्येय में सफल नहीं हुआ करते। 'हिन्दू' और 'मुसलमान' ये दोनों ही व्यर्थ के विचार हैं। हमें भूल जाना होगा इस भेद-भाव को।" कहते-कहते रमेश बाबू चुप हो गए।

"तुम ठीक कह रहे हो बेटा! जब तक इस भेद-भाव को भुलाया नहीं जाएगा उस समय तक दोनों को सुख-शान्ति नहीं मिल सकती। दोनों को बराबर वैर की आग में जलते रहना होगा।" वृद्ध मुसलमान ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

दोनों बैठे इस प्रकार बातें कर रहे थे। गाड़ी चलती जा रही थी। पश्चिमी

पंजाब की सीमा समाप्त होते-होते उस गाड़ी से प्रायः सभी मुसलमान उतर चुके थे। कहीं कोई एक आध व्यक्ति नाम-मात्र के लिए रह गया था। रमेश बाबू ने अब और अधिक अपने आप को छुपाने का प्रयत्न न किया। उन्होंने टर्किश कैप उतारकर एक ओर रखते हुए बुजुर्गवार से कहा, "बाबा ! आप मुझे क्षमा करेंगे कि मैंने अभी तक आपको धोखे में रखा।"

"यह कैसे बेटा ?" आश्चर्यचकित होकर बुजुर्गवार ने पूछा।

"यही कि आप मुझे मुसलमान समझे हुए थे और वास्तव में मैं हिन्दू हूँ। मेरा नाम रमेश है और मैंने सुरक्षित लाहौर से भाग निकलने के लिए यह भेष बदला था। अब मैं भारत की सीमा में आ गया हूँ। अब मुझे किसी बात का भय नहीं है। इसलिए अब और अधिक अपने को छुपाना मैं व्यर्थ समझता हूँ।" रमेश बाबू ने कहा।

यह सुनकर बुजुर्गवार का बूढ़ा शरीर थर-थर करके काँपने लगा। यह अन्तिम सहारा भी उन्हें हाथों से जाता हुआ दिखलाई दिया। उनका दिल अभी तक यह जानकर निश्चिन्त था कि चलो एक डिब्बे में दो तो मुसलमान हैं। यदि कोई आपत्ति आई तो यह नवयुवक उनका कुछ साथ देगा, परन्तु अब वह सहारा भी समाप्त हो गया। लाहौर से गाड़ी जिस समय चली थी तो उसमें से दो हिन्दुओं को मारकर खिड़की से बाहर फेंक दिया था। वह दृश्य उसकी आँखों के सम्मुख आ गया। बुजुर्गवार के हृदय की गति धीमी पड़ने लगी और उनका सिर चकरा रहा था। मृत्यु उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों हाथ पसारे उनके सम्मुख खड़ी उनके अन्तिम श्वास गिन रही थी।

बुजुर्गवार के मुख के बदलते हुए भावों को पढ़ने में रमेश बाबू को देर नहीं लगी। वह तुरन्त भाँप गए कि उनके इस प्रकार रहस्योद्घाटन से वृद्ध के दिल पर गहरा सदमा पहुँचा है और इसीलिए उनकी जबान बन्द हो गई है। वह गम्भीरतापूर्वक बोले, "परन्तु बुजुर्गवार ! आप यह न समझें कि मैं हिन्दू हूँ तो आप यहाँ अकेले रह गए। लाहौर से चलने पर गाड़ी से जिस प्रकार दो व्यक्तियों को मौत के घाट उतार कर नीचे फेंक दिया था वह दुर्घटना मेरे जीते जी यहाँ होनी असम्भव है। हो वहाँ भी नहीं सकती थी, परन्तु यदि मैं वहाँ रोकने का प्रयत्न करता तो मेरा रहस्य खुल जाता और मुझे वहीं पर समाप्त हो जाना होता। मैंने लाहौर डर कर भाग आने के लिए नहीं छोड़ा है, बल्कि मानव-जाति के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने के लिए छोड़ा है। मैं इन्सान हूँ और दानवता के विपरीत अपनी सम्पूर्ण शक्ति से संघर्ष करूँगा। मेरा यही उद्देश्य है वहाँ से यहाँ आने का। आप पर किसी प्रकार की आँच आती देखकर मैं समझूँगा कि कोई नीच मेरे पिता पर आघात करना चाहता है।"

रमेश बाबू की बात सुनकर बुजुर्गवार को कुछ धैर्य अवश्य बँधा परन्तु घबराहट बराबर बनी रही। वह कुछ कहना चाहते थे परन्तु ओंठ न खुल सके। उनकी सहमी आँखों ने सब कुछ कह दिया। वह अपने दिल को सँभालकर चुपचाप बैठ गए। गाड़ी बढ़ती जा रही थी दिल्ली की दिशा में।

प्रत्येक स्टेशन पर हुल्लड़बाजी थी। पुलिस थी और फौज के दस्ते भी, परन्तु वे सभी मानों तमाशबीन थे। वे गुण्डों की हुड़दंगेबाजी का तमाशा देख रहे थे। बदमाशों को खुली छुट्टी दी हुई थी खोज-खोजकर मुसलमानों का संहार करने की। परन्तु यह दशा सभी की नहीं थी। मद्रास-रेजीमेण्ट के सिपाही पूर्ण रूप से अपना कर्तव्य-पालन कर रहे थे। डोगरा रेजीमेण्ट की टोलियाँ भी विश्वासघात नहीं कर रही थीं। सिख रेजीमेण्ट के दिल पर गहरा घाव था और साथ ही एक तूफानी गुबार भी। सिखों के साथ होने वाले पश्चिमी पंजाब के अत्याचार ने उनकी आँखों के डोरे लाल कर रखे थे।

गाड़ी किसी प्रकार स्टेशनों को पार करती जा रही थी। अचानक मार्ग में भीड़ ने गाड़ी को रोक लिया। रमेश बाबू ने खिड़की के पास आकर देखा, भीड़ बहुत थी। एक क्षण सोचकर रमेश बाबू गाड़ी से नीचे उतरे और सीधे उस भीड़ के पास पहुँचकर बोले, "भाइयो! आप लोग जरा मेरी बात सुनिए। आप जो कुछ करने जा रहे हैं वह हिन्दू-धर्म के मस्तक पर कलंक होगा। दो चार मुसलमानों को मारकर आप संसार के मुसलमानों को समाप्त नहीं कर सकते। आप लोगों को महात्मा गांधी के सिद्धान्तों पर अटल रहना चाहिए।"

"परन्तु हमसे तो कुछ लोगों ने यही कहा है कि महात्मा गांधी यही चाहते हैं। कल चार आदमी हमारे गाँव में आए थे और उन्होंने कहा था कि महात्मा गांधी जो कुछ कह रहे हैं वह राजनीति की चाल है। ऊपर से उन्हें यही कहना चाहिए, परन्तु वह दिल से चाहते हैं कि मुसलमानों को समाप्त कर दिया जाए।" भीड़ में से एक युवक ने आगे बढ़कर कहा।

"भाईयो! इस तरह तुमको बहकाने वाले कुछ धोखेबाज लोग हैं, जो खुदगर्जी के कारण गलत प्रचार करते फिरते हैं। उनका कोई सिद्धान्त नहीं है। वे जानते हैं कि भारतवासियों का महात्मा गांधी पर अटल विश्वास है। इसीलिए उनका नाम लेकर इस प्रकार का प्रचार कर रहे हैं। यह विष है, इसे आप लोगों को अपने दिलों से निकाल देना चाहिए। आपका कर्तव्य है कि आप अपने पड़ौसी मुसलमानों की रक्षा करें। वे आपके भाई हैं, साथी हैं, पड़ौसी हैं, शत्रु नहीं हो सकते।" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू ने उनको समझाते हुए कहा।

यह भीड़ गाँव के नौजवानों की थी। सीधी-सच्ची बात उनकी समझ में

गई। वे सब-के-सब महात्मा गांधी की जय का नारा लगाते हुए वापस चले गए। रमेश बाबू आकर फिर गाड़ी के डिब्बे में बैठ गए। बुजुर्गवार का हृदय इस समय प्रेम के सागर में गोते लगा रहा था। रमेश बाबू में उन्होंने महात्मा गांधी के दर्शन किए और अपने को धन्य समझा। अब उन्हें किसी प्रकार का भी भय नहीं था। वह शान्ति के साथ बोले, "बेटा! ये लोग दरअसल बहकाए हुए थे। कितने भोले थे ये लोग? न इनमें गुण्डापन था और ना खुदगर्जी। ये लोग यहाँ महात्मा गांधी का हुक्म बजा लाने के लिए आए थे।"

"यही बात है, बुजुर्गवार! शहरों में इस प्रकार की गंदगी फैलाने वाले खुदगर्ज लोग हैं, जिनका धर्म-अधर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। कभी उन्होंने नमाज नहीं पढ़ी और कभी उन्होंने संध्या नहीं की, कभी मस्जिद में नहीं गए और कभी मन्दिर के दर्शन नहीं किए, कभी रोजा नहीं रखा और कभी कोई व्रत नहीं किया। उनका उद्देश्य है धर्म की आड़ में लूट-मार और व्यभिचार करना। उनके पास किसी को माँ, बहन, बेटी के रूप में देखने वाली दृष्टि नहीं है। हर स्त्री को ये केवल अपने आनन्द-भोग की सामग्री के रूप में देखते हैं। उनके पास हृदय नहीं, पत्थर होता है, मानवता नहीं, दानवता होती है, दया नहीं कठोरता होती है, विचार नहीं दीवानगी होती है और संयम नहीं, विलासिता होती है। उनका हृदय व्यभिचार के अड्डे हैं और मन पापों का भंडार। ये गाँवों के लोग उस प्रकार के नहीं थे। यही कारण था कि इन पर मेरे कहने का प्रभाव हुआ। यदि ये शहर के गुण्डे होते तो मुझे दूसरी शक्ति का प्रयोग करना होता।" रमेश बाबू ने आँखों की त्यौरी चढ़ाते हुए कहा। उनका मुख इस समय क्रोध से तमतमा रहा था।

"आज भारत को तुम्हीं जैसे जीदार बच्चों की जरूरत है बेटा!" बुजुर्गवार ने प्यार से कहा और उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठा।

गाड़ी के इस डिब्बे में अनेकों विचारों के व्यक्ति थे। कुछ व्यक्ति तो उन्मुक्त कंठ से रमेश बाबू के कार्य की सराहना कर रहे थे और कुछ मन-ही-मन कुढ़ रहे थे। उनमें धीमे-धीमे स्वर में कानाफूँसी हो रही थी, "बड़ा आया है महात्मा गांधी का बच्चा बन कर।" एक ने कहा।

"यह कांग्रेस का राज्य अब नहीं चल सकेगा। हिन्दुओं ने प्राण देकर कांग्रेस को सींचा है और आज ये कांग्रेस के नेता चले हैं हिन्दुओं का ही दमन करने के लिए। हमें कहते हैं शान्त रहो, शान्त रहो और वहाँ पाकिस्तान में हमारे भाइयों पर अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं। वहाँ हमारे बच्चों का कत्लेआम हो रहा है, हमारी स्त्रियों की आबरू लूटी जा रही है, हमारे नौजवानों को छुरों के घाट उतारा जा रहा है। यहाँ ये हमें उपदेश करते हैं कि हम मुसलमानों के साथ भाइयों जैसा व्यवहार करें।"

दूसरा बोला ।

"क्या ये वे ही मुसलमान नहीं हैं जिन्होंने पाकिस्तान के लिए वोट दिया था ? क्या ये वे ही मुसलमान नहीं हैं जिन्होंने अंग्रेजी सरकार का उस समय साथ दिया था जब कि हम जेलों में सड़ रहे थे ? क्या ये वे ही मुसलमान नहीं हैं जिन्होंने बंगाल में हत्याकांड करके अपने डाइरेक्ट एक्शन की करतूत दिखलाई ? उस समय दया कहाँ गई थी ? आज इन्हें क्या अधिकार है भारत में रहने का ? इन्हें पाकिस्तान चले जाना चाहिए, अन्यथा मौत के घाट उतर जाना चाहिए। हिन्दुस्तान अब हिन्दुओं का है और हिन्दू ही इसमें रहेंगे ।" तीसरा दाँत चबाकर बोला ।

"इस व्यक्ति ने इस बूढ़े खूसट को अभी तक बचा रखा है। देखते हैं इस पाजी को यह कब तक प्राण-दान देता रहेगा ? अभी वह हल्ला ही बुलकर नहीं आया है कि जिसके सामने फौजी सिपाही भी थर-थर काँप कर एक ओर हट जाते हैं और कह देते हैं कि 'लो भाई तुम्हें आजादी है, जो चाहो सो करो।' जब वे खून के प्यासे हिन्दुत्व के लाल यहाँ अपने दुधारे छुरों को पैनाते हुए आएँगे तो इन महाशय की बहादुरी और उपदेश सब रफूचक्कर हो जाएँगे।" चौथे ने क्रोध और गम्भीरता के साथ कहा ।

"मैं दावे से कह सकता हूँ कि यह इस खूसट को दिल्ली तक बचाकर नहीं ले जा सकता, नहीं ले जा सकता । अभी एक सिक्खों का दस्ता आया नहीं कि इसका काम तमाम हुआ ।" पाँचवाँ बोला ।

"सिक्खों का दास्ता ही क्या ? अनेकों हिन्दू वीरों ने कमाल किया हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके हर स्वयं-सेवक को काली माई से वरदान प्राप्त हो चुका है ।" छठे ने धीरे से कहा ।

"यही बात है ।" एक बोला ।

बातें सब बहुत ही चुपचाप हो रही थीं । किसी में इतना साहस नहीं था कि वह रमेश बाबू के तेज के सम्मुख आ सके और अपने विचारों का प्रदर्शन कर सके । परन्तु दिल में उन सभी के एक द्वेष की ज्वाला जल रही थी । यह बेचारा बूढ़ा उनकी आँखों में खटक रहा था । उनकी दशा इस समय उन शिकारियों की जैसी थी कि जिनके सामने उनका शिकार बैठा हो, परन्तु एक शेर के संरक्षण में । डरते थे कि यदि उसकी ओर हाथ बढ़ाने का साहस किया तो प्राणों से हाथ धोने होंगे । वे इस प्रतीक्षा में थे कि कहीं से कुछ ऐसे शिकारी कुत्ते आ जाएँ कि जो इस शेर का शिकार कर सकें ।

गाड़ी पूरी रफ्तार पर चली जा रही थी, स्टेशन छोड़ती हुई । हुल्लड़बाजी की कमी कहीं पर भी नहीं थी । अनेकों जगह गाड़ी पर पत्थर आए और रमेश बाबू को

गुण्डों का सामना करना पड़ा, परन्तु वह अपने कार्य में सफल रहे। इस डिब्बे में चढ़ने का साहस किसी में नहीं हुआ। गुण्डों का हिन्दुत्व-प्रेम रमेश बाबू के रिवालवर की नाल के सामने काफूर हो जाता था। बड़े-बड़े सशक्त पहलवान, जिनकी आँखों के डोरे शराब के नशे में लाल होते थे, जिनके पौरुष का प्रमाण बूढ़े और असहाय मुसलमानों की छुरे से बाहर निकली हुई आँतों और पसलियों में से झाँक रहा था, जिन की धर्मांधता बालात्कार के पश्चात् अचेतन पड़ी हुई भारत की ललनाओं के शवों से प्रस्फुटित हो रही थी, आज मूँछों पर ताव दिए हिन्दू धर्म के संरक्षक बने थे।

इस वीभत्स कांड को देख कर रमेश बाबू को लगा कि मानों भारत ने पिछले दिनों हिन्दू-मुस्लिम एकता का ढिंढोरा पीट कर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से जो युद्ध किया, वह कोरा दिखावा मात्र था, सत्य नहीं था। उसमें छल था, पाप था और थी घृणा। क्या अशफाकुल्ला ने अपने प्राणों की बलि इसी असत्य-मत का प्रतिपादन करने के लिए दी थी ? क्या आजाद, भक्तसिंह, बिस्मिल, रोशन और जितेन्द्रनाथ दास ने अपनी आहुतियाँ देकर भारतीय जनता को यही पाठ पढ़ाया था ? क्या नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज का संचालन इसीलिए किया था कि उसका इस प्रकार भारतवर्ष में उपहास किया जाएगा ?

परन्तु यदि हम कहें कि यह सब कुछ नहीं, तो फिर यह सब क्यों ? हम क्यों इस प्रकार अपनी लहलहाती हुई खेती को उजाड़ने पर तुले हैं ? क्यों हमारे विचारों में ऐसा विष घुल गया है कि हम उससे मुक्त नहीं हो सकते ?

रमेश बाबू का मन इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था और गाड़ी चलती जा रही थी, मानों वह किसी के लिए नहीं रुकेगी। देहली से मार्ग के स्टेशन मास्टरों को तार आ चुके थे कि आने वाली गाड़ी को मार्ग में किसी भी स्टेशन पर न रोका जाए और उसे सीधा लाइन क्लियर देते हुए सुरक्षित रूप से देहली आने दिया जाए। स्टेशनों पर सेना का अच्छा प्रबन्ध था और गाड़ी बड़े वेग से चली जा रही थी।

"अब सम्भवत: गाड़ी किसी स्टेशन पर नहीं रुकेगी।" रमेश बाबू ने बुजुर्गवार की ओर संकेत करके कहा।

"शायद।" दबी-सी जबान से बुजुर्गवार बोले। उनके हृदय का साहस समाप्त हो चुका था। लाहौर में देखे हुए दृश्य उन्हें रह-रह कर याद आ रहे थे और अपनी कायरता पर उन्हें क्रोध आ रहा था कि क्यों उन्होंने उन बेचारे दो हिन्दुओं को अपनी आँखों के सामने मरते देखा और क्यों उन्हें बचाने का तनिक भी साहस के साथ प्रयास नहीं किया।

"नहीं, मेरा विचार है कि मुसलमान यात्रियों को सुरक्षित रूप से देहली पहुँचने में सुविधा देने के लिए ही यह भारत-सरकार ने किया है। वहाँ पर सुरक्षा का

अच्छा प्रबन्ध होगा। पूर्वी पंजाब क्योंकि पश्चिमी पंजाब से मिला हुआ है और वहाँ पर नित्य ही लाहौर इत्यादि के आस-पास के व्यक्ति अपने धन, जन की आहुतियाँ देकर भागे आ रहे हैं, इसलिए उनके दिलों की दहकती हुई ज्वाला ने इस प्रान्त को ज्वाला-ग्रस्त कर दिया है। यहाँ पर मुसलमानों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हुए भी सरकार को विशेष सफलता नहीं हो रही है। इसीलिए दिल्ली में शरणार्थी-कैम्प बनाए हैं।" रमेश बाबू ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"तुम्हारा विचार ठीक है बेटा? यदि यह गाड़ी कहीं मार्ग में न रुकी तो शायद मैं अपनी बच्ची से एक बार मिल सकूँ। मेरी बेटी रशीदा दिल्ली में अकेली है। मेरा दिल चाहता है कि मैं पर लगाकर उसके पास पहुँच जाऊँ।" बड़ी घबराहट और विकलता के साथ बुजुर्गवार बोले।

"आप विश्वास रखिए बुजुर्गवार मैं आपको सुरक्षित रूप से वहाँ पहुँचा दूँगा। इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं। इन लूट-मार करने वालों में साहस की कमी होती है। ये केवल निहत्थे और असहायों पर ही वार कर सकते हैं। मेरे खूनी रिवाल-वर की गोली के सामने सीना लगाना इनके बूते का काम नहीं है।" तनिक अभिमान के साथ रमेश बाबू ने कहा।

"मुझे यकीन है बेटा!" बुजुर्गवार बोले और फिर चुप होकर सहमे-से एक ओर बैठ गए। उनका साहस समाप्त हो चुका था और निराशा में केवल रमेश बाबू ही एक उनका सहारा था। गाड़ी अपनी पूरी रफतार पर चली जा रही थी, स्टेशन-पर-स्टेशन छोड़ती हुई।

८

आजाद शान्ता को लेकर हवाई अड्डे पर पहुँचा। अभी जहाज छूटने में आधा घण्टा था। तीनों ने रेस्टोरेण्ट में बैठकर चाय पी। छोटी शान्ता को बड़ी शान्ता ने पिछले दो दिन इतने प्यार से रखा था कि वह अपने माता-पिता को भूल गई थी और अब बड़े उत्साह के साथ इधर-उधर की बातें कर रही थी।

"वहाँ पहुँचते ही पत्र लिखना शान्ता! और साथ ही रमेश बाबू का पता निकालने का भी प्रयत्न करना। मेरा खयाल है कि वह या तो अमृतसर पहुँच गए हैं, या दिल्ली। दो जगह के अतिरिक्त और कहीं नहीं जा सकते।" आजाद ने चाय की

प्याली मेज पर रखते हुए कहा।

"आप बड़े आशावादी प्रकृति के हैं भैया ! वस्तु-स्थिति के दूसरे पहलू पर आप कभी दृष्टि डाल कर नहीं देखते। भगवान् करे आपके शब्द सत्य हों, परन्तु मेरी आशाओं के स्वप्न तो बिलकुल समाप्त हो चुके हैं। केवल आपके प्रोत्साहन भरे शब्द कभी-कभी मेरे निराशापूर्ण जीवन में एक ज्योति का संचार कर देते हैं, अन्यथा वहाँ तो अन्धकार छा चुका है। "आपने यह खिलौना जो मुझे लाकर दिया है", छोटी शान्ता का मुख प्यार से चूमते हुए शान्ता ने कहा, "अब यही मेरे जीवन का सहारा है। मैं अपने जीवन का समस्त प्यार इसी पर केन्द्रित कर चुकी हूँ।" शान्ता बोली और उसने अपनी गर्दन नीचे को झुका ली।

"नहीं शान्ता ! नहीं। मैं जो कहता हूँ वह कोरा स्वप्न नहीं है, रमेश बाबू के जीवन का अवलोकन है। मैं रमेश बाबू को भली प्रकार जानता हूँ। उन्हें पकड़ लेना खालाजी का घर नहीं है। सन् ब्यालीस में उन्होंने पुलिस के छक्के छुड़ा दिए थे। जिस समय वह भेष बदलते थे तो कोरे पठान मालूम देते थे। मुझे अपनी और रमेश बाबू की वह पेशावर-यात्रा अभी तक नहीं भूली है जब चार बार पुलिस ने उन्हें गौर से देख-देखकर भी छोड़ दिया था। उनकी बोल-चाल, रंग-ढंग सब आवश्यकता के अनुसार बदल जाते हैं।" आजाद ने हँसते हुए कहा और एक प्रसन्नता का वातावरण बनाने की चेष्टा की।

"उस समय केवल पुलिस से बचना होता था भैया ! परन्तु आज पाकिस्तान का बच्चा-बच्चा पुलिस बना हुआ है। सभी की आँखों में धूल झोंकना साधारण काम नहीं है।" गम्भीरतापूर्वक शान्ता ने कहा।

"नहीं शान्ता यह बात नहीं है। पाकिस्तान के सभी मुसलमान ऐसे नहीं हैं। यहाँ बाल-बच्चों वाले आदमी भी हैं। तुम प्रेम के आवेश में ऐसा कह रही हो। पाकिस्तान से माता के हृदय, पिता के हृदय, बहन के हृदय, भाई के हृदय, स्त्री के हृदय अभी समाप्त तो नहीं हो गए हैं। जो चीज इस समय समाप्त-सी दिखलाई दे रही है वह है इन्सानियत। इन्सानियत पर शैतान गालिब हो रहा है। लेकिन शैतान का जोर सदा बना रहे, यह मुमकिन नहीं। गुस्से में कभी-कभी पिता अपने पुत्र को भी मार डालता है, पति अपनी स्त्री को भी मार डालता है, परन्तु क्या गुस्से का शैतान सिर से उतर जाने पर उसे दुःख नहीं होता ? वह अपने किए काम पर अफसोस करता है। उसका दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता है अपनी करतूतों पर। यही दशा पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के हर बशर की होगी। जब यह भूत उतर जाएगा और इन्सान इन्सानियत में आजाएगा तो वह देखेगा कि उसने शैतान के पंजे में फँसकर क्या-क्या गुनाह

किए और वह पशेमान होगा अपनी काली करतूतों पर। उसका सिर झुक जाएगा और वह गालियाँ देगा उन गुमराह करने वालों को जिन्होंने आपस में यह दुश्मनी और फूट का बीज बोया। जो लोग आज इन काली करतूतों के सरगना बनकर बेचारे बेगुनाह इन्सानों को अपनी खुदगर्जी का शिकार बना रहे हैं, वे लोग इन्सानों की नजरों से हमेशा के लिए गिर जाएँगे और आने वाला इन्सान इन हैवानों के मुँह पर थूकेगा और यह जानकर दुखी होगा कि ये नापाक और गुमराह लोग कोई और नहीं बल्कि उनके अपने ही बुजुर्गवार थे।" कहते-कहते आजाद शान्त हो गया। उसकी आँखों से अशान्ति की ज्वाला निकल रही थी और उसका मन तिलमिला रहा था उस वातावरण में।

"तुम ठीक कहते हो भैया! लेकिन आज तो सर्वनाश हो रहा है। क्या आज की कमी कभी कल पूरी कर सकेगा? क्या आने वाले लोग उस पश्चात्ताप से वर्तमान निर्दयता का खून से सना हुआ आँचल धो सकेंगे? क्या वर्तमान हृदय-हीनता आनेवाली करुणा से समाप्त की जा सकेगी? मेरा तो मस्तिष्क काम नहीं करता भैया! कुछ समझ में नहीं आता कि अन्त में क्या होकर रहेगा? क्या भारतवर्ष की यही दुर्दशा होनी थी? क्या स्वतन्त्रता का मूल्य इस रूप में चुका रहा है भारत?" करुणा भरे स्वर में शान्ता कहती जा रही थी। उसकी आँखें सूखी हुई थीं, मानों उनमें रहने वाले आशाओं के प्रेम-अश्रु सूखकर समाप्त हो चुके थे। हृदय विदीर्ण हो रहा था और जीवन में निराशा व्याप्त हो चुकी थी।

"यह वक्त की जरूरत है बहन! जो कुछ हो रहा है, सब ठीक हो रहा है। एक बड़ी गलती करके जब इन्सान को टक्कर लगती है तो वह टक्कर इतनी जोरदार होती है कि वह तो क्या उसकी आने वाली औलादें भी उसे याद रखती हैं और मरते वक्त वे अपने बच्चों से भी कह जाती हैं कि वे उस गलत रास्ते पर न चलें जहाँ उन्हें टक्कर लगी थी। आज वही टक्कर लग रही है भारत और पाकिस्तान की इस इन्सानियत को। पागल का इलाज बिजली से किया जाता है बहन! उसे एक इतना बड़ा झटका दिया जाता है कि वह बेहोश होकर गिर पड़ता है और झटके से उसकी अक्ल ठीक हो जाती है। भारत और पाकिस्तान के पागल इन्सान का खुदा यह इलाज कर रहा है। यह इतना बड़ा झटका है कि दिमाग खुद-ब-खुद सही काम करने लगेगा। कभी-कभी गहरे सदमे से भी पागलपन दूर हो जाता है। यह वही गहरा सदमा है जो उस पागलपन को दूर भगा देगा। तुम मुझे आशावादी कहा करती हो बहन! सो ठीक ही है। मुझे तो इस बरबादी में आबादी के आसार दिखलाई दे रहे हैं, इस परेशानी में आसानी झाँकती नजर आती है, इन मुर्दा लाशों से जिन्दा बच्चे निकलते दिखलाई पड़ते हैं, इन खण्डहरों में आलीशान और शानदार इमारतें चमक रही हैं, इस फूट और

दुश्मनी में प्रेम और मिलन की झाँकी मिलती है और क्या कहूँ बहन ! इस बटवारे में एक बहुत बड़े और स्थायी मेल का नक्शा दिखलाई दे रहा है। इसलिए मैं कभी-कभी खुश होता हूँ इस पागलपन को देखकर और कभी-कभी दुखी, कभी रोता हूँ और कभी हँसता हूँ।" आजाद बोला।

"जो हो भैया ! पर इस समय तो जो हो रहा है वह आँखों से देखा नहीं जाता। जी मुँह को आता है बरबाद भाइयों की दर्दभरी कहानियाँ सुन-सुनकर। कितनी स्त्रियाँ अपने पतियों से बिछुड़ गईं, कितने बच्चे अनाथ हो गए, कितनी माताओं ने अपने लालों को अपनी आँखों के सामने खो दिया, कितने पिताओं से उनकी सन्तानें छीन-छीनकर मौत के घाट उतार दी गईं ? इन दृश्यों से हृदय काँपने लगता है और सिर चकराने लगता है। समझ में नहीं आता कि आज के मानव को क्या हो गया है ? क्यों उसने इस प्रकार मानवता को खोकर दानव-प्रवृत्तियों को अपना लिया है ?" शान्ता ने कहा।

इसी प्रकार बातें चल रही थीं कि हवाई जहाज के चलने का समय हो गया। सभी यात्रियों को इसकी सूचना मिल गई। ये तीनों उठ खड़े हुए और जहाज की ओर चल दिए। इस समय ये विदा हो रहे थे। जब शान्ता चलने लगी तो आजाद ने जेब से निकाल कर एक नोटों की गड्डी उसे दी और बोला, "बहन ! किसी प्रकार की चिन्ता न करना। परिस्थिति हमेशा यही नहीं रहेगी। ठीक परिस्थिति होने पर मैं हिन्दुस्तान आऊँगा, अवश्य आऊँगा और हाँ वह मेरा काम मत भूल जाना शान्ता !"

"आपका क्या काम भैया ?" आश्चर्य से शान्ता ने पूछा।

"रमेश बाबू की तालाश।" दिल भारी करके गम्भीर स्वर में आजाद ने कहा और डबडबाए नेत्रों से शान्ता की ओर देखा।

शान्ता चुपचाप एक क्षण खड़ी रह गई और फिर छोटी शान्ता को साथ लेकर धीरे-धीरे तख्ते पर से होकर हवाई जहाज में जा बैठी। शान्ता की सीट के पास शीशा लगा हुआ था; उसी में से वह आजाद को झाँक रही थी और आजाद की नजरें भी उसी शीशे पर टिकी हुई थीं। आँखें दोनों की डबडबाई हुई थीं और दिल भारी। आजाद ने उसी शीशे में से शान्ता को अपनी धोती के आँचल से अपनी आँखें पोंछते हुए देखा।

जहाज अब आकाश में उड़ रहा था। आजाद सीधा आकर अपनी कार में बैठ गया और अपने घर की ओर चल दिया। उसका मन आज बहुत उदास था। लाहौर में उसके केवल दो ही साथी थे, एक रमेश बाबू और दूसरी शान्ता। रमेश बाबू पहले ही लापता हो चुके थे और आज शान्ता भी उसे छोड़कर चली गई।

शान्ता उसे भाई कहती थी और वह उसे बहन परन्तु वह शान्ता को दिल से

प्यार करता था, उसे पाना चाहता था सच्चे हृदय से। परन्तु उसके सामने किसी भी प्रकार का प्रस्ताव रखने का उसमें साहस नहीं था। उस समय भी नहीं, जब वह शान्ता की दृष्टि में मनुष्य नहीं देवता बन गया था। बहन होने का रिश्ता विवाह होने से पूर्व का होता है, बाद का नहीं। यों तो संसार की सभी लड़कियों को बहन के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है, परन्तु अवसर आने पर उनमें से किसी एक के साथ विवाह भी हो सकता है। फिर धर्म के संकुचित विचारों की सीमा से आजाद अपने को स्वतन्त्र पाता था और वह था भी। बहन से शादी न करना इत्यादि प्रतिबन्ध सब उसके लिए धार्मिक विडम्बना मात्र थे। ये सब प्राचीन रूढ़ियाँ थीं। जो व्यक्ति इनका खण्डन कर के चलता है उसे इनसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं।

इस पत्थर जैसे विचार रखने वाले, विचारों पर प्राणों तक की आहुति देने में लेशमात्र भी संकोच न करने वाले, आजाद को शान्ता के सामने आकर न जाने क्या हो जाता था? कभी उसका कोई संकेत मात्र भी इस प्रकार का न होता था कि वह शान्ता को प्राप्त करना चाहता था और उसे प्रेम करता था। प्रेम वह उसे अवश्य करता था, यह शान्ता से भी छिपा हुआ रहस्य नहीं था, परन्तु एक भाई भी अपनी बहन को प्रेम करता है, एक पिता भी अपनी पुत्री को प्रेम करता है और एक स्त्री भी अपने पति को प्रेम करती है। इनमें यह कहना कठिन है कि किस प्रेम का आकर्षण अधिक है? सभी अपने-अपने स्थान पर मान्य और पूर्ण हैं, परन्तु स्त्री और पुरुष के प्रेम से भाई-बहन और पिता-पुत्री के प्रेम अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें केवल प्रदान की भावना है, आदान की नहीं, त्याग की प्रेरणा है अधिकार की नहीं। स्त्री और पुरुष में आदान-प्रदान दोनों समान रूप से चलते हैं। आकर्षण दोनों ओर होता है और साथ ही कर्तव्य की दृढ़ता भी।

शान्ता के दृष्टिकोण में आजाद उतने ही बड़े आदर्श का व्यक्ति था कि जो देना जानता था लेने की इच्छा न रखते हुए, जो खो सकता था पाने की इच्छा न रखकर। वह कितना बड़ा था, कितना महान् था?

इन्हीं विचारों में निमग्न आजाद अपने घर पर पहुँच गया। कार गैराज में खड़ी करदी और सीधा अपने कमरे में जाकर बैठ गया। आज उसका मन उदास था, कुछ अशान्त और उचटा हुआ-सा। वह कपड़े उतार कर चुप-चाप पलंग पर लेट गया, मानों चित्त को शान्ति देना चाहता था, पर वह उसे न मिल सकी। वह शान्ता को बार-बार देख रहा था, कभी कुछ स्वप्निल अवस्था में और कभी कुछ भ्रम में। इसी प्रकार न जाने कितना समय निकल गया।

७

"बेटा ! तुमने कल मेरी जान बचा ली, वरना वे लोग मुझे जरूर मार डालते। मैं तुम्हारा तहेदिल से एहसानमन्द हूँ और जिन्दगी भर रहूँगा।" बुजुर्गवार ने बड़ी दीनता से कहा।

"वह मेरा कर्तव्य था बुजुर्गवार ! मेरी मानवता की प्रेरणा थी। इन्सानियत का आग्रह था। गाड़ी जब लाहौर से चली थी, तो उन गुण्डों ने दो निर्दोष घबराए हुए हिन्दुओं के पेट में छुरा भोंककर इस्लाम के नाम पर कलंक लगाया था। मैं उस समय लहू का घूंट पीकर रह गया था। यदि वहाँ मैं कुछ कहने का साहस करता तो सम्भवतः परिस्थिति मेरे अनुकूल न रहती और उनके साथ मुझे भी छुरा भोंककर रेल के डिब्बे से बाहर फेंक दिया जाता। उस समय मेरे चुप रहने का यही कारण था। यहाँ यदि मैं उन हत्यारों के हाथों मारा भी जाता तो तब भी उसमें कोई भ्रम न रहता। एक मुसलमान को बचाने के लिए यदि दस हिन्दुओं के भी प्राण चले जाते तो यह भारतीय-मानवता का उच्चादर्श होता, गिरावट नहीं। आदर्श की प्राप्ति के लिए प्राणों की चिन्ता छोड़ देनी चाहिए, यही मेरे जीवन का लक्ष्य है। भारत की सरकार अपने इस कर्तव्य का पूर्ण रूप से पालन कर रही है। यह जो कुछ भी गुण्डा-गर्दी कहीं-कहीं पर दिखलाई देती है, यह पाकिस्तान में हिन्दुओं पर किए गए अत्या-चारों की प्रतिक्रिया मात्र है।"

"तुम ठीक कह रहे हो बेटा ! इस बटवारे ने हम लोगों से इन्सानियत छीन ली है। हमें हैवान बना दिया है। हम लोगों ने उस वक्त आँखें मींचकर पाकिस्तान के लिए राय दी और ख्वाब देख रहे थे कि न जाने मुसलमानों के लिए पाकिस्तान का तोफा कितना खुशनुमा होगा ? लेकिन आज उसकी असलियत हम लोगों पर खुली है। हमारे जान-माल की हिफाजत भी आज पाकिस्तान नहीं कर सकता। पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं पर जुल्म ढाने से कभी भी हिन्दुस्तान के मुसलमानों का भला नहीं हो सकता।" बुजुर्गवार बोले।

"देश के बड़े-बड़े नेताओं ने भारत की हिन्दू और मुसलमान जनता को कितने दिन तक एकता का पाठ पढ़ाया। गले फाड़-फाड़कर चिल्लाया कि राजनीति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं। योरोप में जर्मनी और इंग्लैण्ड का युद्ध हुआ और कितनी भयंकर परिस्थितियाँ पैदा हुईं। क्यों नहीं वहाँ धर्म ने बीच में पड़कर सन्धि का प्रस्ताव सामने रखा और उस ज्वाला को शान्त किया ? आखिर लड़ने वाले दोनों ओर ईसाई ही तो थे। जापान ने चीन पर अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए क्या कुछ उठाकर रख छोड़ा था ? क्यों नहीं धर्म ने उन्हें मानवता और इन्सानियत का पाठ पढ़ाया ? दोनों बौद्ध ही तो थे। भारत-निवासी इस कठोर सत्य को भुलाकर अपने

पुराने दकियानूसी विचारों के आधार पर आपस में वैर की भावना को बराबर हृदय में पालते रहे। साथ-साथ इस घृणित भावना को सहारा और शक्ति देने वाली परिस्थितियाँ भी उन्हें मिलती गई। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की उखड़ती हुई शक्ति का अन्तिम जादू अपना काम कर रहा था। कुछ व्यक्तिगत प्रलोभनों ने भी उनके साथ अपना उल्लू सीधा किया। जनता के ठेकेदार नेता मुसलमानों के शुभचिन्तक बनकर पाकिस्तान का चमकदार नारा मुसलमान जनता के सामने ले आए। सदियों की गुलाम पड़ी जनता इसके वास्तविक रहस्य को समझने में असमर्थ रही और फल जो होना था सो हुआ।" रमेश बाबू ने कहा।

"सच है बेटा! पर मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि मुसलमानों को पाकिस्तान की इस असलियत का पहले पता चल जाता तो कम-से-कम यू० पी०, सी० पी०, बिहार इत्यादि प्रान्तों का तो एक भी मुसलमान मुस्लिम लीग को राय नहीं देता।" बुजुर्गवार के मुख पर इस समय क्रोध की भावना थी और वह समस्त मुस्लिम-जाति के प्रतिनिधि के रूप में अपने किए गए कार्य पर पश्चात्ताप कर रहे थे। उन्हें खेद था कि क्यों अनजाने में उनसे वह भूल उस समय बन पड़ी कि जिसका कुपरिणाम इतना भयंकर हुआ।

इसी प्रकार बैठे हुए बातें हो रही थीं। सुबह के आठ बज चुके थे। यह मकान दिल्ली सब्जी-मण्डी में था और बुजुर्गवार का अपना ही मकान था। यह मलिक खानदान के बुजुर्ग थे, जिनके बुजुर्गों ने सब्जी-मण्डी की कभी नींव रक्खी थी। इस मकान की यादगार लाल किले और जामामस्जिद से कुछ कम पुरानी नहीं थी। इसी मकान पर कितने ही हिन्दू और मुसलमान, सब्जी के सौदागर, नित्य आ-आकर अपने झगड़ों का निपटारा किया करते थे। यदि यों कह दिया जाए कि दिल्ली की सब्जी-मण्डी का यह मकान न्यायालय था, तो कुछ अनुचित न होगा। यहाँ का न्याय सरकारी न्याय की अपेक्षा अधिक मान्य, स्थिर और बिलाकोर्ट-फीस के होता था।

"रशीदा! चाय नहीं बनी बेटी अभी।" बुजुर्गवार ने खड़े होकर अन्दर के दरवाजे के पास जाते हुए कहा और फिर आकर रमेश बाबू के पास बैठ गए। वह मुस्करा कर कहने लगे, "बेटा रमेश! तुम्हें हमारे घर चाय पीने में तो, मैं समझता हूँ, कोई एतराज नहीं होगा। हम लोग काफी सफाई से खाने की चीजों को रखते हैं और मेरे स्वयं बहुत-से हिन्दू दोस्त हैं जो अक्सर यहाँ आकर चाय पिया करते हैं। मैंने रशीदा से कहा है कि वह खुद सफाई के साथ चाय बनाए।"

"आपने व्यर्थ इतना कष्ट किया। मुझे तो चाय का कोई शौक नहीं है। चाय पीने में कोई ऐतराज तो हो ही नहीं सकता मुझे। मेरे एक मित्र थे मिस्टर आजाद, लाहौर में। मैं उनके घर अक्सर चाय पिया करता था। बड़ा खेद है कि मैं चलते

समय उनसे मिल भी न सका।" रमेश बाबू बोले।

"क्यों बेटा ? क्या उन पर भी तुम्हें शुभा हो गया था ? हो सकता है ऐसे खतरनाक वक्त में..." एक लम्बी साँस खींचकर बुजुर्गवार बोले।

"यह बात नहीं है बुजुर्गवार ! शुभे का तो कोई कारण ही नहीं हो सकता और यदि मैं उस व्यक्ति के हाथों मारा भी जाता तब भी मेरी आत्मा को शान्ति ही मिलती। परन्तु यह असम्भव था। धर्म का पागलपन उसे छू तक नहीं गया था। वह एक सच्चा इन्सान था और साथ ही सच्चा मुसलमान भी। आजाद का घर एक ऐसे मुहल्ले में था कि वहाँ तक शायद मेरी देह का एक टुकड़ा भी न पहुँच पाता! केवल इसीलिए मैंने वहाँ जाने का विचार स्थगित कर दिया और मैं सीधा स्टेशन की राह पर हो लिया।" रमेश बाबू बोले।

इसी समय रशीदा चाय लेकर आ गई। चाय सामने मेज पर रख कर रशीदा एक ओर कुर्सी पर बैठ गई।

"चाय बनाओ बेटी रशीदा !" बुजुर्गवार ने कहा।

"बनाती हूँ अब्बाजान !" कहकर रशीदा ने दो प्याली चाय तैयार की।

"बेटी रशीदा ! यही वह रमेश बाबू हैं जिन्होंने कल मुझे बचाकर यहाँ तक पहुँचाया था। वरना शायद मेरी लाश भी तुम्हें देखनी नसीब न होती।" कहते हुए बुजुर्गवार का गला भर आया और वह शान्त हो गए। रशीदा ने एक बार रमेश बाबू के मुख पर देखा और फिर कुछ शरमाई-सी दृष्टि को नीचे कर लिया।

रमेश बाबू ने ज्योंही चाय की प्याली हाथ में उठाई कि बाहर सड़क पर एक बहुत बड़ी गड़बड़ का शब्द सुनाई दिया। एक विचित्र दानवीय चीत्कार था, लगभग वैसा ही जैसा कि रमेश बाबू लाहौर में देखकर आए थे। रमेश बाबू ने प्याली ज्यों-की-त्यों मेज पर रख दी और उठकर खड़े हो गए। इतने में नौकर ने आकर सूचना दी कि बाजार में बड़ा हत्याकांड आरम्भ हो चुका है। मुसलमानों की अब खैर नहीं। उन की बुरी तरह शामत आ गई है। साथ ही यह भी सूचना दी कि कहीं पर एक मकान को पुलिस ने घेर रखा है और अन्दर बाहर, दोनों ओर से लगातार गोलियाँ चल रही हैं।

"अब यहाँ ठहरना उचित नहीं है बुजुर्गवार ! चलिए मैं आप लोगों को किसी सुरक्षित स्थान पर ले चलूँ। वरना पागल और दीवानी भीड़ के सामने शक्ति काम नहीं देगी और व्यर्थ प्राणों से हाथ धोने पड़ेंगे।" रमेश बाबू शीघ्रता से बोले।

"लेकिन बेटा ! चलेंगे भी आखिर कहाँ, कुछ यह भी सोचा है तुमने ? जब यहाँ पर खतरा है तो शहर में अमन कहाँ होगी ?" कहकर निराशापूर्ण स्वर में बुजुर्गवार ने रमेश बाबू के मुख पर देखा।

"आप शीघ्रता कीजिए बुजुर्गवार ! जो कीमती सामान और रुपया-पैसा है वह

साथ ले-लीजिए और तुरंत तैयार हो जाइए, वरना—और हाँ।" नौकर की ओर संकेत करके कहा, "तुम दरवाजे पर जाकर खड़े हो जाओ ! जब भीड़ का हल्ला इस तर को आए तो सूचना देना।" रमेश बाबू बोले।

"बहुत अच्छा हुजूर !" कहकर नौकर दरवाजे पर चला गया।

रशीदा ने एक बक्स में सब सामान भर लिया और विद्युत की गति से आकर बोली—"अब्बाजान ! सब तैयार है, अब देर न कीजिए, मुझे डर लग रहा है। न जाने क्यों मेरा दिल घबरा रहा है।"

"घबराने की क्या बात है बहन ! जब तक इस शरीर में प्राण हैं तुम्हारा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकेगा।" रमेश बाबू ने ये शब्द मुँह से निकाले ही थे कि दरवाजे पर एक जोर की चीख सुनाई दी। चीख नौकर की थी और ज्योंही ये तीनों द्वार की ओर बढ़े तो देखा कि उसकी जाँघ से खून वह रहा था और वह उसे पकड़े बैठा था। रमेश बाबू ने शीघ्रता से अपनी धोती का पल्ला फाड़कर घाव पर पट्टी बाँध दी और उसे सहारा देकर खड़ा किया।

"आप लोग जरा शीघ्रतापूर्वक चलिए, वरना वह जो भीड़ आती हुई दिखलाई दे रही है, उससे बचकर निकलना कठिन हो जाएगा। मकान को जल्दी से ताला लगा दीजिए।" रमेश बाबू बोले।

"ताला लग गया बेटा ! चलो।" बुजुर्गवार बोले। रशीदा अपना अटैचीकेस लिए पहले ही तैयार खड़ी थी। चारों तेजी से आगे बढ़ चले। रमेश बाबू सबसे आगे-आगे थे। चारों ओर भयानक वातावरण था। कई व्यक्ति छुरों से घायल हुए सड़क के इधर-उधर पड़े थे। पुलिस और फौज बराबर प्रबन्ध करने में लगी थी, परन्तु अनियन्त्रित जनता पर काबू पाना उनके लिए कठिन हो रहा था। गोलियों की ध्वनियाँ जहाँ-तहाँ सुनाई दे रही थीं। कुछ व्यक्ति अपने प्राण बचाकर भाग जाने के फिराक में थे और कुछ एक विचित्र भयातुर परिस्थिति में स्तम्भित-से खड़े-खड़े न जाने क्या विचार कर रहे थे। गुण्डे और बदमाशों की खूब बन आई थी। लूट का माल लिए कुछ आवारा लोग इधर-उधर भागते दिखलाई पड़ रहे थे। भले आदमी इस दिल्ली की बदलती हुई दशा पर रह-रहकर हाथ मलते थे, परन्तु उस परिस्थिति में बदमाशों के विपरीत एक शब्द भी मुँह पर लाना, अपनी जान-माल को संकट में डालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

हिन्दू धर्म का भूत प्रेत बनकर जनता के सिर पर सवार था और ये हिन्दू-समाज के कलंक, आवारा और बदमाश उसी पापी प्रेत के गण बने हुए थे, जिसका ताण्डव-नृत्य समाज की व्यवस्थित शृंखला को छिन्न-भिन्न करने पर उतारू हो रहा था। चारों ओर मानव का दानव मनोवृत्तियों का नग्न नृत्य हो रहा था।

"शीघ्रता से पग बढ़ाकर चलो बहन रशीदा ! और लाओ यह अटैची-केस मुझे दे दो।" रमेश बाबू ने तनिक ठिठकते हुए कहा।

"आप तकलीफ करेंगे", कहते हुए रशीदा ने अटैची रमेश बाबू के हाथों में दे दी और तनिक तीव्र गति से चलना प्रारम्भ कर दिया। इन दोनों के साथ दो बूढ़े व्यक्ति थे और फिर उनमें से एक घायल। उनका शीघ्रता से चलना कठिन था। काफी प्रयत्न करने पर भी वे साथ देने में असमर्थ थे। रमेश बाबू और रशीदा को बार-बार उनका साथ देने के लिए रुकना पड़ता था। रमेश बाबू चाहते थे कि वे किसी तरह पुलिस-स्टेशन तक कुशलतापूर्वक पहुँच जाएँ, परन्तु तभी उन्होंने देखा कि एक बड़ी भारी भीड़ उनकी ओर बढ़ती हुई चली आरही थी। रमेश बाबू उसे देख कर बोले, "बहन रशीदा ! लो अब सावधान हो जाओ ! हम लोगों का अब पुलिस-स्टेशन तक पहुँचना असम्भव है। तुम मेरे पीछे रहना और यदि मृत्यु का भी सामना करना पड़ जाए तो भयभीत होने की आवश्यकता नहीं।" फिर बुजुर्गवार की ओर मह करके कहा, "क्षमा करना बुजुर्गवार ! कल मैं आपकी रक्षा करने में समर्थ रहा, परन्तु आज···परन्तु मैं अन्तिम समय तक अपना कर्तव्य पालन करूँगा। जो भगवान् की इच्छा होगी वह अवश्य होकर रहेगा। यह वह समय आ पहुँचा है कि जिसे टालने से टाला नहीं जा सकता। अब और आगे बढ़ना व्यर्थ है। आप लोग मेरे पीछे रुक जाइए।"

"बेटा···" केवल इतना कहकर बुजुर्गवार की जबान रुक गई और उनका नौकर मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ा।

रमेश बाबू ने दूर से ही भीड़ को ललकारा और भीड़ वहीं पर ठहर गई।

"बस अब एक पग भी आगे बढ़ाने का प्रयत्न न करना। आगे बढ़ने वाले को मेरी गोली का निशाना बनना पड़ेगा।" रमेश बाबू के हाथ में गोलियों से भरा रिवालवर था। वह बोले—"मैं एक पक्का हिन्दू हूँ। मेरा सर्वस्व लाहौर के हत्याकाण्ड में समाप्त हो चुका। मैं कल ही लाहौर से यहाँ आया हूँ, परन्तु मैं अपने प्राण देकर भी मानवता के लिए इनकी रक्षा करूँगा। इन तीन मुसलमानों के प्राण बचाने के लिए मुझे बारह हिन्दुओं और तेरहवीं अपनी भी आहुति देनी पड़ जाएगी तो मैं सहर्ष दूंगा। मुझे उसमें कोई संकोच न होगा।

मतवाले दीवानों की भीड़ थी, क्रोध से पागल और धर्मान्ध लुटेरों की गुमराह की हुई। वह रमेश बाबू के कहने पर एक क्षण तो ठिठकी, परन्तु तुरन्त ही किसी गुण्डे ने पीछे से कहा, "हाँ-हाँ सुन लिया तेरा उपदेश। पाकिस्तान में हमारे भाइयों का आँखें मींचकर संहार हो रहा है। उसका बदला हम अवश्य लेंगे। चाहे हमारी कितनी भी जानें क्यों न जाएँ।" भीड़ को उत्तेजना देने के लिए ये शब्द फूंस में चिंगारी का

काम कर गए। इसी समय एक दूसरा लुटेरा पीछे से कह उठा, "हम दिल्ली से मुसलमानों का बीजनाश करके रहेंगे। भाईयो! ग्रापको गौ-मांस की कसम है ग्रौर हिन्दू धर्म की दुहाई है। ग्राप समझ लीजिए कि जो लोग इस समय मुसलमानों का साथ दे रहे हैं वे जयचन्द से कम नहीं हैं। वे हिन्दू धर्म के कलंक हैं। हमें चाहिए कि हम मुसलमानों से पूर्व उन्हें ही मौत के घाट उतारें।"

फिर क्या था। 'हर-हर महादेव' का नारा लगा। भीड़ में से कुछ एक छुरे-बाज चील की तरह उन पर झपट पड़े। रमेश बाबू एक मजबूत दीवार बने उनके सम्मुख खड़े थे। रशीदा रमेश बाबू के बिलकुल पीछे थी। भीड़ ने चारों ग्रोर से उन्हें घेर लिया। रमेश बाबू के रिवालवर की एक, दो तीन गोलियाँ चलीं परन्तु वे दीवाने भी मानों ग्राज मौत से खेलने के लिए ही ग्राए थे। एक व्यक्ति ने ग्रागे बढ़कर ग्रपने छुरे से उस मूर्छित पड़े हुए नौकर का काम तमाम कर दिया। बेचारे बुजुर्गवार भी ग्राघात से न बच सके। घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। ग्रब रह गए रमेश बाबू ग्रौर रशीदा। रमेश बाबू के पास तक बढ़ने का साहस किसी में भी नहीं था। इतने में एक सैनिक ट्रक रमेश को ग्रपनी ग्रोर ग्राती हुई दिखलाई दी। ट्रक में से सैनिकों ने कुछ गोलियाँ ग्राकाश की ग्रोर चलाईं। गोलियों का चलना था कि भीड़ काई की तरह फट गई ग्रौर वहाँ रमेश बाबू, रशीदा, घायल बुजुर्गवार ग्रौर उनके नौकर का शव पड़ा रह गया। सैनिकों ने बहुत सावधानी से उन्हें ट्रक में बिठा लिया। इस ट्रक में ग्रौर भी मुसलमान थे, कुछ घायल ग्रौर कुछ शरणार्थी। शरणार्थी, जो ग्रभी-ग्रभी चन्द घण्टे पूर्व दिल्ली के प्राचीन निवासी थे, परन्तु ग्राज वे दिल्ली के ग्रपरिचित बन गए। नौकर का शव वहीं पर छोड़ देना पड़ा। बुजुर्गवार को रमेशबाबू ग्रौर रशीदा ग्रच्छी तरह सँभाले हुए थे। वह इस समय मूर्छित थे ग्रौर उनकी पसली से रक्त बह रहा था। रमेश बाबू ने सैनिकों से प्रार्थना की कि वे उन्हें शीघ्र किसी हौसपिटल में पहुँचा दें तो उनकी बड़ी कृपा हो। रमेश बाबू की इस प्रार्थना पर उन्होंने बहुत सहानुभूति के साथ उन्हें हौसपिटल पहुँचा दिया।

८

"बैठी नहीं होगी मुन्नी! चाय ग्रागई। ग्रच्छे बच्चे देर तक नहीं सोते।" शान्ता बोली।

"ग्रभी उठती हूँ जीजी!" ग्राँखें मलते हुए छोटी शान्ता ने कहा ग्रौर वह

उठकर बैठ गई।

दिल्ली की यह वह प्रभात वेला थी जिस दिन आठ बजकर कुछ मिनटों पर दिल्ली नादिरशाही हाथों से गुजरनेवाली थी। दिन-पर-दिन दिल्ली में पश्चिमी पंजाब के उजड़े हुए भाई कई-कई दिन के फाकों के पश्चात् आ-आकर जमा होते जा रहे थे; उनके दिलों में बदला लेने की भावना प्रखर रूप से विद्यमान थी और उसका कारण भी बहुत अस्पष्ट था। उनके नेत्रों से वे चित्र अभी मिट नहीं सके थे जिसमें उनके मित्रों को, स्त्रियों को, माताओं को, बहनों को, बच्चों और बूढ़ों को उनकी आँखों के सामने अपमानित करके मौत के घाट उतारा गया था। वह पागल पिता दिल्ली में आ चुका था, जिसकी फूल-सी सुकुमार कन्या को उसके सम्मुख देखते-देखते अंग-भंग कर दिया गया था, उसके कान, नाक, गाल और भुजाओं को काट-काटकर और अन्त में···अन्त में क्या ? पिता ने घर का सब सामान एकत्रित करके उस पुत्री के शव को वहीं उसी मकान के साथ-साथ भस्म कर दिया था। वह घर-बार सब कुछ जलकर क्षार हो गया और अब रह गया केवल वह पिता, प्रतिशोध लेने के लिए। उसके दिल में, उसके मुख पर हर समय केवल एक प्रतिशोध शब्द था और कुछ नहीं। वह वीर युवक दिल्ली में आ चुका था जिसको दस बदमाश गुण्डों ने कसकर उसी के मकान के स्तम्भ से बाँध दिया था और उसके बाद उसकी माँ, बहन, स्त्री, बच्चे···सबको···उसकी आँखों ने नष्ट होते देखा। वह आज उतारू था केवल प्रतिशोध लेने पर, और कुछ नहीं केवल प्रतिशोध। वह सरदारजी दिल्ली में आ चुका था, जिसने अपने मकान को चारों ओर से घिरा देखकर पहले अपने सीने पर हाथ रखा था और फिर धैर्य से अपनी कृपाण निकालकर अपनी स्त्री और बहन का काम तमाम कर दिया था और फिर बल खाता हुआ शेर की तरह उस भीड़ पर टूट पड़ा था।

परन्तु ऐसे बहुत कम थे। उपद्रवकारियों में अधिकांश गुण्डे थे, कहीं बाहर के नहीं, दिल्ली के, जो गर्व के साथ कहते थे 'देख लिया पंजाबियों की बहादुरी को हमने। आज भी जो काम हम कर सकते हैं वह उनके बूते का नहीं।' दिल्ली में व्यभिचार का अड्डा खुल गया। भाँति-भाँति की अफवाहें दिन-पर-दिन गर्म होने लगीं और अन्त में वह समय आगया जब सरकार की समस्त शक्तियाँ भी मिलकर उस उपद्रवी काण्ड पर विजय प्राप्त करने में असफल हो गईं—और दिन-दहाड़े चाँदनी चौक, दरीबा, खारी बावली···की दूकानों के ताले टूट गए और सड़कों पर अभी-अभी जिन्दा फिरने वाले व्यक्तियों की लाशें दिखलाई पड़ने लगीं। मानव से मानव भयभीत हो उठा।

"शहर भर में कर्फ्यू लग गया।" अखबार देते हुए हॉकर ने शान्ता को सूचना दी।

"क्यों ?" शान्ता ने कुछ सकपकाए से स्वर में पूछा।

"शहर भर में कुहराम मच रहा है। चारों ओर मारकाट शुरू हो गई है। जिधर भी देखो, खुले आम लूटमार हो रही है।" अखबार बेचने वाला कहता जा रहा था।

"शहर में गड़बड़ हो गई ?" शान्ता ने फिर एक बार पूछा।

"बहुत जोर की बहनजी ! कहीं बाहर जाने का साहस न कीजिए, वरना न जाने क्या हो जाए ? सुना है कि सब्जी-मण्डी में बम बनाने का एक बहुत बड़ा कारखाना निकला है। उसे फौज ने चारों ओर से घेर लिया है और दोनों ओर से गोलाबारी हो रही है।" अखबार वाले ने बतलाया।

"झगड़ा शहर के किस भाग में अधिक है ?" शान्ता ने पूछा।

"किसी भाग की न पूछिए बहनजी ! आज तो सारे शहर में आफत मची है, लेकिन पहाड़गंज, सब्जी-मण्डी और करौलबाग में विशेष रूप से आग लगी हुई है। सुनते हैं वहाँ पर तो बहुत से मुसलमानों को मौत के घाट उतार दिया है। लाहौर के एक-एक हिन्दू का बदला यहाँ चार-चार मुसलमानों से चुकाया जा रहा है। सुना है बहनजी ! कि वहाँ से शायद बहुत ही कम मुसलमान बच सके हैं।" हिन्दू अखबार बेचने वाला जरा गर्व के साथ कहता जा रहा था। शान्ता का चित्त विचलित होने लगा। चाय की प्याली ज्यों-की-त्यों रखी रह गई और अन्त में ठण्डी पड़ गई। शान्ता इस समय न जाने किस विचारधारा में गोते लगा रही थी।

इतने में एक तीव्र हवा का झोंका आया और मेज पर रखे हुए हिन्दुस्तान पत्र को उड़ाकर उसने एक ओर फेंक दिया। पत्र के गिरने की खड़खड़ाहट से शान्ता का ध्यान बदला और उसने देखा कि क्या वह वास्तव में स्वप्न देख रही थी ? उसने वैसा ही दृश्य देखा जैसा लाहौर में उसके ऊपर बीत चुका था। वह देख रही थी कि एक मुसलमान के घर को बाहर से बदमाशों ने आग लगा दी है और उस घर के अन्दर एक बूढ़ा बाप और एक उसकी इकलौती कन्या हैं। ज्यों ही गुण्डों का दल उनपर टूटकर पड़ा कि एक नौजवान ने उस युवती को आकर बचा लिया, परन्तु वह उसके वृद्ध पिता की रक्षा न कर सका।

वह युवक रमेश बाबू हैं···नहीं···नहीं···नहीं यह भला किस प्रकार हो सकता है ? रमेश बाबू की उनकी आँखों में हर समय रहने वाली प्रतिमा ने यह रूप धारण कर लिया है। यह शान्ता के मन का भ्रम हैं नहीं···नहीं···नहीं।

"क्या नहीं जीजी ?" छोटी शान्ता ने खड़े होकर शान्ता के गालों पर अपनी पतली-सी छोटी उँगली रखकर कहा, "क्या आज चाय बिलकुल नहीं पीओगी ? तुम नहीं पीओगी तो मैं भी नहीं पीऊँगी।"

"अरे चाय अभी तक नहीं पी," आश्चर्य से एक स्वपिप्नल निद्रा समाप्त करते हुए शान्ता बोली।

"और आप तो पी चुकी हैं शायद ?" छोटी शान्ता ने कहा।

"हाँ मैं भी पीती हूँ," कहकर चाय की केतली को हाथ लगाया तो वह बिलकुल ठण्डी हो चुकी थी। बैरा दोबारा चाय लेकर आगया और फिर दोनों ने चाय पीनी शुरू कर दी।

"आप 'नहीं-नहीं' क्या कह रहीं थीं जीजी ? क्या कोई सपना तो नहीं देख रहीं थीं आप ?" छोटी शान्ता ने पूछा।

"हाँ देख तो स्वप्न ही रही थी शान्ता ! परन्तु वह स्वप्न सत्य नहीं हो सकता। विचारों का पागलपन था, एक दीवानगी थी। कभी-कभी जब···" कहती-कहती शान्ता रुक गई।

"आप कहती-कहती चुप क्यों हो गई जीजी ? कहिए ना ! मैं छोटी अवश्य हूँ, परन्तु समझती···"

"सब बात हो ना ?"

"हाँ यही बात है जीजी !"

शान्ता और अधिक कुछ न कह सकी। उसका दिल भर आया था। वह मौन हो गई, परन्तु पहले की भाँति नहीं, जागृत अवस्था में।

९

शान्ता के चले आने पर लाहौर आजाद के लिए सूना हो गया। आज उसका कोई साथी नहीं रह गया था पाकिस्तान में। उसके लिए सब उजाड़ था, सुनसान। पाकिस्तान का स्वतन्त्रता-समारोह आजाद के लिए कोई प्रसन्नता का वातावरण उपस्थित नहीं कर सका। शहर को सजाया जा रहा था उन खण्डहरों की छाती पर, जिनकी गोद में तड़प-तड़पकर मरने और फिर मरकर उस दबी हुई अग्नि में रह-रह कर झुलसने वाले मानव शरीरों की दुर्गन्ध आ रही थी। जहाँ जली और अधजली हड्डियाँ अभी तक तड़क-तड़ककर कह रही थीं कि इस दूषित वातावरण में यह सजावट कैसी ? तुमने कौन-सा ऐसा उज्जवल कार्य किया है कि जिसके लिए तुम फूले नहीं समाते और इन रंगीनियों से अपने को सजाने का प्रयत्न कर रहे हो ? तनिक इस ऊपर की सजावटी पोशाक को उतार कर तो देखो कि तुम्हारे अन्दर कितनी गलाजत भरी है ? जरा इन दिल के घावों को देखो कि जहाँ पर सड़कर पीव पड़ चुकी है ?

पहले इस बीमारी का तो उपचार किया होता, तभी सजावट अच्छी मालूम देती।

आजाद बीस दिन बाद आज घर ले जाया गया। आजाद का बुजुर्ग नौकर उसकी तीमारदारी में था, परन्तु उसका चित्त परेशान था। उसे दुःख था कि यदि उस दिन आजाद घायल न हो जाता तो उस निर-अपराध परिवार के प्राणों की रक्षा हो जाती। उसे अपना अकेलापन खल रहा था। वह विस्मरण नहीं कर सकता था उस घटना को जब पिछले ही दिन वह शान्ता को शरणार्थी कैम्प में ले जा रहा था और मार्ग में शान्ता ने एक गुण्डे के सिर में मोटर का हैण्डल मार कर अपनी वीरता का परिचय दिया था और आजाद पर होने वाले छुरे के वार को रोका था। यदि उस दिन भी शान्ता उसके साथ होती तो क्या मजाल थी कि वह बदमाश पीछे से आकर उसके छुरा भौंक जाता ?

शान्ता को भारत भेजकर आजाद ने गलती की। यदि इसी कार्य को जिसे वह अकेला कर रहा था, दोनों मिलकर करते, तो कोई कारण नहीं था कि उन्हें बहुत सफलता मिलती और सम्भव था कि उसके साथ यह दुर्घटना भी न घटती।

इन्हीं विचारों में निमग्न आजाद अपने पलंग पर पड़ा था। शान्ता का उसे कुछ पता नहीं; रमेश बाबू का उसे कुछ पता नहीं। वह भारत जा नहीं सकता। वहाँ भी यही वहशियाना गुण्डागर्दी चल रही है, जो लाहौर में है। भारत और पाकिस्तान दोनों का वातावरण ही दूषित हो गया। इन्सान जानवरों से भी बाजी ले गए। आजाद को एक साथी की आवश्यकता थी। वह चाहता था कोई ऐसा साथी जो उसके कार्य में उसकी सहायता कर सकता, परन्तु जिधर भी वह दृष्टि डालता था उसे विष-ही-विष दिखलाई देता था। प्रत्येक व्यक्ति नशे से चूर था। हर आदमी की नसों में इतना जहर पैदा हो चुका था कि कोई उसकी बात सुनने के लिए तैयार ही नहीं था। अन्त में वह सिर पकड़ कर बैठा रहता था और उसे कोई साथी नहीं मिलता था।

शहर धीरे-धीरे हिन्दुओं से खाली होता जा रहा था। बड़े-बड़े बाजारों का सब कारोबार चौपट हो गया था। किसी भी बाजार से निकल जाओ, तो मालूम पड़ता था कि मानों शमशान भूमि में से होकर जा रहे हों।

आजाद ने पहले कभी किसी जानवर को भी सड़क पर इस तरह मरा हुआ सड़ने के लिए पड़ा नहीं देखा था जिस प्रकार आज इन्सान की शक्लें दिखलाई दे रही थीं। हिन्दू नाम धारी का तो बाजार में से होकर निकलना ही कठिन था और सरदार जी, उनकी तो बस पूछो ही नहीं। बेचारे सरदारजी को तो कहीं छुपने का अवसर ही नहीं था। उनकी पहचान भी सीधी-सादी थी। दाढ़ी का साइनबोर्ड उनकी पहचान कराने के लिए बहुत काफी था।

आजाद का मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। अचानक पाँचवें दिन उसके पास एक पत्र आया। पत्र पर हवाई जहाज से आने के टिकट लगे थे। यह देखकर वह समझ गया कि हो-न-हो वह पत्र शान्ता का है और उसका मुर्झाया हुआ मुख खिल उठा। बड़ी शीघ्रता से उसने लिफाफा खोला, परन्तु पत्र शान्ता का न होकर रमेश बाबू का था। प्रसन्नता का कारण फिर भी कम नहीं था। रमेश बाबू के लिए आजाद शान्ता की अपेक्षा कुछ कम चिन्तित नहीं था। पत्र पर रमेश बाबू का नाम देखकर उसका मुख-मण्डल खिल उठा और उसने पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया :

'प्रिय आजाद !

आज एक माह बाद यह पत्र तुम्हें लिख रहा हूँ। परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर हम लोग एक दूसरे से बिछुड़ गए। जिस समय मैं लाहौर छोड़ रहा था, तो तुमसे मिलने की प्रबल आकांक्षा होते हुए भी मिलने का साहस न कर सका। इसका कारण यह नहीं था कि मेरा आजाद पर से विश्वास उठ गया था।

मेरे विचारों से तुम भली प्रकार परिचित हो। तुम्हें याद होगा वह दिन जब हम दोनों ने मिलकर इन्सान बनने की कसम खाई थी। न मैं हिन्दू हूँ और न तुम मुसलमान। मैं तो उसी दिन से इन्सान बनने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आशा करता हूँ कि तुम भी अपनी कसम को भूले नहीं होगे और अपनी पूरी शक्ति तुमने बेगुनाह इन्सानों को इस तूफान से बचाने में लगाई होगी। मुझे तुमसे इसकी पूर्ण आशा है।

चलने से पूर्व मैं शान्ता की कोठी पर गया था, परन्तु वहाँ शमशान-भूमि बनी हुई थी। उसके माता-पिता और नौकर के शव पृथ्वी पर पड़े थे और शान्ता का कहीं पता नहीं था। मेरे पास न तो उस समय खोज निकालने का कोई साधन था और न अधिक ठहरने का अवकाश। मेरा दिल घबड़ा रहा था और मैं उसी दशा में सीधा स्टेशन पहुँच गया।

रास्ते की कहानी कभी फिर जीवन में मिलने पर सुनाऊँगा परन्तु हाँ इतना अवश्य बतला दूँ कि रेल गाड़ी में मेरी भेंट एक वृद्ध मुसलमान से होगई, जो विचारों का निहायत पाक आदमी था। पाकिस्तान की सरहद पार करके जब हम लोग हिन्दुस्तान में आए तो दशा यहाँ की भी बहुत खराब थी। पश्चिमी पंजाब से पूर्वी पंजाब किसी भी दशा में कुछ कम नहीं था। दानव-मनोवृत्तियाँ दोनों ओर अपनी प्रबलतम शक्तियों के साथ इन्सानियत से खिलवाड़ कर रही थीं। इन्सान उनके हाथों की कठपुतली बन गया था। पग-पग पर निराशा और खुदगर्जी मुझे दिखलाई दी। एक बार मैं काँप गया, परन्तु तुरन्त ही मैंने अपने समस्त साहस को बटोर कर अपने दिल से कहा, 'रमेश ! तुझे कायर नहीं बनना है। तू लाहौर से भागकर आया, यह तेरी कायरता का प्रथम उदाहरण है, परन्तु उसे तू छुपाना चाहता है भारतीय

कहलाने के नाते, भारत में आने का अपना कर्तव्य मानकर, परन्तु भारत की सीमा में तू कायर बनकर नहीं जा सकेगा। तुझे अपने कर्तव्य का पालन करना ही होगा।

मैंने उन बुजुर्गवार की रक्षा अपने प्राणों को हथेली पर रख कर की। हर स्टेशन पर गुण्डों से बचाता हुआ मैं उन्हें देहली ले आया। देहली सब्जी-मंडी में उनका मकान था। मैंने सुरक्षापूर्वक उन्हें वहाँ पहुँचा दिया। उनके घर पर उनकी इकलौती लड़की रशीदा और एक नौकर था।

उन्हें उनके मकान पर छोड़ कर मैं सीधा फतहपुरी बाजार में आया। यहाँ पर एक धर्मशाला है, उसी में उस रात को मैं एक किनारे बरांडे में अपना कोट सिरहाने लगा कर सो गया। मैं दो दिन का भूखा था, परन्तु भीख मैं नहीं माँग सकता था और बिना परिश्रम के मिला हुआ दानस्वरूप भोजन करना भी मुझे स्वीकार नहीं था। प्रातःकाल जब मैं उठा तो भूख बहुत जोर से लगी थी। जब कुछ साधन समझ में नहीं आया तो मैं सीधा स्टेशन पर गया और एक महाशय का बिस्तर उठा कर छः आने में काजीहौज तक ले गया। इन छः आनों से मैंने दिल्ली पहुँच कर प्रथम बार भोजन किया।

शहर में यहाँ पर भी पूर्ण सन्नाटा था। भाँति-भाँति की अफवाहें बाजारों में फैल रही थीं। न जाने कितने प्रकार की काना-फूसियाँ चल रही थीं। शहर का वातावरण बहुत दूषित होता चला जा रहा था। हिन्दू और मुसलमान का प्रश्न हर व्यक्ति की जबान पर नाच कर रहा था। जो व्यक्ति पाकिस्तान में अपना सब-कुछ गवाँ कर आए थे उनके क्रोध का पारावार नहीं था। साथ ही उन्हें उकसाने वाली शक्तियाँ भी अपना कार्य कर रही थीं। व्यक्तिगत स्वार्थ से अंधा होकर मानव दानव-प्रवृत्तियों का शिकार बनता चला जा रहा था। पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब की अफवाहें द्वेष की अग्नि में घृत का कार्य कर रही थीं।

शहर की दशा बिगड़ती देख कर मुझे उन बुजुर्गवार का ध्यान आया कि जिन्हें मैं पिछले दिन किसी प्रकार मानवता के शत्रुओं से बचा कर लाया था। मैं सीधा उन के मकान पर पहुँच गया। उन्होंने मेरे लिए चाय बनवाई परन्तु अभी तक हम लोगों ने चाय पीनी भी प्रारम्भ नहीं की थी कि शहर में तूफान मच गया और विशेष रूप से शहर के उस भाग में। मैं उन लोगों की प्राणरक्षा के लिए उन्हें वहाँ से लेकर चल दिया, परन्तु मार्ग में हम लोगों को एक बहुत बड़ी भीड़ का सामना करना पड़ा। इस मुठभेड़ में बुजुर्गवार घायल हो गए और उनके नौकर को प्राणों से हाथ धोने पड़े। अन्त में बुजुर्गवार भी हौस्पिटल में पहुँचकर समाप्त हो गए और रह गई अकेली रशीदा बुजुर्गवार की लड़की।

रशीदा की सुशीलता के विषय में मैं क्या लिखूं ? रूप और गुण, दोनों की

देवी है। उनका सर्वस्व इस धार्मिक-द्वेष की ज्वाला में जलकर समाप्त हो गया। मुझे अभिमान है कि मैं उस जैसी देवी की रक्षा करने में सफल हो सका।

मैं आजकल 'इन्सान' नामक एक पत्र प्रारम्भ कर रहा हूँ। पत्र का डिक्लेरेशन फाइल कर चुका हूँ। उसके लिए जितना प्रारम्भिक फाईनेन्स की आवश्यकता है उतना फाईनेन्स बहन रशीदा ने दे दिया है। काश्मीरी गेट पर एक मकान मुझे मिल गया है। मैं और रशीदा, दोनों उसी मकान में रह रहे हैं। आगामी सप्ताह में इस पत्र का प्रथम अंक प्रकाशित होगा।

शेष दूसरे पत्र में लिखूंगा। अपने बुजुर्ग नौकर को मेरा सलाम कहना। मेरे योग्य कार्य लिखना।

तुम्हारा अपना ही
रमेश

पत्र पढ़ कर आजाद न जाने कितनी देर तक क्या-क्या सोचता रहा? फिर अन्त में उसने पत्र लिफाफे में बन्द करके तकिए के नीचे रख लिया। आज वह काफी प्रसन्न था।

१०

चांदनी चौक के एक किनारे पर लक्ष्मी रेस्टोरेंट है, जिसमें पत्रकार लोग सन्ध्या-समय आकर एकत्रित हो जाते हैं। भाँति-भाँति की टीका-टिप्पणियाँ वहाँ पर चलती हैं। नित्य ही टीका-टिप्पणियों का विषय कुछ-न-कुछ खोजना पड़ता है और फिर उसी को लेकर बहस आगे बढ़ती है। भारत-विभाजन के पश्चात् एक ऐसी लहर भारत में दौड़ी कि जनता के मस्तिष्क एकदम उसी लहर के साथ हो लिए। वर्तमान परिस्थितियों में भविष्य की बातें सोचना साधारण मस्तिष्क की विचार-सीमा से परे की बात थी। चाय की प्याली हाथ में लेकर एक हलका सा घूँट भर कर सरदार करमसिंह ने अपनी दाढ़ी और मूछों के बालों को सँभाला और फिर जेब से निकाल कर 'इन्सान' की एक प्रति मेज पर सामने रख दी। सरदारजी एक गुरमुखी के साप्ताहिक पत्र के सम्पादक थे और सिक्खों का अपने को ठेकेदार समझते थे। गुरुद्वारे के सामने उनका पत्र बिकता था और इतवार के दिन जब गुरुद्वारे में भीड़ होती थी तो वह अक्सर वहीं पर मौजूद रहकर अपने पत्र का प्रचार करने में तन्मय पाए जाते थे। अमरनाथजी ने पत्र पर

जहाँ-तहाँ सरसरी दृष्टि डाली और कह उठे, "सरदारजी पत्र में आकर्षण है। लेखक की लेखनी में जोर मालूम देता है।"

"क्या खाक आकर्षण है ?" सरदार करमसिंह जी तुनक कर बोले। "अगर मेरा वश चले तो ऐसे पत्रकारों को भारत से बाहर निकाल दिया जाए। ये लोग मुसलमानों के गुलाम हैं, फिर मुझे तो लेखक की लेखनी में भी कोई जोर दिखलाई नहीं देता। ये कांग्रेसी लीडर जो कुछ भी बकवास करते हैं उसी की काट-छाँट करके प्रेस में दे दिया गया है। ये लोग खुशामद-पसन्द हैं, पेंदी के लोटे हैं, जिधर का बहाव देखा उधर को ही हो लिए। 'जहाँ देखी तवा-परात, वहीं गँवाई सारी रात' वाली मिसाल है।"

"लेकिन सरदारजी ! इस पत्र की विचारधारा तो मुझे खुशामदपसन्द नहीं मालूम देती। इसमें सरकार की नीति की भी उचित आलोचना की गई है और साथ ही पागल जनता में फैली हुई अग्नि को भी प्रोत्साहन नहीं दिया गया। लीडरों के विचारों का समर्थन-मात्र ही पत्र का विषय नहीं है। आपने शायद पढ़ कर नहीं देखा इसे।" अमरनाथजी ने और दो-चार बार पत्र के पन्नों को इधर-उधर उलट पलट कर देखते हुए गम्भीरतापूर्वक कहा।

रमेश बाबू इनके पास वाली मेज पर बैठे चाय पी रहे थे। रशीदा भी उनके साथ थी। दोनों शान्तिपूर्वक आनन्द के साथ चाय पीते हुए सरदारजी तथा अमरनाथजी की आलोचनाएँ सुन रहे थे। विषय उनके लिए रोचक था।

इसी समय बाबू उजागरमलजी भी आ पधारे और बड़े ही तपाक के साथ अमरनाथ जी ने उन्हें एक कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए कहा, "बैठिए उजागरमलजी ! देखिए आज अपने पास समालोचना का एक सुन्दर विषय है। सरदारजी यह पत्र लाए हैं। नया पत्र है, पहला ही अंक है।" कहते हुए अमरनाथजी ने पत्र की प्रति उजागरमल जी के हाथ में दे-दी।

उजागरमलजी ने पत्र को इधर-उधर बड़ी गम्भीरता से उलटना-पलटना प्रारम्भ किया। उनके मुख की मुद्रा हर पन्नों को पलट कर गम्भीर होती जा रही थी। एकाएक उन्हें इतना क्रोध आ गया कि प्रति को मेज पर पटक कर क्रोध में बलबला कर कह उठे, "बेहूदा ! बिलकुल बेहूदा। ये ही लोग भारत को बरबाद करेंगे, हिन्दुओं का सर्वनाश करेंगे।"

अमरनाथजी ने उजागरमलजी के क्रोध भरे मुख पर एक बार गम्भीरता-पूर्वक देखा और फिर जोर से खिलखिला कर हँस पड़े। इतने जोर से हँसे कि तमाम हॉल में बैठे हुए आदमी उनकी ओर आकर्षित हो गए।

"बिलकुल बेहूदा, उजागरमलजी ! बिलकुल बेहूदा।" इसी प्रकार क्रोध में

भरकर सरदार करमसिंहजी बोले। "मैं अभी-अभी अमरनाथजी से यही तो कह रहा था और यह करते हैं इसकी तारीफ। मैं कहता हूँ कि इनका इस प्रकार हँसना भी बेहूदा हरकत है। आप जैसे योग्य पत्रकार के रिमार्क पर भी इन्हें हँसी आती है, मजाक सूझता है।" फिर चाय की प्याली को उठाकर एक घूँट भर लिया और जरा अपनी दाढ़ी और मूँछों पर हाथ फेरा।

"अरे साहब आप चाय तो पीजिए।" बैरे को एक केतली और चाय लाने का आर्डर देकर अमरनाथजी फिर कहने लगे, "भाई इसमें क्रोध की क्या बात है? भारत अब स्वतन्त्र है। हर व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता है। मैंने जैसा समझा, कह दिया। तुम जानते ही हो कि मैं स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति हूँ। न मुझपर किसी पार्टी का कोई प्रभाव है और न किसी धर्म का। मैं एक इन्सान हूँ और इन्सानियत ही हर व्यक्ति में खोजने का प्रयत्न करता हूँ। इस पत्र का नाम मुझे बहुत पसन्द आया। मैं समझता हूँ कि जो व्यक्ति अपने पत्र का यह नाम रख सकता वह अवश्य ही विचार भी मेरे जैसे ही रखता होगा।"

"लेकिन इसमें मुसलमानों की खुशामद करने की बू आती है।" क्रोध के साथ सरदारजी बोले। "हम लोग पंजाब छोड़कर यहाँ आए हैं। हमने अपना घर-बार छोड़ा है। हमारी मुसीबतें हम ही जानते हैं। और कोई नहीं जान सकता। ये डेढ़-डेढ़ इंच की बाड़ वाली नुकीली, गाढ़े की सुफेद टोपी लगाने वाले कांग्रेसी हमारी मुसीबतों का मजाक उड़ाते हैं, दिल्लगी करते हैं। मुसलमानों को क्या हक है हिन्दुस्तान में रहने का? हमारा सर्वनाश कराकर ये आज उनके तरफदार बने हैं? हमारी छाती में छुरा भोंकवा कर ये उनके साथ मानवता दिखलाने चले हैं?"

"यही बात है।" उजागरमलजी भी क्रोध में भरकर बोले, "हिन्दुत्व को रसातल में पहुँचाने का प्रयत्न किया जा रहा है। ये कांग्रेसी लोग हिन्दुत्व की जड़ों पर कुठाराघात कर रहे हैं। मुसलमानों को पाकिस्तान दिया जा चुका, अब उन्हें हिन्दुस्तान में रहने का कोई अधिकार नहीं। अगर कांग्रेस-सरकार चाहती है कि वह कुछ दिन और बनी रहे, तो उसे यह करना ही होगा कि वह अपनी नीति बदले और हिन्दू-महासभा से मेल करे, अन्यथा उसका अधिक दिन तक शासन-सत्ता को अपने हाथों में सँभालना असम्भव होगा।"

"शासन किसके हाथों में रहेगा, यह प्रश्न गम्भीर है। इसलिए इस पर यहाँ बहस करना व्यर्थ है और साथ ही इसे भविष्य बतलाएगा; परन्तु हाँ इतना मैं अवश्य बतलाए देता हूँ उजागरमलजी! कि ये कूप-मण्डूक वाली पालीसीज अब नहीं चलेंगी। धर्म के नाम पर राजनीति को अब नहीं आँका जा सकेगा। यह आप लोगों की संकुचित विचारधारा है, जिसमें आप बह रहे हैं।" गम्भीरतापूर्वक अमरनाथजी बोले।

"हमारी संकुचित विचारधारा है, क्योंकि हम लोग अपना सब कुछ खोकर आए हैं। हमारा सर्वनाश हो गया और कांग्रेसियों को मिल गया राज्य, क्यों ? यही बात है ना ?" सरदारजी व्यंग से बोले।

अमरनाथजी फिर खिलखिला कर जोर से हँस पड़े। तीनों मित्र चाय पी रहे थे। बात भी गर्मागर्म हो रही थी और चाय भी खूब गर्म पी जा रही थी। पास की मेज पर बैठे रमेश बाबू और रशीदा बातों का आनन्द ले रहे थे और क्योंकि उनकी बातों का विषय उनका अपना ही पत्र था इसलिए इन बातों में उनके लिए विशेष आकर्षण का कारण था। रमेश बाबू ने और चाय लाने का आर्डर दिया और साथ ही कुछ खाने की चीजों का भी। इसी बीच में अमरनाथजी ने अपनी जेब से सिग्रेट का पाकेट निकाला और फिर एक सिग्रेट उन्होंने अपने हाथों में सुलगाने के लिए ली। अमरनाथजी ने दूसरी जेब में दियासलाई के लिए हाथ डाला परन्तु वह उन्हें नहीं मिली। रमेश बाबू उनकी दियासलाई की परेशानी को भाँप गए। इससे पूर्व कि वह बैरे से दियासलाई लाने के लिए कहते, रमेश बाबू बोले, "आपको शायद दियासलाई की आवश्यकता है ?" और यह कहते हुए उन्होंने अपनी जेब से दियासलाई निकालकर अमरनाथजी की तरफ बढ़ा दी।

अमरनाथजी ने दियासलाई हाथ में लेते हुए 'धन्यवाद' कहा और फिर सिग्रेट सुलगाकर दियासलाई उन्हें लौटा दी। कोई विशेष परिचय होने का यहाँ पर कारण नहीं था। दियासलाई देने पर केवल 'धन्यवाद' ही दिया जा सकता था और वह रस्म अमरनाथजी ने पूरी कर दी।

रमेश बाबू की मेज पर बैठी रशीदा उनके आकर्षण का कारण बनी हुई थी। सरदार करमसिंहजी कभी-कभी कनखियों से उस ओर देख लेते थे। उजागरमलजी के लिए भी उधर कुछ रुझान अवश्य था, परन्तु परिचय प्राप्त करने का कोई माध्यम अभी तक नहीं निकाल पाए थे। रमेश बाबू ने दियासलाई दी भी तो वह अमरनाथजी को, इसलिए परिचय की इच्छा रखते हुए भी वह फलीभूत न हो सकी।

सरदार करमसिंहजी की यह आदत थी कि जब कभी वह किसी विषय की समालोचना किया करते थे, और अकस्मात यदि उस समय पास में कोई स्त्री और वह भी युवती बैठी होती थी तो अपनी समालोचना के हर केन्द्र पर एक बार उसकी ओर देख लिया करते थे। युवती के मुख-मण्डल पर केवल देखने मात्र से ही उनकी वाणी में ओज आ जाता था और अपने विचारों की पुष्टि में वह दृढ़ता का अनुभव करने लगते थे। यों देखने में सरदार करमसिंहजी के मुख में कोई ऐसी बात नहीं थी कि जिसके कारण किसी स्त्री के लिए उनकी ओर आकर्षित होने का कोई कारण हो, बशर्ते कि हिन्दू-धर्म के अनुसार किसी माता-पिता ने अपनी लड़की का गठजोड़ा उनके

साथ बाँधकर उस युवती को उनके साथ रहने के लिए मजबूर न कर दिया हो, परन्तु फिर भी सरदार करमसिंह का आकर्षण सुन्दर युवतियों की ओर बहुत था। उनके मुख की बनावट ऐसी थी कि कोई भी युवती क्यों न हो उनके मुख पर देख कर एक वार मुस्कराए बिना नहीं रह सकती थी। सरदारजी को किसी भी युवती का अपनी ओर देखकर हँसना अक्सर भ्रम में डाल देता था और कई वार तो गलत फहमी यहाँ तक बढ़ गई कि सरदारजी को बाद में शरमिन्दा होकर क्षमा माँगने तक की नौबत आगई। एक बार तो यदि अमरनाथजी वहाँ पर न आगए होते, और वह युवती अमरनाथजी की पूर्व-परिचिता न होती, तो शायद चप्पल-पूजा तक की नौबत आजाती।

स्त्री के मामले में उजागरमलजी भी जरा कमजोर थे। परमात्मा की दया से उनका रंग इतना काला स्याह था कि कभी-कभी उन्हें उसपर अभिमान होने लगता था और भगवान् कृष्ण के रंग से आपके रंग की यदि कोई मजाक में समानता कर डालता था तो आप एक स्वप्न में अपने आपको खो देते थे और उन्हें यह अनुभव होने लगता था कि कहीं इस कलिकाल में वही भगवान् कृष्ण का रूप धारण करके हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिए भारत में जन्म लेकर आए हैं? आप दिल्ली हिन्दू महासभा के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं में से थे। संगीत से आपको विशेष प्रेम था और सिनेमा देखने का भी भारी शौक था। पत्र के सम्पादक होने के नाते सिनेमाओं के पास आपको मिल जाते थे, एण्टरटेनमेंट-टैक्स भी नहीं देना पड़ता था। इसीलिए कभी-कभी आप कुछ युवतियों को सिनेमा दिखाने के लिए आॅवलाइज करना अपना धर्म समझते थे। बहुत ही रंगीन तबियत आपने पाई थी।

इतने में एक नवयुवती ने चारों ओर न जाने क्या खोजते हुए, रेस्टोरेंट-हाल में प्रवेश किया। यहाँ के नित्यप्रति आने वालों के लिए इनके परिचय की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु रमेश बाबू और रशीदा के लिए वह नवीन थी।

"ओह मिस कमलादेवी!" कहकर पत्रकारों ने उनका स्वागत किया। सबसे पहले नमस्कार करने का सौभाग्य सरदार करमसिंह को प्राप्त हुआ। जितनी देर सरदार करमसिंह को लगी उतनी देर में उजागरमलजी ने एक दूसरी टेबिल के पास से एक कुर्सी खींचकर अपने पास लगा दी। सरदार करमसिंह उजागरमल की इस चालाकी को भाँप गए, परन्तु करते क्या? सबसे पहले नमस्कार के लोभ को भी वह किसी तरह नहीं टाल सकते थे।

कमलादेवी बैठ गईं और अमरनाथजी ने अभी तक गर्दन उठाकर भी उनकी तरफ नहीं देखा। उनके हाथों में 'इन्सान' पत्र की प्रति थी और वह तन्मयता से उसे पढ़ रहे थे। बीच-बीच में कभी सिग्रेट का कश लगा लेते थे और कभी चाय की प्याली

से एक घूंट भर लेते थे।

"आज बहुत गम्भीरतापूर्वक अध्ययन हो रहा है बाबू अमरनाथजी!" कमला ने अमरनाथजी के हाथ से 'इन्सान' की प्रति को खींचते हुए कहा, "क्या मैं भी देख सकती हूँ यह कौन-सा पत्र है?"

"ओह! मिस कमलादेवी! आप कब आईं, और आकर बैठ गईं यह तो मैंने देखा ही नहीं। देखो ना! यह एक नया पत्र निकला है। कितने सुन्दर विचारों का पत्र है? मैं समझता हूँ कि यह तुम्हें अवश्य पसन्द आएगा।"

कमला ने पत्र के पन्ने इधर-उधर उलट-पलट के देखे और एक दो स्थानों पर दृष्टि डालकर बिला अधिक देखने का प्रयत्न किए ही कह दिया "ईडियट"।

"क्या कहा आपने?" अमरनाथजी बोले।

"मैं कहती हूँ कि इसका सम्पादक गधा है। इसमें जवाहरलाल की तारीफ लिखी है। स्टालिन का नाम तक नहीं है कहीं भी इस पत्र में। यह पूँजीपति विचार-धारा का पत्र है, बुर्जुआ क्लास का, पैटी-बुर्जआ का भी नहीं, अपर बुर्जआ का! इसमें लिखा है कि हड़तालें करने से देश को हानि होती है। मैं कहती हूँ कि यह गलत है। मिलें बन्द होनी चाहिएँ। भूख का चारों ओर साम्राज्य छा जाना चाहिए। वही उचित समय होगा क्रांति के लिए। उसी समय मजदूर मिलकर इन धनपतियों का अन्त करेंगे, यह लैनिन ने कहा है। यह अमर सत्य है और यह भारत में होकर रहेगा।"

"आप बिलकुल ठीक कहती हैं मिस कमलादेवी! मेरा भी यही विचार है।" गम्भीरतापूर्वक सरदार करमसिंह बोले।

"मेरा भी यही मत है।" उजागरमल ने सीना तानकर कहा।

अमरनाथजी अपनी पुरानी आदत के अनुसार खिलखिलाकर हँस पड़े—और फिर कमलादेवी के लिए चाय मँगाई। कमलादेवी के आजाने के पश्चात् सरदार करमसिंहजी नहीं चाहते थे कि यह मूल्यवान समय व्यर्थ राजनीति की बातों में व्यतीत किया जाए। कुछ रासरंग की बातें सामने लाई जाएँ, कुछ सिनेमा की चर्चा हो, कुछ फिल्म-एक्टर्स व एक्ट्रसों की प्रेम-कहानियाँ कही जाएँ। लेनिन, ट्राटस्की, स्टालिन, चर्चिल, एटली, रुजवेल्ट, गांधी, जवाहर और पटेल आदि की बातें करते-करते दिमाग पक चुका था।

"मिस कमलादेवी! क्या मैं पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ कि आपको शादी करने से क्यों नफरत है?" अचानक बात का रुख बदलते हुए अमरनाथजी कह उठे।

"ये आप क्या बातें किया करते हैं अमरनाथजी? क्या यह बात रेस्टोरेंट में करने की है?" मुस्कराकर कमलादेवी बोलीं।

"मित्रों के बीच में इस प्रकार की बातें यदि हो भी जाएँ तो कोई हानि मैं नहीं समझता।" सरदारजी गम्भीरतापूर्वक बोले।

"यही मेरा भी मत है मिस कमलादेवी!" उजागरमल से भी कहे बिना न रहा गया।

"यों तो मेरे मत का सरदारजी तथा उजागरमलजी, दोनों ने ही समर्थन इस समय कर दिया है परन्तु यदि किसी संकोचवश आप इस विषय पर यहाँ प्रकाश न डालना चाहें तो आपकी इच्छा। मैं आपसे फिर किसी समय एकान्त में पूछ सकता हूँ। इतना कहकर अमरनाथजी ने बात का रुख फिर बदल दिया। सरदारजी तथा उजागरमलजी को ऐसा प्रतीत हुआ कि अमरनाथ उनके साथ कोई गम्भीर चाल खेल गया। उन्होंने अनुभव किया कि उनका इस प्रकार अमरनाथ की बात का समर्थन करना उनके गाम्भीर्य का परिचायक न होकर उनका हल्कापन प्रदर्शित करता था।

बातों का रुख बदल चुका था। जिस विषय पर इन पत्रकारों की इस समय बात चल रही थी उसमें रमेश बाबू की कोई रुचि न होने के कारण वह अपना बिल पेमेन्ट करके रशीदा को साथ ले होटल से चल दिए। सरदारजी तथा उजागरमलजी काफी देर तक रशीदा की तरफ देखते रहे, जहाँ तक देख सके, परन्तु अमरनाथजी का ध्यान उस ओर नहीं था। वह कमला से इधर-उधर की बातें करने में लगे थे।

११

शान्ता के पास आजाद का कोई पत्र न आया। वह दो पत्र लिख चुकी थी परन्तु एक का भी उत्तर उसे नहीं मिला। इस प्रकार परिवर्तन होने का कारण उसकी समझ में नहीं आ सका, परन्तु जीवन की कठिन परिस्थितियों को भुलाकर भी वह नहीं चल सकती थी। जो रुपया उसके पास था वह धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा था और सामने अन्धकारपूर्ण भविष्य दिखलाई दे रहा था। अब भविष्य में अपने जीवन का मार्ग उसे स्वयं बनाना था।

शान्ता अब होटल में नहीं रह रही थी। नई दिल्ली में बंगाली मार्केट के पास एक क्वार्टर उसे किराए पर मिल गया था। दोनों शान्ता उसी में रहती थीं। एक पहाड़ी नौकर शान्ता ने अपना काम करने के लिए रख लिया था। सन्ध्या समय था, लगभग साढ़े तीन बजे होंगे, शान्ता चाय पी रही थी। छोटी शान्ता पास ही बरांडे में

कुछ अपना खेल बना रही थी। इसी समय मिस्टर अमरनाथ सामने से आते हुए दिखलाई दिए। शान्ता ने खड़ी होकर उन्हें नमस्कार किया और वह भी नमस्कार का उत्तर देकर पास पड़ी कुर्सी खिसकाकर उसपर बैठ गए। बिला शान्ता के कहे ही उन्होंने दूसरी प्याली में चाय बना ली और पीनी भी प्रारम्भ करदी।

अमरनाथजी बराबर के ही क्वार्टर में रहते थे और घर में अकेले ही आदमी थे, न माँ, न बहन, न भाई, न कोई। विवाह अभी नहीं किया था उन्होंने।

"शान्ता बहन, आज मैं तुम्हें एक ऐसी चीज दूँगा कि तुम उसे देखकर अवश्य ही बहुत प्रसन्न होगी, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।" अमरनाथजी बोले।

"ऐसी क्या चीज है भैया ?" मुस्कराते हुए शान्ता ने कहा।

"लो, यह एक नया पत्र निकला है।" कहकर अमरनाथजी ने शान्ता के हाथों में 'इन्सान' की वह प्रति दे दी जो उन्होंने सरदार करमसिंह से प्राप्त की थी।

"नाम तो बहुत अच्छा है।" शान्ता ने पत्र की प्रति हाथ में लेते हुए कहा। सम्पादक के नाम के स्थान पर लिखा था, 'एक मानव'। "सम्पादक का नाम भी सुन्दर है।" शान्ता ने फिर कहा और पत्र को देखना प्रारम्भ किया। अमरनाथजी शान्तिपूर्वक बैठे हुए चाय पीते रहे। शान्ता कुछ देर के लिए मानों उस अखबार को पढ़ने में खो गई। उसे यह भी ध्यान न रहा कि अमरनाथजी सामने बैठे थे।

इतने में छोटी शान्ता ने अन्दर आकर कहा, "जीजी ! हमें चाय के लिए नहीं बुलाया आपने।" यह सुनकर शान्ता का स्वप्न भंग हुआ और उसने प्यार से छोटी शान्ता को गोद में उठा लिया। फिर तीनों ने चाय पी।

"आज भारत जिन परिस्थितियों में से गुजर रहा है, उन परिस्थितियों में उसे इसी प्रकार के पत्रों की आवश्यकता है।" अमरनाथजी ने पत्र के विषय में अपना विचार प्रकट करते हुए कहा।

"मेरा भी यही विचार है भैया ! परन्तु इस प्रकार के पत्र का स्वागत आज उतना नहीं हो सकेगा जितना होना चाहिए। जनता पथ-भ्रष्ट हो चुकी है। वह सिद्धान्तों के गाम्भीर्य को समझने में असमर्थ है। साथ ही उसके विचारों में खलबली पैदा करने के लिए कुछ पार्टियाँ अपना कार्य कर रही हैं। शासन-प्रबन्ध के ढाँचे को ढीला देखकर बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो अपना उल्लू सीधा करने पर उतारू हो चुके हैं।" विचार निमग्न शान्ता ने कहा।

शान्ता के विचारों का समर्थन करते हुए अमरनाथजी बोले, "तुम ठीक कह रही हो शान्ता ! भारत अभी तक राजनीति में बहुत पिछड़ा हुआ है। यहाँ की पार्टियों का जन्म भी ब्रिटिश-साम्राज्यवाद में हुआ था। सभी पार्टियाँ राजनीतिक विचारों पर केन्द्रित नहीं, यों चाहती हर पार्टी यही है कि किसी प्रकार शासन-सत्ता

उनके हाथों में आ जाए। हिन्दू महासभा इत्यादि पार्टियाँ ऐसी हैं कि जो भारत को एक बहुत गहरे गर्त की तरफ खींच कर ले जाना चाहती हैं। जनता के पास आज विचार-शक्ति का अभाव है और यही कारण है कि वह अपना उचित तथा अनुचित पथ निर्धारित करने में असमर्थ है। वह चमत्कार देखना चाहती है। जो पार्टी अपना चमत्कारात्मक प्रोग्राम उसके सामने रखती है, उसका आकर्षण उसी की ओर होने लगता है।

"मैं पार्टी के रूप में केवल तीन ही पार्टियों को महत्त्व दे सकती हूँ भैया काँग्रेस, सोशलिस्ट तथा कम्यूनिस्ट पार्टी को। परन्तु इस समय भारत का हित इसी में है कि वह बहुपार्टीवादी विचारधारा को त्यागकर अपने व्यापार को सँभाले, अपनी खेती-बाड़ी की परिस्थिति को ठीक करे, अपने शिक्षा के माध्यमों की ओर ध्यान दे, अपने कारखानों की उन्नति करे और इस प्रकार अपने देश को धन-धान्य से पूर्ण करदे। यह सब कुछ कर लेने के पश्चात् हमारा विचार पार्टीबाजी के खिलवाड़ के ओर जाना चाहिए।"

"मेरा भी यही विचार है बहन! देश की इन परिस्थितियों को ठीक करने से पूर्व पार्टियों के चक्करों में पड़कर हड़तालें कराकर मजदूरों को फुसलाना, मिलों को बन्द कराना किसानों में अशान्ति पैदा कराना, यह सब भारत और भारत की जनता के लिए घातक सिद्ध होगा। हर देश की नीति उसकी परिस्थितियों के अनुसार होती है। यह कभी सम्भव नहीं हो सकता कि जो नीति अमेरीका में लाभदायक सिद्ध हो चुकी है वही भारत के लिए भी हितकर हो और जो रूस के लिए रामबाण बन चुकी है उससे भारत की समस्याओं का समाधान हो जाए। सभी बीमारों का उपचार एक ही औषधि को देकर करना मूर्खता होगी। रोगी को देखकर पहले उसके रोग का निर्णय करना होता है और फिर उसी के अनुसार उसकी चिकित्सा की जानी चाहिए।

भारत कितना पुराना रोगी है, इसका पहले अनुमान लगाना होगा? विदेशी राज्य की जंजीरों में जकड़े-जकड़े इसका रोग किस दशा पर पहुँच चुका है, यह समझना होगा।"

"मैं आपके विचारों से सहमत हूँ।" शान्ता बोली और फिर अमरनाथजी की प्याली में चाय डालनी प्रारम्भ कर दी। काफी देर तक चाय पर इधर-उधर की बातें चलती रहीं। अचानक शान्ता कह उठी "भैया एक बात कहूँ।"

"क्या?" अमरनाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"कमला दिल से बहुत अच्छी लड़की है। विचारों की अवश्य कुछ उद्दंड है, परन्तु वह इस आयु में होता ही है।"

"यह मैं जानता हूँ शान्ता बहन!" गम्भीरतापूर्वक अमरनाथजी ने कहा।

"लेकिन भैया तुम कमला के साथ व्यवहार बहुत बुरा करते हो। वह तुम्हारे पास मिलने के लिए आती है और तुम चाय की बात तक भी नहीं पूछते। न जाने उस बेचारी के साथ ही तुम्हारा इतना रूखा व्यवहार क्यों है ?"

"ऐसी तो कोई बात नहीं है शान्ता ! मेरा स्वभाव जैसा भी है वह सभी के लिए एक-सा है। फिर रही चाय की बात, सो मेरे पास कोई नौकर नहीं है और मैं स्वयं चाय बनाना नहीं जानता। तुम्हें यदि उसकी इतनी ही खातिर मंजूर है तो उसे तुम चाय बना कर पिला दिया करो। चीनी और चाय मैं बाजार से लाकर रख दूँगा।" कहकर अमरनाथजी मुस्कुरा दिए।

अभी ये बातें चल ही रहीं थीं कि सामने से कमला आती दिखाई दी। वह सीधी अमरनाथजी के मकान की ओर जा रही थी। शान्ता ने छोटी शान्ता को भेज कर कमला को भी वहीं बुला लिया। कमला शान्ता से पूर्व परिचित थी, कितनी ही बार वह यहाँ आती थी और शान्ता के साथ घंटों बैठ कर बात-चीत किया करती थी। कमला का झुकाव अमरनाथजी की ओर बहुत अधिक था, परन्तु अमरनाथजी न जाने किस मिट्टी के बने थे कि उन पर कोई प्रभाव दिखलाई न देता था।

"आओ बहन कमला !" शान्ता ने खड़ी होकर बड़े प्यार से कमला का स्वागत करते हुए कहा और कमला को अमरनाथजी के सामने वाली आराम कुर्सी पर बिठला दिया। कमला ने अमरनाथजी की ओर गम्भीर दृष्टि से देखा और फिर बोली, "किस चिंता में डूबे हुए हैं आप ? मैं जब कभी भी आपको देखती हूँ इसी प्रकार विचारों में निमग्न पाती हूँ। क्या भारत-विभाजन का सारा बोझ आपके ही सिर पर टूट पड़ा है ?"

"कोई विशेष बात नहीं हैं कमला ! परन्तु हाँ ! इतना तो सत्य ही है कि इन घटनाओं ने मेरे जीवन के क्रम में बहुत बड़ी उथल-पुथल पैदा कर दी है।" अमरनाथजी बोले।

"अब छोड़ो इन बातों को भैया ? हर समय इन्हें ही सोचते रहोगे तो भी भला क्या बनेगा ? जब एक पहाड़ टूट कर गिरेगा तो कौन कह सकता है कि कितने जीव-जन्तु उसके नीचे कुचल कर सर्वनाश को प्राप्त नहीं होंगे ? यदि कोई भयंकर भूकम्प आएगा तो क्या कुछ विनाश नहीं होगा ?यह विभाजन एक भयंकर भूकम्प ही तो था, इसीलिए जो कुछ भी हुआ वह अनिवार्य था, अवश्य होता, कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती थी।" कह कर शान्ता बोली, "अमरनाथ भैया ! कमला कितनी दूर से चल कर आ रही हैं और तुमने यह भी नहीं पूछा कि क्या कोई विशेष कार्य तो नहीं है इन्हें ?"

"यह मैं जानता हूँ कि इन्हें कोई विशेष कार्य नहीं है।" गम्भीरता के साथ

अमरनाथजी ने उत्तर दिया। "यही बात है न कमला ! मैं समझता हूँ कि तुम केवल मुझ से मिलने के लिए आई हो इस समय।"

"आपका अनुमान ठीक ही है।" कमला ने मुस्कराते हुए कहा।

"कल तो आपका लक्ष्मी रेस्ट्राँ में सरदार करमसिंह और उजागरमलजा ने बड़े तपाक के साथ स्वागत किया था।" अमरनाथजी बोले।

"जी, और आप अखबार पढ़ने का बहाना करके कनखियों से वह सब देख रहे थे।" कमला ने मुस्कराकर कहा।

अमरनाथजी मुस्करा दिए और शान्ता तनिक जोर से हँस दी।

"सरदारजी भी विचित्र व्यक्ति हैं। बेचारे दिल के बहुत साफ हैं; पत्रकार बन गए हैं, परन्तु बेचारों में विचार-शक्ति का अभाव है। कागज, कलम, प्रेस से उनका सम्बन्ध जुड़ गया है दुर्भाग्यवश।"

"और उजागरमलजी के विषय में आपका क्या विचार है ?"

"आप केवल मेरा ही विचार पूछते रहेंगे या अपना भी बतलाने की कृपा करेंगे।" कमला बोली।

इन शब्दों पर शान्ता मुस्कराकर बोली, "यह कोई नई बात नहीं है कमला बहन ! इनकी यह पुरानी बात है। यह केवल दूसरों की ही बातें सुनकर आनन्द-लाभ करना चाहते हैं। अपना विचार मानों इनका कुछ है ही नहीं।"

"यह बात नहीं है शान्ता ! बात यह है कि विचार प्रकट करने पर स्फोट होने की सम्भावना हो जाती है। वह स्फोट ऐसा होता है कि उसकी चर्चा फिर हर व्यक्ति के मुख पर दिखलाई देने लगती है। साधारणतया कही गई बात बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। कठोर सत्य के खिलाफ एक ऐसा तूफान मच जाता है कि समझदार व्यक्ति भी पागल बनकर उसी बहाव में बह जाते हैं और कहने वाले की बात का कोई मूल्य नहीं रहता। कारण भी स्पष्ट ही है कि यहाँ के पत्रकारों ने पत्रकारिता को एक छिछला भीख माँगने वाला व्यापार समझकर इसके वास्तविक रहस्य और ठोस-शक्ति को एकदम समाप्त कर दिया है। सम्पादक की व्याख्या यह है कि जो विज्ञापन लाने में सफल हो सके, अन्यथा वह अपूर्ण है। सो बहन शान्ता तुम जानती ही हो कि अपना पत्र सदा घाटे से चलता है। हम तो बिल्कुल ही असफल पत्रकार हैं। इसलिए किसी भी पत्रकार के विषय में कोई टीका-टिप्पणी करने का मैं अपने को अधिकारी नहीं पाता।

"उजागरमलजी अपने कार्य में-आवश्यकता से अधिक सफल हैं। मारवाड़ी बच्चे हैं। किसी-न-किसी प्रकार मिलवालों से रिश्तेदारी निकाल ही लेते हैं। रिश्तेदारी निकली और उन्हें एक पेज विज्ञापन मिला। पत्र सफल बन गया। यह सत्य है कि उजागरमलजी केवल हस्ताक्षर भर करना जानते हैं और उसमें भी अपने

नाम का प्रथम और द्वितीय अक्षर उ तथा ज कभी भी वह जीवन में सही नहीं लिख पाए, परन्तु इससे क्या होता है ? पत्र ठीक चल रहा है। विज्ञापन खूब बटोर लाते हैं। प्रेस वाला सुन्दर छाप देता है और उनका कार्य सिद्ध हो जाता है।" अमरनाथजी ने कहा।

"लेकिन मैंने तो कई बार उन्हें बड़ी मोटी-मोटी पुस्तकें हाथ में लिए देखा है और एक दिन तो वह शेक्सपियर का मेकबथ ड्रामा हाथ में लिए होंठ चला रहे थे।" कमला आश्चर्य से बोली।

अमरनाथजी खिलखिला कर हँस पड़े। इस प्रकार हँसने की उनकी बान थी और फिर उठ कर कमरे में घूमना प्रारम्भ कर दिया। कमला कुछ भी नहीं समझ सकी। शान्ता की दशा भी ऐसी ही थी। छोटी शान्ता फिर खेलने के लिए बाहर बराँडे में चली गई। आज उसकी गुडिया का विवाह होने वाला था। विवाह का सभी सामान वह जुटा चुकी थी और बारात आने वाली थी। कढ़ाई चढ़ चुकी थी। इतने में उसने अन्दर आकर सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वह बोली, "देखिए मेरी गुड़िया की बारात आ रही है। आप लोग सब मिलकर उसका स्वागत कीजिए।"

"बारात आ रही है !" कमला ने प्यार से शान्ता को गोद में लेकर उसका मुख चूमते हुए कहा।

"जी हाँ ! दूल्हा बारात में सबसे आगे होगा जीजी ! आपकी भी तो बारात आने वाली है, मैंने सुना है।"

"तूने किससे सुना है री पगली !" मुस्कराकर जरा शरमाते हुए कमला ने कहा।

"अमरनाथ भैया दूल्हा बनकर जाएँगे तुम्हारी बारात में। क्यों अमरनाथ भैया जी !" अमरनाथजी की ओर मुँह करके बोली।

"चल पगली !" कहकर अमरनाथजी ने उसे गोद में उठा लिया और प्यार से यह कहते हुए बाहर ले गए, "चलो मैं तुम्हारी बारात का स्वागत करूँगा। ये सब लोग कुछ नहीं करेंगे। ये अपने को बड़ा समझते हैं। इसीलिए बच्चों के खेलों में भाग लेना उचित नहीं समझते। मैं तुम्हारे साथ खेलूँगा।"

"तुम खेलोगे अमरनाथ भैया ! लेकिन तुम तो पहले कभी नहीं खेले। मैंने तो तुम्हें हमेशा ही माथे में सलवटें डाले न जाने क्या-क्या सोचते ही देखा है। आज शादी वाला खेल है। इसलिए आप भी ललचा गए हैं। स्वागत करने वालों को भी पूड़ी, कचौड़ी, मिठाई सब कुछ खाने को मिलेगा भैया !"

"अच्छा ! कुछ थोड़ा-थोड़ा कमला और शान्ता को भी दे देना।" मुस्कराकर अमरनाथजी बोले।

"नहीं भैया ! ये लोग अभी तक बारात का स्वागत करने के लिए उठकर नहीं आए और आप जानते ही हैं कि अब भारत स्वतन्त्र हो गया है। अब किसी को बैठे-बिठाए खाने को नहीं मिलेगा। खाना प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति को परिश्रम करना ही होगा। मैं कहती हूँ कि जब इन लोगों को मेरी गुड्डी की बारात का स्वागत करने में भी संकोच है और यह इतना-सा कष्ट भी नहीं सहन कर सकते तो इन्हें भोजन पाने का क्या अधिकार है ?"

"यह तुम ठीक कहती हो शान्ता !" अमरनाथजी ने एक बार फिर शान्ता को प्यार से गोद में उठाकर चूम लिया।

"आप यही तो कहा करते हैं भैया ! मैंने तो आपकी ही बात का समर्थन किया है। वैसे यदि आप कमला जीजी की सिफारिश करें तो उन्हें एक-दो गुलाब जामुनें मिल सकती हैं, लेकिन बड़ी बहन को कुछ नहीं मिलेगा। कमला जीजी हमारी मेहमान हैं। मेहमान होने के नाते शायद उन्हें कुछ काम करने में संकोच हो परन्तु बड़ी बहन तो अपने ही घर की हैं। उनका तो कर्तव्य था कि यहाँ पर सबसे पहले आकर बारात का हर प्रकार से प्रबन्ध करतीं और वह अपना पलंग भी नहीं छोड़ना चाहतीं। कैसी विचित्र बात है ? आज स्वतन्त्र-भारत में तो कोई भी व्यक्ति अपना कर्तव्य भुलाकर नहीं चल सकता।"

"तुम ठीक कहती हो मुन्नी !" प्यार से कमला ने बाहर आकर कहा, "अब भारत के हर व्यक्ति को काम करना होगा। कोई भी व्यक्ति अब दूसरों का शोषण करके जीवित नहीं रह सकेगा। बिला काम करने वाले व्यक्ति को जिन्दा रहने का अधिकार नहीं दिया जाएगा। धन और साधन व्यक्ति की सम्पत्ति न रहकर राष्ट्र की सम्पत्ति बन जाएँगे। हर कर्मठ व्यक्ति को वे साधन उपलब्ध होंगे जो उसके काम में सहायक हों। कोई भी योग्य व्यक्ति केवल धन के अभाव के कारण अन्धकार में नहीं पड़ा रहेगा। कोई भी मूर्ख केवल धनवान होने के नाते ऐश्वर्यशाली नहीं हो सकेगा। जो व्यक्ति मेहनत करेगा उसका फल उसे अवश्य मिलेगा। मेहनत और करे और उसका फल दूसरा खा जाए यह नित्य जीवन में होने वाली चोरी और बदमाशी सरकार को बन्द करनी होगी। धोखेबाजी और दगाबाजी का नाम व्यापार नहीं रहेगा।" इसी प्रकार कमला अपनी झोंक में और भी न जाने क्या-क्या कहती चली गई।

"मैंने कहा यहाँ गुड़िया के विवाह की बात चल रही है, पूंजीवाद के खिलाफ भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी का क्या प्रोग्राम है, वह किस प्रकार फलीभूत होगा, उसके लिए क्या-क्या साधन जुटाए जाएँगे और अन्त में उनकी क्या शक्ल निकलेगी इस गम्भीर विवेचना का समय नहीं है। उधर बारात आने का समय हो गया और आप राजनीति में फँसी हुई हैं। पहले विवाह हो जाने दीजिए, तब राजनीति पर विचार

किया जाएगा।" अमरनाथजी बोले।

"नहीं! मैं विवाह के विरुद्ध विचार रखती हूँ। विवाह नारी की स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधक है। यह क्रान्ति का युग है। इसमें मनुष्य को हर समय न जाने क्या कुछ करने के लिए कटिबद्ध रहना है। इसलिए विवाह नहीं हो सकता, नहीं होना चाहिए, यह मेरा दृढ़ विचार है।" कमला ने कहा।

शान्ता यह सब सुन कर मुस्करा रही थी।

"मैं कहता हूँ कमलादेवी! यह आप के विवाह की बात नहीं हो रही है। यह हो रही है गुड्डे और गुड़िया के विवाह की बात। अब अधिक व्याख्यान का समय नहीं रहा, बारात आने वाली है।" अमरनाथजी बोले।

"अमरनाथजी! मैं सिद्धान्तवाद की बात कर रही हूँ। बच्चों को भी विवाह की हवा से दूर रखना चाहिए। उनके अन्दर विवाह की भावना को भरना उनकी आगामी स्वतन्त्रता को नष्ट कर देना है। मैं कहती हूँ कि विवाह की आवश्यकता ही क्या है? क्या विवाह के बिना समाज का कार्यक्रम नहीं चल सकता? मित्रता के नाते क्या दो व्यक्ति एक साथ जीवन नहीं बिता सकते? यदि मित्रता के नाते नहीं बिता सकते तो मैं दावे से साथ कह सकती हूँ कि विवाह के बन्धन में फँस कर भी उनका जीवन नर्क ही होगा, वह होगी कोरी विडम्बना मात्र। मैं यह सब कुछ पसन्द नहीं करती। बच्चों को बालकाल से ही इस बीमारी से दूर रखना चाहिए।" कमला गम्भीरतापूर्वक कह रही थी।

"तो आप शादी को बीमारी समझती हैं। विचार तो आपका बहुत सुन्दर है, परन्तु खेद है कि मैं अपने को इस विचार के साथ नत्थी नहीं कर सकता।" अमरनाथ जी बोले।

"ठीक है! इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। कोई भी दकियानूसी विचार रखने वाला व्यक्ति मेरे विचारों से सहमत नहीं हो सकता। मेरे विचारों के साथ सहमत होने के लिए प्राचीनता को एक दम नमस्कार कह देना होगा। मेरे विचारों में कहीं पर भी समझौते के लिए स्थान नहीं हैं। प्राचीन रूढ़िवाद के प्रतिबन्ध मेरे सामने केवल उपहास की वस्तु मात्र हैं।" कमला कहती जा रही थी। इसी बीच में शान्ता कह उठी, "परन्तु कमला बहन! यदि आप बीच में मेरा बोलना अनुचित न समझें तो मैं इतना कह सकती हूँ कि "अमरनाथजी को प्राचीनता का उपासक नहीं कहा जा सकता। इनके जीवन में तो प्राचीनता पाई ही नहीं जाती। इनके प्राचीनता में विश्वास करने वाले मित्र इन्हें इस लिए कोसते हैं कि यह नवीन विचारों में फँस गए हैं और इस प्रकार यह भारतीय सभ्यता और संस्कृति के कट्टर शत्रु हैं और आप...।"

"नौनसेंस! उन गधों के विषय में तो मैं बात करना भी हिमाकत

समझती हूँ। वे लोग तो बिलकुल गधे हैं। उनका राजनीति से क्या सम्बन्ध ? उन्हें क्या मालूम कि क्रान्ति किस पेड़ पर लगती है ? उन्हें क्या पता कि आज का मजदूर क्या चाहता है ? मजदूर संस्कृति और सभ्यता नहीं चाहता; मजदूर के लिए वेद; पुराण, रामायण, कुरान और बाईबिल की आवश्यकता नहीं है। उनसे उसका पेट नहीं भरता, उसका तन नहीं ढकता, उसकी आवश्यकता पूरी नहीं होतीं। जीवन के कठोर सत्य को भुलाकर धोखेबाज लोगों ने साधारण वर्ग को फँसाकर उनका खून चूसने के लिए ये सब ढकोसले रचे हुए हैं। धर्म और समाज के प्रतिबन्ध मजदूर के हितों को छीनने के लिए हैं, हड़प लेने के लिए हैं। इस प्रकार के विचारों का प्रतिपादन करने वाले हर व्यक्ति को मैं मानव का शत्रु समझती हूँ और हर इन्सान कहलाने वाले व्यक्ति को समझना चाहिए।" कमला कह रही थी।

"विचार आपके बहुत ऊँचे हैं कमलादेवी ! परन्तु इन विचारों को फलीभूत करने के साधनों और उनके कार्यक्रम में मेरा और आपका अन्तर है, आप जो कुछ कहना चाहती हैं या करना चाहती हैं वह सब मानव-हित के लिए करना चाहती हैं। कल जो 'इन्सान' की प्रति मैंने आपको दिखाई थी उस पत्र का उद्देश्य भी मानव की ही सेवा करना था।" अमरनाथजी बोले।

"सेवा ! फिर आपने सेवा शब्द का प्रयोग किया", कमला बीच में ही कड़क कर बोल उठी। "सेवा का क्या अर्थ होता है ? मैं कहती हूँ कि क्यों कोई व्यक्ति किसी की सेवा करे और क्यों दूसरा व्यक्ति अपनी सेवा कराए ? इस सेवा ने ही तो यह सब कुछ अनर्थ किया हुआ है। सेवा की आवश्यकता वहाँ होती है जहाँ समता का अभाव होता है। वह समाज गलत है जहाँ सेवा की जाती है, वह सरकार धूर्त्त है जिसमें सेवा के लिए स्थान है। मुझे घृणा है इस प्रकार का विचार रखने वालों से। मैं चाहती हूँ कि संसार में सब अपना-अपना कर्तव्य पूरी तरह निभाएँ। अपना कर्तव्य-पालन न करने वाले व्यक्ति को फाँसी का दण्ड मिलना चाहिए, इससे कम नहीं।" कमला ने कहा।

शान्ता गम्भीरतापूर्वक कमला का मुख देख रही थी। क्या वह समझने में असमर्थ थी कि वास्तव में कमला के कहने का अर्थ क्या था ? क्या वह सचमुच जो कुछ कह रही थी वह उसका अपना विचार था या किसी स्कूल-मास्टर ने उसे रटा दिया था और उसी रटे हुए सबक को वह फुर्ती के साथ दुहराती चली जा रही थी।

"तुम इतने आश्चर्य के साथ मेरे मुँह पर क्या देख रही हो शान्ता बहन ?" कमला बोली।

"कुछ नहीं बहन ! मैं सोच रही हूँ कि आप क्या कहना चाहती हैं और क्या कह रही हैं ?" शान्ता ने गम्भीरतपूर्वक कहा।

"मैं क्या कहना चाहती हूँ यह आप नहीं समझ सकतीं शान्ता बहन ! और क्या कह रही हूँ उसे समझने का आपने प्रयत्न ही नहीं किया। आप के चरित्र में दीनता है, संकोच है, संतोष है, निर्बलता है···और···और क्या कहूँ बहन कि उसमें अपना कहने के लिए कुछ है ही नहीं। वहाँ जो कुछ भी है वह दूसरे के लिए है, जो कुछ भी है वह पराया है, इसीलिए आप मेरे कहने को नहीं समझ सकतीं। आप पहले अपने को समझिए और अपनी शक्ति को पहचानिए। अपने को अबला न गिन कर, सबला गिनिए। संतोष लेकर न बैठिए अपने हृदय में, एक असंतोष की पीड़ा लेकर कुछ कर गुजरने के लिए उद्यत हूजिए। असंतोष ही क्रांति का मूल स्रोत है। संतोषी मनुष्य ही संसार का सब से कायर मनुष्य है। बहुत से लोग संतोष को एक गुण मानते हैं, उस की उपासना करते हैं, परन्तु मैं उसे जीवन का सब से बड़ा अवगुण मानती हूँ। जीवन की उन्नति के मार्ग में वह सब से बड़ी रुकावट है; सब से बड़ी भूल है। आप पहले अपनी इस सैद्धान्तिक भूल को परखिए और अनुभव कीजिए कि इसके फेर में पड़कर आपने अपने जीवन के सुन्दर-काल की खेती पर किस तरह से तुषारापात कर दिया ?

"मैं पूछती हूँ विवाह, प्रेम ये सब क्या बला हैं ? क्यों इन व्यर्थ के बखेड़ों में पड़कर मनुष्य अपने जीवन के मूल्यवान समय को नष्ट करता है ? किसी भी योग्य व्यक्ति को इन सब व्यर्थ की बातों से घृणा होनी चाहिए और फिर किसी की याद में घुल-घुल कर मर जाना, तड़पना, रोना और फरियाद भी न करना, ये सब कहाँ की हिमाकतें हैं ? क्या मजाक है जी ! मैं इन्हें कुछ समझ ही नहीं सकती। शान्ता जीजी, मेरी अक्ल तो इस मामले में कुछ काम ही नहीं करती।" कहती-कहती कमला चुप हो गई।

"ठीक कहती हो बहन !" एक गहरी साँस खींच कर शान्ता ने कहा। "ये सब बातें अनुभव से सम्बन्ध रखती हैं कमला बहन ! अभी तुम चहचहाती हुई चिड़िया हो, जिसके सभी रास्ते खुले पड़े हैं। तुम जीवन भर उन्हीं आजाद रास्तों पर उड़ने का स्वप्न देख रही हो। आज तुम्हारे पैरों में जान है, जहाँ चाहो जा सकती हो, जिस बगीचे में चाहो चहचहा सकती हो। परमात्मा की कृपा से सुन्दर भी हो। मनचले नौजवानों से बातें करने में तुम्हें और तुम से बातें करने में उन्हें आनन्द भी आता है। दिल बहल जाता है और मन चाहता है कि यह तुम्हारा समय यहाँ का यहीं पर रुक जाए और आगे न बढ़े। परन्तु ये दिन सदा नहीं रहेंगे कमला बहन ! एक दिन वह आएगा जब तुम्हारे पर कमजोर हो जाएँगे और तुम दुनिया की इन रंगीनियों में बैठकर भी इनमें से वह आनन्द लाभ न कर सकोगी जिन स्वप्नों की दुनिया में आज नाच रही हो। मनुष्य वही है जो आज के साथ अपने भविष्य पर भी ध्यान देता है। भारतीय सभ्यता का खाका जिस रूप में तुम उड़ा रही हो वह जीवन के विनाश और पतन की दिशा है।

"नारी का जीवन तुमने एक छैलछबीली अलबेली के रूप में ही देखा है। होटलों, और सिनेमाओं में इठलाते हुए ही परखा है बहन! जीवन के केवल एक ही पहलू पर ध्यान देने से व्यक्ति सर्वदा अंधकार में रहता है। उसके नेत्र उसी समय खुलते हैं जब जीवन का दूसरा पहलू अपना भयंकर रूप धारण करके उसके सामने आता है। वह समय इतना कठिन होता है कि मानव उसका सामना नहीं कर सकता। उसे हार माननी होती है और वह उसके जीवन की वह हार होती है जो प्रारम्भिक सब सुखों का एक उपहास बनकर रह जाती है। क्या तुम उद्यत हो उस उपहास के हाथों में अपना जीवन फेंक देने के लिए?" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"यदि ऐसा हो भी तो मैं इसमें कोई हानी नहीं समझती। परन्तु यदि सत्य की खोज की जाए तो इस प्रकार के उपहास की सामग्री केवल वे ही व्यक्ति बनते हैं, जो मूर्ख हैं। मैं अपनी गणना उनमें नहीं करती।" कमला दृढ़ता के साथ बोली।

"तब आपका कहने का मैं यह अर्थ समझूँ कि आप अपने को पुरुषों का उल्लू बनाने में दक्ष समझती हैं। परन्तु यदि आप यह करती भी हैं तब भी आप भूल करती हैं। आप अपने को धोखा देती हैं। यह आप कर नहीं सकतीं। एक स्त्री सब पुरुषों को धोखा नहीं दे सकती और एक पुरुष सब स्त्रियों को धोखा नहीं दे सकता। स्त्री पुरुष के बिना अपूर्ण है और पुरुष स्त्री के बिना। इस बात को भुलाकर आप अपना जीवन इस संसार में नहीं चला सकतीं।" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"खैर! कुछ भी सही, मैं आपकी इस अन्तिम बात से सहमत नहीं और पहली बात जो आपने कही उसका अर्थ आपने कुछ गलत समझा! मैं कहती हूँ कि स्त्री और पुरुष तो बड़ी चीजें हैं, एक-एक कण की भी पृथक्-पृथक् सत्ता है और प्रत्येक अपने में पूर्ण है। यह ठीक है कि एक को एक के सहारे की आवश्यकता होती है, मिल कर चलने से शक्ति बढ़ती है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि एक के बिना दूसरा कुछ है ही नहीं और यदि यह बात आपकी सत्य भी मान ली जाए तब भी यह तो आप को मानना ही होगा कि दोनों को एक दूसरे की बराबर आवश्यकता है, किसी को कुछ कम, किसी को कुछ अधिक।"

"अहा हा! क्या खूब लिखा है लेखक ने? कमाल कर दिया।" इसी बीच दोनों की बातों को काट कर अमरनाथजी अपना सिर हिलाकर कह उठे। इधर शान्ता और कमला की बहस चल रही थी और उधर अमरनाथजी ने 'इन्सान' पत्र का पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। "क्या ही खूब लिखा है? जी चाहता है कि उसकी लेखनी को चूम लूँ।" अमरनाथजी बोले।

"आखिर ऐसा भी क्या लिख दिया? ऐसा तो कभी आपने लेनिन और मार्क्स की पुस्तक पढ़कर भी नहीं कहा।" कमला बोली।

"तो इसका मतलब यह हुआ कि हम दोनों जो कुछ भी बातें कर रही थीं, आपका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। यदि मैं पूछ बैठूँ कि आप किस के विचारों से सहमत हैं ? तो आप उत्तर देंगे कि दोनों के विचारों से नहीं। यही बात है ?" कह कर शान्ता मुस्करा दी। इसके पश्चात् तीनों ने एक-एक गर्म चाय की प्याली ली और फिर कमला तथा अमरनाथ दोनों साथ-साथ उठ कर चले गए। शान्ता अकेली रह गई, मुस्कराती हुई।

१२

आजाद कई पत्र शान्ता को लिख चुका था परन्तु उसे कोई उत्तर नहीं मिला। रमेश बाबू के पत्र का भी उसने लौटती डाक से उत्तर दिया था और उसका भी लौट कर फिर कोई उत्तर उसके पास नहीं पहुँचा। इसका कारण कुछ उसकी समझ में नहीं आया। साथ ही आजाद के विचारों से वहाँ के सभी व्यक्ति परिचित हो गए। सब उसे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे और कुछ लोगों ने तो उसे भारत का जासूस ही सीधे तौर पर कहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार की हवा फैलने में अधिक समय नहीं लगा। जिन लोगों में वह बैठता वहाँ उससे विचित्र प्रकार के प्रश्न किए जाते। एक समय आजाद के लिए वह आ गया कि जब उसे अपने ऊपर स्वयं भी सन्देह होने लगा।

एक बार आजाद ने इच्छा की कि वह इस संकुचित मनोवृत्ति की राजनीति वाले देश को छोड़कर भारत चला जाए, परन्तु उसकी जायदाद उसके रास्ते में रुकावट थी। प्रारम्भ में आजाद ने धन-माल को महत्त्व दिया था, परन्तु आज उसकी दशा यह थी कि वह खाली हाथों भी यहाँ से भाग जाने के लिए उद्यत था। वह इस झूठे धर्म-बन्धन में फँसा रहकर इन्सानियत के विपरीत विचारधारा में नहीं बह सकता था। आज वह अवसर भी वह अपने हाथों से खो चुका था। अब भारत सरकार पाकिस्तान से आने वाले सब मुसलमानों पर प्रतिबन्ध लगा चुकी थी।

एक दिन अचानक सवेरे-ही-सवेरे पास के थाने के दारोगाजी दो कान्सटेबिलों को साथ लेकर आजाद के मकान पर आ धमके। आजाद चाय पी रहा था। दारोगा जी को देख कर उसे कुछ आश्चर्य हुआ, परन्तु फिर भी मनोभाव को छुपाते हुए बोला, "आईए दारोगाजी ! बैठिए चाय पीजिए।" दारोगाजी सामने वाली कुर्सी

पर बैठ गए और चाय पीने लगे।

"कहिए आज सुबह-ही-सुबह कष्ट करने का क्या कारण हुआ ?"

"आपका वारंट है आजाद साहब !"

"वारंट !" आजाद ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हाँ !" दारोगाजी बोले।

"यह किस लिए ?" आजाद ने उतने ही आश्चर्य के साथ पूछा।

"यह इसलिए कि सरकार आपको शुभे की दृष्टि से देखती है। मैं आपको एक राय दे सकता हूँ, यदि आप उचित समझें तो कीजिएगा।" सहानुभूति प्रकट करते हुए दारोगाजी ने कहा।

"क्या राय है आपकी ?" उसी आश्चर्य के साथ आजाद ने पूछा।

"आपको पाकिस्तान छोड़ देना चाहिए, अन्यथा आप पर कई कत्ल के मुकदमे चलाए जाने वाले हैं। सरकार के पास सब रिपोर्ट पहुँच चुकी है कि किस प्रकार आपने दो मुसलमानों को मौत के घाट उतार कर शान्ता को बचाया ? उसका सबूत पुलिस जुटा रही है और शहादतें प्राप्त करने में उसे अधिक समय नहीं लगेगा।" दारोगाजी बोले।

मामले की गम्भीरता आजाद के सामने आगई। उसने एक गहरी साँस ली और कहा, "इसका मतलब यह हुआ दारोगाजी ! कि अब इन्सान कहलाने वाले मुसलमान के लिए भी पाकिस्तान में कोई स्थान नहीं रहा। खैर, जो भी सही, मैं आपकी राय मान सकता हूँ, परन्तु आप तो वारंट लेकर विराजमान हैं, यह फिर किस प्रकार हो सकेगा ?"

"इसका प्रबन्ध मैं स्वयं करूँगा भैया आजाद ! तुम्हारे लिए भला मैं क्या कुछ नहीं कर सकता ? लेकिन तुम जानते ही हो कि हम लोग बहुत थोड़ा वेतन पाने वाले मुलाजिम हैं। इस वेतन में तो बाल-बच्चों का पेट भी नहीं भरता इस मँहगाई के जमाने में। आप लोगों से ही आस लगाए रहते हैं। अभी पिछले दिनों मेरे एक दोस्त मोहनलालजी थे। उनका मैंने हवाई जहाज से हिन्दुस्तान जाने का प्रबन्ध किया। बेचारों ने ५,०००) इनाम के बतौर दिए। क्या कहूँ आजाद भैया ! दोस्ती का हक अदा कर दिया।" दारोगाजी ने कहा।

आजाद दारोगाजी के भावों को समझ गया और खुले दिल के साथ कह दिया, "आप रुपए की चिंता छोड़कर काम कीजिए दारोगाजी ! दोस्ती का हक अदा करने में आप मुझे मोहनलालजी से पीछे नहीं पाएँगे।"

"यह भी भला कुछ कहने की बात है आजाद भैया ! मैं क्या कुछ नहीं जानता ? आप तो उनसे हर बात में बढ़े-चढ़े हैं। उनकी और आपकी कोई बराबरी

मैं नहीं कर रहा था और फिर तुम तो घर के आदमी हो। क्या बिला कुछ लिए मैं तुम्हारा काम नहीं कर सकता ?" दारोगाजी बोले।

"लेकिन आपको शीघ्रता करनी होगी इस मामले में।" आजाद ने कहा।

"यह सब मेरा काम है, आप चिंता न करें।"

आजाद ने १,०००) के नोट लाकर दारोगाजी के हवाले किए और कहा "बाकी बैंक से निकलवा कर भिजवा दिए जाएँगे।"

"सो कोई बात नहीं आजाद भैया! इनकी ही-भला क्या जल्दी थी ? आ जाते और न भी आते हो क्या था ? घर में ही तो थे।" नोटों की गड्डी जेब में सरकाते हुए दारोगाजी ने कहा।

इसके पश्चात् दारोगाजी वहाँ से चले गए और आजाद चिंता निमग्न-सा बैठा रह गया। आजाद का दिल वैसे ही पाकिस्तान से उचट रहा था और फिर यह वहाँ से भाग निकलने का दूसरा कारण बन गया ?

सन्ध्या को जब रात्रि का अंधकार कुछ-कुछ फैल चुका था तो दारोगा जी फिर आए और उन्होंने आकर सूचना दी कि उन्होंने आजाद के लिए हवाई जहाज से भारत जाने का प्रबन्ध कर दिया है। आजाद ने दारोगाजी की कौली भर कर कहा, "आपने मेरे ऊपर बड़ा एहसान किया है दारोगाजी! मैं आपका एहसान नहीं भूल सकता। इसके एवज में आप मुझसे जो चाहें माँग सकते हैं। मुझे देने में संकोच नहीं होगा।"

दारोगाजी का नाम मिस्टर इस्माइल था। यह आजाद के मित्र थे, इस माने में कि एक बार सन् बयालीस की क्रांति में भी इन्होंने आजाद की सहायता की थी और सरकरी पंजों से इन्हें और रमेश बाबू को मुक्ति दिलाई थी। इस्माइल आजाद के विचारों का सम्मान करता था और दिल से उसका हित चाहता था। रही बात रुपए की सो उतनी कमजोरी उसके चरित्र में थी ही।

"भाई आजाद! आपके एक मित्र भी तो थे रमेश बाबू! उनका क्या हाल है ? यदि उनके लिए भी मेरी किसी सेवा की आवश्यकता हो तो कहो। मैं हर सम्भव तरीके से उनकी सहायता करने का प्रयत्न करूँगा।" दारोगाजी ने धीमे स्वर में गम्भीरतापूर्वक पूछा।

आजाद के नेत्रों के सम्मुख वह चित्र आ गया जब मिस्टर इस्माइल ने सन् बयालीस में उन दोनों को अपने ही मकान के एक कमरे में छुपा कर खुफिया पुलिस के डिप्टी साहब से कह दिया था, "मैं कह नहीं सकता मिस्टर पुण्डरीकर! मैं स्वयं कई दिन से उनकी खोज में लगा हुआ हूँ। मैं भी चाहता हूँ कि यदि वे लोग मेरे हाथ आ जाएँ तो शायद मेरे भाग्य का सितारा ही कुछ चमक जाए।"

"ऐसा अवश्य होगा। यदि तुम उन दोनों बदमाशों को पकड़ने में समर्थ होगे तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हें अवश्य तरक्की दी जाएगी। मैं तुम्हारे लिए पूरी कोशिश करूँगा।" डिप्टी पुण्डरीकर बोले।

कुछ देर इन्हीं विचारों में निमग्न-सा आजाद बैठा रहा और उसने दारोगाजी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

"आप विश्वास रखिए कि मेरे काम में कोई धोखा नहीं होगा।" मिस्टर इस्माइल ने आजाद का स्वप्न भंग करते हुए कहा।

"क्षमा करना दारोगाजी ! मैं कुछ पुराने विचारों में ऐसा खो गया था कि मैंने सुना ही नहीं आप क्या कह रहे थे ? मेरे दोस्त रमेश बाबू हिन्दुस्तान पहुँच चुके हैं। अभी चन्द दिन हुए उनका एक पत्र मेरे पास आया था। मैंने उसका उत्तर उन्हें लौटती डाक से दे दिया था, परन्तु कह नहीं सकता कि फिर वहाँ से लौट कर उनका उत्तर क्यों नहीं आया ?" आजाद बोला।

"क्यों नहीं आया, यह बात आप मुझसे पूछिए। आपकी डाक रोक ली जाती है और आपके पास केवल आपके रिश्तेदारों के ही खत आ सकते हैं। हिन्दुस्तान से आने वाले खत आपको नहीं दिए जाते। अब आप समझ गए कि आपके पत्रों का उत्तर क्यों नहीं आया ?"

"समझा !" आजाद ने गम्भीरतापूर्वक कहा। "फिर मुझे किस प्रकार जाना होगा दरोगाजी !"

"मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा, तुम चिंता न करो। रात को दस बजे यहाँ पर एक कार आएगी। आप उसमें जाकर बैठ जाना और ड्राइवर से कुछ बातें न करना। यदि वह कुछ पूछना भी चाहे तो तुम अपना नाम कृष्णचन्द्र बतला देना। बस इससे अधिक कुछ नहीं।"

"ऐसा ही होगा।' आजाद बोला।

"अच्छा भाई आजाद ! अब मुझे आज्ञा दो। मैं यहाँ अधिक देर नहीं ठहर सकूँगा।" कह कर दरोगाजी खड़े हो गए।

चलते समय दोनों एक बार बड़े प्रेम से मिले और फिर मिस्टर इस्माइल वहाँ से विदा हो गए। आजाद फिर चिन्ता निमग्न-सा बैठ गया। आज उसे भूख नहीं थी। वह पर लगा कर भारत को उड़ जाना चाहता। उसके दिल में रह-रह कर ध्यान आ रहा था कि न जाने शान्ता की क्या दशा होगी ? उसके पास तो रुपया भी न रहा होगा। फिर उसका कोई पता भी नहीं। हो सकता है कि उसका पत्र भी उसके पास तक न पहुँचने दिया गया हो। फिर रमेश बाबू ! यदि उन्हें पत्र न मिला होगा तो वह अवश्य यह विचारने लगे होंगे कि शायद समय की लहर में खोकर आजाद भी

इन्सानियत से गिर गया। आजाद घर में अकेला था। उसका एक बूढ़ा नौकर था। उसी को बुलाकर उसने अपना घर सँभलवाकर पीछे से कहा, "बुजुर्गवार, आप मेरे वालिद के जमाने से इस घर की रखवाली करते आरहे हैं। मुझे आपने बचपन से अपनी गोद में खिला-खिलाकर इतना बड़ा किया है। आज मुझे मजबूरन आपको छोड़कर जाना पड़ रहा है।"

"जाना पड़ रहा है ! यह क्यों बेटा ?" आश्चर्य के साथ बुजुर्गवार ने पूछा।

"मेरे नाम पर दो सरकारी वारंट हैं। दारोगा इस्माइल मेरी मदद कर रहे हैं हिन्दुस्तान जाने में। बेचारे बड़े नेक आदमी हैं। आप उनको मेरे चले जाने के पश्चात् भी वह जो मदद माँगें देते रहना। मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा यह वहाँ जाकर खबर दूँगा। आप मेरी चिंता न करना।"

बुजुर्गवार मामले की अहमियत को समझ गए। उनकी आँखों से आँसू की धारा बह निकली। फिर प्यार से उन्होंने आजाद को सीने से लगा लिया। इतनी ही देर में दरवाजे पर गाड़ी आकर खड़ी हो गई। आजाद पहले से ही तैयार खड़ा था। आजाद ने बुजुर्गवार को 'खुदा हाफिज' कहा और फिर अटैची केस हाथ में लिए बाहर निकला और सीधा गाड़ी में जाकर बैठ गया। गाड़ी धीरे-धीरे और फिर तीव्र गति से आगे बढ़ने लगी। आज मौसम बहुत खराब था। ठण्डी हवा चल रही थी। नन्हीं-नन्हीं बूँदें मूसलाधार वर्षा में परिवर्तित हो गईं और मन्दी हवा ने तूफानी आँधी का रूप धारण कर लिया। सड़कों पर कई पेड़ टूटकर कड़-कड़ का शब्द करके धराशाई हो गए। कई मकानों के गिरने का शब्द हुआ। बुजुर्गवार आँखों में आँसू लिए कलेजा हाथों से थामकर, चकराकर वहीं जमीन पर बैठ गए। मन-ही-मन कह उठे, 'या खुदा ! तुमने इन आखिरी दिनों में यह क्या किया ? मैं अपने आका को आकबत में क्या जवाब दूँगा ? जिस बच्चे को वह मेरे सुपुर्द करके गए थे उसको आज मैंने मेह और तूफान के हवाले कर दिया ? या खुदा, या खुदा, कहकर वह बेहोश हो गए। घर बार ज्यों का त्यों खुला पड़ा रहा रात को—न जाने कब तक रात को। जब बुजुर्गवार को होश हुआ तो वातावरण शान्त था और आकाश में चाँदनी छिटकी हुई थी।

१३

"आज चाय भी नहीं पिएँगे आप" रशीदा ने कहा और रमेश बाबू की कलम रुक गई। चाय ठण्डी हो चुकी थी। रमेश बाबू सम्पादकीय लिख रहे थे।

"मैं सचमुच ही चाय पीना भूल गया। प्रेस का भूत जो सिर पर था। मैं प्रेस के फोरमैन से घबराता हूँ। इसीलिए उसका काम पहले समाप्त करना होता है। तुम्हें चाय अब दुबारा गर्म करानी होगी।" रशीदा सामने की कुर्सी पर बैठ गई और पहाड़ी नौकर फिर चाय गर्म करने के लिए उठाकर ले गया।

"पत्र के लिए आपको बहुत परिश्रम करना होता है भैया! इस प्रकार आप यदि हर समय इसी काम पर जुटे रहेंगे तो निश्चय ही एक दिन बीमार पड़ जाएँगे! आपको चाहिए कि कभी घूमने और दिल बहलाने के लिए भी समय निकाल लिया करें।" मुस्कराती हुई रशीदा कह रही थी।

"क्षमा करना बहन! मैं वास्तव में तुम्हारे साथ बड़ा भारी अत्याचार कर हूँ। मैंने अपनी आँखों पर वह रंगीन चश्मा चढ़ाया हुआ है कि जिससे सब कुछ अपने ही रंग में देखता हूँ। अब यह भूल नहीं होगी।" कुछ लज्जित से होकर रमेश बाबू बोले।

"ऐसी बातें करके शरमिन्दा न किया करो भैया!" रशीदा बोली। "मैं अपने घूमने के लिए तो नहीं कह रही थी। तुम्हें अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना ही चाहिए। हर समय इसी अखबार की उधेड़बुन में लगे रहते हो। हिन्दुस्तान भर के समाचार-पत्रों की काट छाँट करना ही मानों अब तुम्हारे जीवन का एक मात्र लक्ष्य बन गया है। यह पत्र ही तो तुम्हारा सब कुछ नहीं है।" कनखियो से मुस्कुराते हुए रशीदा कह गई।

"नहीं बहन! अब मैं कुछ-न-कुछ समय अवश्य निकालूँगा। यह मैं भी अनुभव करता हूँ कि पिछले मास के कठिन कार्य से मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया है। परन्तु काम भी करना ही होता है। अकेले ही सब काम करता हूँ।" रमेश बाबू ने शान्त स्वर में गम्भीरतापूर्वक कहा।

"मैं कहती हूँ यह आपकी कंजूसी है। सभी काम अपने हाथ से करना कहाँ का न्याय है? इस प्रकार मेहनत करके न तो आप अपने काम के साथ न्याय करते हैं और न अपने शरीर और मस्तिष्क के साथ।" रशीदा गम्भीरतापूर्वक बोली।

"यह तुम सत्य कहती हो परन्तु मैं समझता हूँ कि मुझे इनके अतिरिक्त एक और वस्तु है जिसके प्रति न्याय करना है और वह है अपनी बहन का धन।" मुस्करा कर रमेश बाबू ने कहा।

"आज के युग में दूसरे के रुपए के साथ न्याय करने का आपका साहस सराहनीय है।" गम्भीरतापूर्वक रशीदा बोली और उसने अपना चेहरा ऐसा गम्भीर बना लिया कि मानों वह मुस्कराना जानती ही नहीं।

"यह उपहास की बात नहीं है बहन ! मैं इस रुपए का मूल्य समझता हूँ। जिस दिन मेरा अखबार सम्पन्न परिस्थिति में चलने लगेगा उस दिन मुझे आवश्यकता नहीं रहेगी इस प्रकार लगकर कार्य करने की। फिर एक बात और भी है बहन ! एक दिन तुमने मेरे पास जिस लड़की का चित्र देखा था उसके विषय में तुमने कुछ पूछना चाहा था। उस दिन कुछ कारणवश मैं नहीं बतला सका था, परन्तु आज बतला सकता हूँ उसके विषय में।

"उस लड़की का नाम था शान्ता; वह लड़की थी, जिसके जीवन में मैं अपने को खो चुका था। वह मेरी सहचरी थी। हम दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। कई वर्ष हम दोनों ने एक साथ व्यतीत किए थे, मित्र बनकर, साथी बनकर, प्रिय बनकर, सहकारी बनकर और...जैसा कुछ भी तुम समझ सको।

"एक दिन वह भयंकर रात्रि आई कि जिसने हम दोनों को एक दूसरे से सर्वदा के लिए पृथक् कर दिया। अब मुझे यह पता नहीं कि वह कहाँ और किस दशा में है और उसे यह ज्ञात नहीं कि मैं कहाँ हूँ और किस दशा में हूँ ? वह मेरे जीवन की ज्योति थी, जीवन का प्रकाश थी। जिस दिन से वह प्रकाश इन प्राणों से पृथक् हुआ है उसी दिन से मेरे जीवन में अन्धकार छा गया है। जहाँ जीवन की आशाएँ क्रीड़ा किया करती थीं वहाँ अब घोर निराशा और अन्धकार छाया हुआ है। मैं जीवित हूँ अपना कर्तव्य करने के लिए, जीता रहूँगा परन्तु एक मशीन की भाँति, जीते-जागते महसूस करने वाले प्राणी की भाँति नहीं।

"प्रेस की मशीनें जब चलती हैं तो उनकी तुलना मैं अपने शरीर से करता हूँ। वे अपना कार्य करती हैं और मैं अपना कर्तव्य निभाने का प्रयत्न करता हूँ। ऐसा करने में आज तक मुझसे जो कुछ भी अन्याय तुम्हारे प्रति बन पड़ा है उसे तुम क्षमा करना बहन ! और इस मेरी मानसिक परिस्थिति पर ध्यान देकर उसे भुलाने का प्रयत्न करना।" इतना कहकर चिन्ता-निमग्न रमेश बाबू ने एक बार सिर झुका कर कृतज्ञतापूर्वक रशीदा के मुख पर देखा।

इतने में पहाड़ी चाय लेकर आगया। रशीदा ने चाय बनाई और फिर दोनों ने अपनी-अपनी प्याली उठा कर होठों से लगा लीं।

"शान्ता के विषय में जितना भी कोई व्यक्ति कहना चाहे वह कह सकता है। उसके जीवन में प्राचीनता और नवीनता का इतना सुन्दर समन्वय था कि मैंने कम लड़कियों में यह बात पाई है। उसका जीवन बड़ा गम्भीर था। उसके शब्दों में बड़ा

वजन होता था, मानों हर शब्द तोल-तोल कर वह होंठों से बाहर निकालती थी। अधिक बोलना उसने सीखा ही नहीं था, परन्तु जो कुछ वह कह देती थी वह सत्य होकर रहता था। उसके दो शब्द मेरी दिन भर की भारी-से-भारी थकान दूर करने के लिए पर्याप्त होते थे। वह मेरे जीवन की स्फूर्ति थी, बल थी।" कहते-कहते रमेश बाबू का दिल भर आया। प्राचीन स्मृतियाँ नवीन हो उठीं। जीवन की दबी हुई ज्वाला फिर सुलगने लगी और डबडबाई हुई आँखों से निकल कर दो मोती से आँसू पृथ्वी पर गिर पड़े।

इसी समय चपरासी ने अन्दर आकर एक कार्ड दिया। उस पर लिखा था अमरनाथ। रमेश बाबू ने उन्हें सम्मान के साथ अन्दर ले आने के लिए कहा। यों कभी अमरनाथजी से रमेश बाबू की बात-चीत नहीं हुई थी, परन्तु उनके पत्र और उनसे वह परिचित अवश्य थे। उनका पत्र रमेश बाबू को बहुत पसन्द आया था। अमरनाथ जी अन्दर आगए और रमेश बाबू तथा रशीदा दोनों ने उनका खड़े होकर स्वागत किया। सम्मान के साथ उन्हें कुर्सी पर बिठलाया और पहाड़ी ने चाय की एक और प्याली उनके सामने लाकर रखदी।

"चाय तो आप पिएँगे ही भाई अमरनाथजी ?" रमेश बाबू ने कहा।

"कोई अरुचि तो चाय के प्रति नहीं है, परन्तु आप व्यर्थ कष्ट न करें। मैं अभी-अभी चाय पीकर आरहा हूँ।" अमरनाथजी बोले।

"कष्ट की इसमें क्या बात है ? पत्रकार होने के नाते आप हमारे भाई हैं। भाई का काम करने में भी कष्ट होता है ?" बहुत मीठे और मधुर शब्दों में रशीदा ने मुस्कराते हुए अमरनाथ की बात का उत्तर दिया।

रमेश बाबू और अमरनाथ दोनों ही एक-दूसरे से परिचित थे, पत्रकार होने के नाते, इसलिए परिचय का अधिक बखेड़ा खड़ा नहीं हुआ। चन्द मिनट के बाद ही बातों की धारा बदल गई। भारत-सरकार की वर्तमान नीति पर दोनों के विचार केन्द्रित हो गए और उसकी सफलता तथा असफलता पर बहुत ही घुल-मिल कर विचार करने लगे।

"भारत के सामने इस समय सभी क्षेत्रों में जटिल समस्याएँ हैं। मेरा विचार है कि हम दोनों आज मिलकर कुछ विषयों पर विचार करेंगे।" अमरनाथजी बोले।

"मैं आपके विचार से सहमत हूँ। विचार के लिए विषय चुनना ही सबसे कठिन कार्य है। प्रति सप्ताह उन विषयों पर बैठकर विचार कर लिया जाएगा और उन विचारों के आधार पर एक लेख भी प्रति सप्ताह 'इन्सान' में प्रकाशित किया जाएगा। मुझे आपसे इस कार्य में बहुत सहायता मिलेगी। इस प्रस्ताव को रखकर आपने मेरा बहुत बड़ा भार हलका कर दिया। मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ।" रमेश बाबू ने सहृदयता

से कहा ।

"इसमें कृतज्ञता की क्या बात है ? मैं तो तुमसे भेंट करके आज यह अनुभव कर रहा हूँ कि मुझे एक ऐसा साथी मिल गया जो मेरी समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो सकेगा ।" अमरनाथजी बोले ।

"अमरनाथजी ! आपने वास्तव में भैया का बहुत भार हलका कर दिया । इस पत्र ने इनके प्राण पी लिए हैं । अकेले ही इस पत्र के कार्य में इस बुरी तरह से जुटे रहते हैं कि इन्हें खाने की भी सुध नहीं रहती । आप इनकी शक्ल देख रहे हैं, आधे भी नहीं रहे । स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता जाता है । मैं कहती हूँ कि आप अपनी सहायता के लिए किसी का सहयोग ले लीजिए, लेकिन नहीं; मेरा कहना सुनते ही नहीं। कहते हैं कि मैं सहयोग ले लूँगा परन्तु कोई सहयोग देने योग्य व्यक्ति भी तो मिले। एक दिन कोई महाशय उजागरमलजी आए थे । कहते थे कि वह भी पत्रकार हैं, परन्तु उनसे बातें करके ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों किसी घास छीलने वाले से बात-चीत कर रहे हों । इतने संकुचित विचारों का व्यक्ति था, और विचारों का भी क्या कहा जाए, विचार तो उसके पास थे ही नहीं । आपका नाम मैंने भैया की जबान से पहले भी कई बार सुना है । एक बार पता नहीं आपका कौन-सा लेख यह पढ़कर आए थे कि इन्होंने उस दिन प्रशंसा के पुल बाँध दिए थे । मैंने उस दिन भी इनसे कहा था कि आप अमरनाथजी को ही अपना सहयोगी बना लीजिए; परन्तु इनमें संकोच इतना अधिक है कि कभी जीवन में आप इन्हें अपनी तरफ से कोई प्रस्ताव रखते हुए नहीं पाएँगे । यह बात मैं आपसे इस समय इसलिए कह रही हूँ कि जिससे भविष्य में आप कभी कोई चीज गलत न समझें ।" रशीदा प्रेमपूर्वक ये बातें कहती चली जा रही थी ।

"मैं आपकी बातों का अर्थ वास्तव में बिलकुल नहीं समझा । जो बात आपने प्रारम्भ में कही उसका इस अन्तिम बात से क्या सम्बन्ध है, मैं यह समझने में असमर्थ हूँ ।" अमरनाथजी कुछ सकपकाए से बोले ।

"मेरा कहने का अर्थ केवल इतना ही है अमरनाथजी ! कि आप आज से इस पत्र को अपनाकर 'इन्सान' पत्र को अपना ही पत्र समझें। भैया के कहने की कभी बाट न देखें, क्योंकि यह अपनी तरफ से कभी जीवन में कुछ नहीं कहेंगे ।" बहुत स्पष्टता के साथ रशीदा ने अपने विचार प्रकट किए ।

"आप लोगों के इस स्नेह के लिए मैं आपका आभारी हूँ और इस प्रकार का साधन पाकर मैं समझता हूँ कि मैं भी अपने विचारों का अधिक सुन्दर रूप से स्पष्टीकरण कर सकूँगा । हमारा पत्र केवल विचारात्मक ही होगा । उसमें समाचारों का झमेला नहीं चलेगा । इस प्रकार के पत्र की आवश्यकता है । अधिकांश पत्र या तो

सुन्दर टाईटिल और चित्रों के कारण बिकते हैं या किसी और तड़क-भड़क के आधार पर। विचारों के आधार पर जनता द्वारा अपनाया जाने वाला हिन्दी का एक भी साप्ताहिक पत्र नहीं निकलता। मैं आशा करता हूँ कि हमारा यह पत्र इस अभाव की पूर्ति में सफल होगा।" अमरनाथजी ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"ईश्वर करे आपकी इच्छा पूर्ण हो और मेरा तथा आपका परिश्रम फलीभूत हो सके।" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू बोले।

अमरनाथजी का आज का यहाँ आना यह रूप धारण कर लेगा, यह स्वप्न में भी किसी को आशा नहीं थी। 'इन्सान' पत्र के अंकों को पढ़कर अमरनाथजी एक प्रकार से रमेश बाबू की लेखनी के मुरीद बन चुके थे। उनके दिल में रमेश बाबू के लिए श्रद्धा उत्पन्न होगई थी और इसीलिए वह एक दिन इस पत्र के सम्पादक से मिलना चाहते थे। यह मिलन इस प्रकार का होगा इस पर उन्होंने पहले कभी विचार भी नहीं किया था। विचारों का समन्वय होना था कि दिलों में स्थान पैदा हो गया और फिर रशीदा का वह मीठा स्वागत भला किस प्रकार टाला जा सकता था? अमरनाथजी से अनायास ही 'हाँ' कहते बनी, 'ना' कहने का उनमें साहस ही न हुआ।

फिर कितनी ही देर तक भारत की समस्याओं पर विचार होता रहा। रशीदा भी कभी-कभी अपना मत प्रकट कर देती थी। कभी बहस गर्म हो जाती थी और कभी ठण्डी, कभी सरकार की कड़ी आलोचना होने लगती थी और कभी उसकी सीमित शक्तियों की ओर विचार किया जाता था। भारत-विभाजन के कारण जो परिस्थितियाँ पैदा हो गईं थीं फिर बहुत देर तक उनपर विचार होता रहा। विशेष रूप से बेघर लोगों को बसाने की समस्या पर विचार किया गया। फिर हैदराबाद और काश्मीर की समस्याओं को लेकर कितनी ही देर तक बहस होती रही। हिन्दू-मुस्लिम एकता का विषय भी नहीं छोड़ा गया। फिर महँगाई, काला बाजार, खाद्य पदार्थों की कमी, बेरोजगारी, व्यापार, कम्युनिज्म, सोशलिज्म आदि सभी पर गर्म-गर्म बहसें हुईं और अन्त में जो विषय चुन लिए गए वे ये थे—

१. बेघर लोगों की समस्या।

२. हैदराबाद भारत-यूनियन का ही अंग है।

३. काश्मीर को भारत-यूनियन से पृथक् नहीं किया जा सकता।

४. भारत से काला बाजार मिटाने की जिम्मेदारी सरकार तथा जनता दोनों पर बराबर है।

५. भारत में सुख तथा शान्ति स्थापित करने के लिए आपसी झगड़ों को छोड़ना होगा।

६. व्यापारी समाज को खुदगर्जी छोड़कर सरकार से सहयोग करना चाहिए।

७. भारत में शान्ति स्थापित करने के लिए एक सुदृढ़ सरकार की आवश्यकता है।

"बस भाई इस समय इन्हीं सात विषयों को चुनकर हम अपना कार्यक्रम समाप्त करते हैं। शेष फिर किसी दिन बैठकर विचार कर लिया जाएगा। आज आपका मैंने बहुत समय नष्ट कर दिया अमरनाथजी !" रमेश बाबू बोले।

"इसे समय नष्ट करना कहोगे भैया ! मैं तो समझता हूँ कि वास्तव में यदि मेरे समय का कोई सदुपयोग हो सकता था तो वह आज ही हुआ है।" कृतज्ञता प्रकट करते हुए अमरनाथजी बोले और फिर सबने मिलकर एक-एक प्याली चाय पी।

चाय पीकर अमरनाथजी ने विदा ली और रमेशबाबू तथा रशीदा कितनी ही देर तक अमरनाथजी के विषय में बातचीत करते रहे। अमरनाथजी के आज प्रथम बार मिलन का रशीदा पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि वह उनकी ओर अपना सम्पूर्ण स्वागत लेकर झुक पड़ीं।

"तुमने अमरनाथजी को धर्म-संकट में फँसा दिया।" मुस्करा कर रमेश बाबू ने कहा।

"वह कैसे भैया ? मैंने तो कोई विशेष बात नहीं की। जो कुछ भी हुआ है वह मैं मानती हूँ कि नाटकीय ढंग से हुआ है, परन्तु मैंने सब कुछ साधारण सरलता से कहा था।" कुछ सकपकाई सी रशीदा बोली।

"यह मुझे समझाने की आवश्यकता नहीं है रशीदा ! क्या तुम समझती हो कि मैं तुम्हारे मनोभावों को भी नहीं समझ सकता ? परन्तु यह व्यक्ति बहुत सरल और सहृदय है, यह मैं मान गया। यह ऐसा व्यक्ति है कि इसके पास जीवन में छुपाने के लिए कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी है वह स्पष्ट है।" रमेश बाबू ने कहा।

"यह सब कुछ आप जानें भैया ! मेरे पास तो न यह सब कुछ समझने के लिए दिमाग है और न समय ही। आज आपने घूमने चलने का वचन दिया था मुझे। शायद भूल गए आप !" रशीदा बोली।

"नहीं बहन ! आज मैं नहीं भूलूँगा। आज अवश्य घूमने चलेंगे। अमरनाथ जी ने मिलकर आज मेरे सिर का बहुत कुछ भार हलका कर दिया। आज हम लोग इण्डियागेट की तरफ घूमने चलेंगे। संध्या-समय वह घूमने का बहुत रमणीक स्थान है। चारों तरफ घास के सुथरे मैदानों पर बिछी हुई हरियाली, वहाँ के झरने तथा पत्थर की सुन्दर बनी हुई नहरें अपनी निराली ही शोभा के साथ दर्शकों के चित्त का आकर्षण बन जाती हैं। कितना शानदार दृश्य है वह भी जहाँ नवीनता और प्राचीनता का सामंजस्य दिखलाई देता है। यदि एक ओर दृष्टि डालो तो सरकारी दफ्तर के रूप में अंग्रेजी भारत की यादगार सामने दिखलाई देती है और दूसरी ओर स्थित है

कितने वर्ष पुराना महाभारत के समय का पाण्डवों का बनवाया हुआ गढ़, जिसकी केवल चारदीवारी, और वह भी खण्डहरों के रूप में ही, शेष रह गई है। एक ओर दृष्टि डालने पर यदि पराधीन भारत की वह दहकती हुई स्मृति जागृत हो उठती है कि जिसको जड़ मूल से नष्ट करने के लिए भारत के अनेकों सपूतों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी, तो दूसरी ओर भारत का वह गौरव और गरिमापूर्ण समय सामने आ जाता है जब इस देश के यश की पताका देश देशान्तरों में फैराती थी और भारत के वीरों का लोहा दूर-दूर देशों में माना जाता था।

क्या खूब स्थान चुना है अंग्रेजों ने भी उन्नीस सौ चौदह की लड़ाई का स्मृति-चिन्ह स्थापित करने के लिए ?" रमेश बाबू ने कहा।

"तो तुम भैया ! मैं समझ गई कि दिखलाओगे कुछ नहीं। बस यहीं बैठे-बैठे सब कुछ सुनाकर मेरी तृप्ति कर देना चाहते हो। यह तुम्हारी आदत अच्छी नहीं है !" मुस्कराती हुई रशीदा खड़ी हो गई।

"नहीं पगली ! नहीं, आज अवश्य चलेंगे।" रमेश बाबू ने स्नेह भरे शब्दों में कहा। "और आज मैं अपने सब पिछले दिनों की कमी को पूरा करूँगा। आज मेरा चित्त न जाने क्यों इतना प्रसन्न है ? ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानों मेरे शरीर में फिर वही पुरानी स्फूर्ति आगई जिसके फलस्वरूप मैं कई-कई दिन घूमते रहने पर भी तनिक-सी थकान अनुभव नहीं करता था। मेरी चाल में बल रहता था और हृदय में उत्साह। उस उत्साह का अनुभव अपने जीवन में लाहौर से आने के बाद आज प्रथम बार कर रहा हूँ। मुझे आज ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानों मेरे सम्पूर्ण परिश्रम का फल मुझे आज मिल गया।"

"जब किसी की इच्छित वस्तु उसे प्राप्त हो जाती है तो प्रसन्नता होती ही है। आपको एक योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी और वह आपको मिल गया। यही कारण है आपकी प्रसन्नता का।" रशीदा धीमे स्वर में बोली।

रमेश बाबू बोले, "नहीं रशीदा, नहीं ! योग्यता की बात नहीं है। बात वास्तव में कुछ और ही है, जिसे मेरा हृदय किसी अज्ञात प्रेरणा के साथ अनुभव कर रहा है। कारण मैं स्वयँ भी नहीं जानता, परन्तु कुछ भेद अवश्य है। अमरनाथजी के प्रति मेरा इतना खिचाव क्यों हुआ, यह मैं नहीं कह सकता, परन्तु वह है बहुत ही प्रबल।" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू ने कहा।

पहाड़ी नौकर, ताँगा लेने गया था, ताँगा लेकर आ गया। दोनों प्रसन्नता-पूर्वक घूमने के लिए उठ खड़े हुए। घूमने जाने का स्थान इण्डियागेट था, यह पहले से ही निश्चित हो चुका था।

१४

"किसी भेदिए ने जाकर ठीक समय पर सूचना दी। यदि पुलिस दस मिनट भी देर से पहुँचती तो जहाज ऊपर उठ चुका होता।" दारोगाजी ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"अब क्या होगा दारोगाजी ! मेरा लाल अब किस तरह बचेगा ?" आजाद का बुजुर्ग नौकर अपने भारी दिल को किसी प्रकार सँभालता हुआ बोला। बुजुर्गवार का दिल बैठा जा रहा था और उनकी आँखें डबडबाई हुई थीं। यदि दारोगाजी इस समय आश्वासन न देते तो शायद वह चीखें मार-मार कर रोना प्रारम्भ कर देता।

"आप तसल्ली से काम लें। यदि खुदा को मन्जूर हुआ तो सब कुछ ठीक ही होगा। दफात जो उन पर लगाई गई हैं वे ऐसी संगीन नहीं हैं कि जिनमें जमानत न हो सके। मैं आपको तरीका बतला दूंगा। आप जमानत देकर उन्हें छुड़ा लीजिए। फिर देखा जाएगा कि क्या करना है ? जमानत नकद रुपए की होगी। उसका आपको प्रबन्ध करना होगा। रुपया मेरे पास भी नहीं है, वरना भाई आजाद के लिए मैं ही कुछ करता। यह भार आपको ही अपने कन्धों पर सम्भालना होगा।" दारोगा जी बोले।

"उसकी आप फिक्र न करें दारोगाजी ! रुपए का इन्तजाम आप मुझ पर छोड़ दीजिए। एक लाख रुपया भी नकद भरना होगा तो मैं भर दूंगा। मेरे मालिक के पास रुपए की कमी नहीं है, उनका जो खजाना भरा पड़ा है, वह किस दिन काम आएगा ?" बुजुर्गवार बोले।

"तब सब ठीक हो जाएगा। मैं रुपए की कमजोरी से ही जरा डर रहा था। अगर रुपए की कमी न हुई तो मैं जो चाहूँगा कर सकूँगा। आप एक बात का ध्यान रखना कि मेरे यहाँ आने-जाने की खबर किसी को न मिलने पाए, वरना सब असम्भव हो जाएगा और साथ ही मुझे भी नौकरी से बर्खास्त होकर जेलखाने की हवा खानी पड़ेगी। नौकरी छूटने और जेलखाने जाने से मैं नहीं डरता, लेकिन ऐसा होने पर मैं आजाद भैया की कुछ भी मदद नहीं कर सकूंगा।" दारोगा जी गम्भीरतापूर्वक बोले।

"यह आप क्या कह रहे हैं दारोगाजी ? क्या मैं इतना पागल हूँ कि अपने पैरों पर अपने ही हाथों से कुल्हाड़ी मार लूँगा ? मेरे भी ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं। इन राज की बातों को मैं खूब जानता हूँ और फिर आजाद बेटे के साथ इतने दिन रहा हूँ। मैं नहीं समझता था, जब तक आजाद भैया के वालिद साहब का जमाना रहा। तब तक तो मैं वाकई बुद्धू था, क्योंकि वह इतने सीधे-सादे इन्सान

थे कि अपने पलंग और अपनी मसनद से उठकर कहीं जाना उनके लिए तोबाह करने के बराबर था। यहाँ पर यार लोग शतरंज के मुहरे नचाने के लिए हर समय जुटे रहते थे। उनकी रंगीन पेचवानी की गुड़-गुड़ाहट हर समय सुनाई देती रहती थी और मेरा काम भी घर की चहारदीवारी के बाहर कभी नहीं पड़ता था। क्या खूब जमाना था वह भी दारोगाजी ? आए दिन जशन, आए दिन मुजरा, यह घर एक लाजवाब गुलशन था; जिसकी रंगीनियों से लाहौर का हर बशर वाकिफ था। बड़े-बड़े हुक्काम इस ड्योढ़ी पर सलाम झुकाने के लिए आया करते थे और क्या खूब इखलाक था उनका भी कि मेरी उनकी जिन्दगी में कभी किसी ऐसे आदमी से मुलाकात नहीं हुई जो उनके पास कुछ तमन्ना लेकर आया हो और उसकी वह तमन्ना उन्होंने पूरी न की हो। क्या खूब इकबाल था उनका कि मिट्टी को छू दिया तो सोना हो गया, दारोगाजी सोना ! रुपया यूँ ही आता था, बिला बुलाये। कभी रुपया हासिल करने की कोशिश करते हुए मैंने उन्हें नहीं देखा। उन्हें यह भी पता नहीं था कि रुपया कहाँ से कितना आता था और कितना जाता था और कहाँ जाता था ? आपके इसी खादिम के हाथों में सब इन्तजाम रहता था। तिजोरी की चाबियाँ न कभी उनके पास रहती थीं और न कभी बेगम साहिबा के पास। वह हमेशा से मुझी बदनसीब के हाथों में रही हैं। उनके मरने के बाद भी इन्तजाम में कोई फर्क नहीं आया। एक दिन अचानक, खुदा की मरजी पर क्या किसी का चारा चल सकता है, वह और बेगम साहिबा बीमार पड़ गए और एक ही दिन सिर्फ चार घण्टे के आगे-पीछे दोनों इस दुनिया से कूच कर गए। उस दिन आजाद भैया को उन्होंने मेरे हाथों में सौंपा था। अपना फर्ज पूरा कर रहा हूँ दारोगाजी ! जहाँ तक मुझसे बन पड़ा। आज दुनिया में मेरा अपना कहने के लिए आजाद के अलावा और कुछ नहीं है। वह मेरे आका हैं, बेटे हैं, सभी कुछ हैं, जो कुछ भी हैं, वही हैं।" कहते-कहते बुजुर्गवार की जबान रुक गई और आँखें डबडबा आईं।

दारोगाजी ने भी उस पुराने आलीशान खान्दान की बरबादी के ये अन्तिम दिन अपनी आँखों से देखे। आजाद के पिता के समय इस हवेली में क्या शानोशौकत रही होगी ? किस प्रकार दुनिया की रंगीनियों से यह सब जगमगाता होगा ? वह नक्शा उनकी आँखों के सामने आगया और एक क्षण के लिए उनका दिल भी सहानुभूति से भारी हो आया। वह कितनी ही देर तक सोचते रहे कि इस ऐशोइशरत में पले हुए आजाद ने जिन्दगी के इन टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर क्यों चलना पसन्द किया ? क्या परेशानियों में फँसने में भी इन्सान को मजा आता है ? कैसी अजीब बात है ? कुछ समझ काम नहीं करती। इन्हीं विचारों में निमग्न दारोगाजी कुर्सी पर बैठ गए।

"आप बैठिए, मैं आपके लिए कुछ नाश्ता ले आऊँ" कह कर बूढ़ा नौकर

अन्दर चला गया। दारोगाजी न जाने किन विचारों में तल्लीन बैठे रहे। उनके दिमाग में बार-बार यही विचार चक्कर लगा रहा था कि इन्सान परेशानियों में क्यों पड़ता है ? रुपए के लिए, ठीक है, क्योंकि रुपया प्राप्त करके उसे दुनिया का आनन्द भोग करना होता है, परन्तु जिसके पास रुपए की कमी नहीं, वह क्यों फँसता है परेशानियों में ? शायद रुपए से भी चमकदार कोई अन्य वस्तु है, जिसकी प्राप्ति के लिए व्यक्ति धन, घर सब से तिनके की भाँति नाता तोड़ देता है और ऐसा करने में उसे तनिक भी तकलीफ नहीं होती।

इसी समय दारोगाजी के सामने मेज पर नाश्ते के लिए कुछ गाजर का हलुवा, दाल भीजी, समोसे और कुछ जलेबियाँ आगईं। साथ में चाय भी थी।

"आपने खामखा इतना तकल्लुफ कर डाला।" एक गर्म समोसा खाने के लिए उठाते हुए दारोगाजी बोले और फिर खाने में संलग्न हो गए।

"इसमें तकल्लुफ क्या है दारोगाजी ! मैं तो तुम्हें भी आजाद की ही तरह अपना अजीज समझता हूँ। बेटा ! किसी तरह भी हो, आजाद को बचाना तुम्हारा ही काम है। तुम समझ सकते हो कि मेरे प्राण उसी में अटके हुए हैं। जब तक वह तकलीफ में है, मेरा खाना-पीना हराम रहेगा। मैं कुछ खा नहीं सकता, कुछ पी नहीं सकता।" बुजुर्गवार बोले।

"उनकी आप फिकर न करें। मैं आज जाकर पूरी खबर ला दूँगा और तुम कल कचहरी जाकर उनकी जमानत कर सकते हो। एक बार उन्हें जमानत पर छुड़ा लाना, फिर सोचेंगे कि हमको क्या करना चाहिए ?" गम्भीरतापूर्वक दारोगाजी ने कहा।

"जैसा तुम मुनासिब समझो बेटा !" बूढ़ा नौकर बोला। दारोगाजी ने बेटा शब्द इस बूढ़े नौकर के मुख से आज अपनी याद में प्रथम बार सुना था। माँ-बाप का प्यार क्या होता है, इस भेद से वह सर्वथा अपरिचित थे। उनकी याद से पूर्व ही उनके माता-पिता एक महामारी के शिकार बन गए थे। उनके मरने के पश्चात् उनकी बड़ी बहन ने उन्हें पाल-पोस कर बड़ा किया, परन्तु दुर्भाग्यवश वह भी अधिक दिन साथ नहीं दे सकीं। एक दिन अकस्मात् बैठे बिठाए दिल की हरकत धीमी पड़ने लगी। सब सगे सम्बन्धी एकत्रित हो गए और यह भी उनके पलंग के एक पाए के साथ लगकर आँसू बहाते रहे। बहन के मरने के पश्चात् बहन के घर रहना इनके लिए असम्भव हो गया और इन्होंने एक रेस्टोरेंट में नौकरी कर ली। कुछ दिन जीवन के इसी प्रकार व्यतीत किए। दिन में नौकरी करना और रात्रि में किसी स्कूल में जाकर पढ़ना। इस प्रकार प्राइवेट तरीके से पढ़ कर ही इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। रेस्टोरेंट का मालिक इन्हें बहुत प्यार करता था, मेहनत, ईमानदारी और

वफादारी के कारण।

इस रेस्टोरेंट में एक सुपरिण्टेण्डेण्ट-पुलिस नित्य चाय पीने के लिए आया करते थे और यह उन्हें बहुत सफाई के साथ चाय पिलाते थे। कभी वह ट्रे में दो आने छोड़ जाते थे और कभी चार आने, परन्तु यह कभी उन पैसों को नहीं लेते थे। ट्रे में छोड़े हुए पैसों को उठाना यह अपनी मान-हानि समझते थे और इसीलिए पैसों की तश्तरी ज्यों-की-त्यों उठा कर रेस्टोरेंट के मालिक के सामने रख देते थे।

एक दिन यह रहस्य सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब पर भी खुल गया और वह इस साधारण-सी बात से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उसी समय इन्हें बुला कर इनका नाम पूछा और कहा कि दूसरे दिन वह उनके बँगले पर उनसे मिले।

यह दूसरे ही दिन सुबह उठे, हाथ मूँह धोया, चाय आदि पी, और सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की कोठी पर पहुँच गए। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को यह जानकर और भी अधिक प्रसन्नता हुई कि यह मैट्रिक पास थे और उन्होंने तुरन्त ही इन्हें सिपाहियों में भर्ती कर लिया। इसके पश्चात् साहब का हाथ सिर पर रहा और एक दिन वह आया कि यह दारोगा बन गए।

इस प्रकार दारोगाजी का संसार में इस समय कुछ नहीं था। आजाद के प्रति इनके दिल में इतना प्रेम न जाने क्यों उमड़ आया था कि बिना किसी लालच के अपनी इतनी कठिनाई से प्राप्त की हुई नौकरी तक को दाव पर लगाने के लिए भी यह तैयार हो गए थे। नाश्ता करके दारोगाजी वहाँ से चले गए और उस दिन उन्होंने आजाद के केस की पूरी जाँच-पड़ताल करके एक बैरिस्टर साहब से मशवरा किया।

तीस हजार रुपए की जमानत अदालत ने माँगी और वह आजाद के बुजुर्ग नौकर ने नकद खजाने में जमा करा दी। जमानत जमा करके आजाद को रिहाई मिली और बुजुर्गवार उन्हें खुशी-खुशी अपने साथ लेकर घर आगए। बुजुर्गवार बहुत प्रसन्न थे, परन्तु आजाद का चित्त बहुत खिन्न था। उसके मस्तिष्क में रह-रह कर यही विचार चक्कर लगा रहा था कि इस प्रकार की जमानतें कहाँ तक दी जाएँगी और जब सरकार उन्हे पकड़ना ही चाहेगी तो फिर किसी नए जुर्म में फँसा कर पकड़ लेगी। मतलब यह था कि वह बच नहीं सकेगा। पाकिस्तान आज उसके लिए एक बड़ा कारागार था जिसकी सीमाएँ उसके लिए जेलखाने की चार दीवारी से कम नहीं थीं। उसकी जबान पर प्रतिबन्ध था, उसकी हरकतों पर रुकावट थी, उसका पत्र-व्यवहार बन्द था, उसके विचारों को स्वतन्त्रता नहीं थी, मतलब यह था कि इस स्वतन्त्र पाकिस्तान में आजाद की हर चीज परतन्त्र थी।

आजाद को अपनी भूल पर आज रह-रह कर पश्चात्ताप हो रहा था। शान्ता के वे शब्द "एक दिन तुम अनुभव करोगे इस भूल को कि अब पाकिस्तान में तुम्हारे

विचारों वाले व्यक्ति के लिए उचित स्थान नहीं रहा," उसे रह-रह कर याद आ रहे थे। उस दिन जब शान्ता ने कहा था तो उसके पास समय था अपनी पाकिस्तान की जायदाद को अच्छे दामों पर बेचने के लिए और सावधानी के साथ अपना धन-माल लेकर भारत के किसी सुरक्षित कोने में जाकर बसने के लिए; परन्तु आज केवल प्राणों को लेकर जाना भी एक समस्या थी। अपने आश्वासन पर मैंने शान्ता को यहाँ से भेज दिया और उसकी मैं कोई सहायता न कर सका। पता नहीं वहाँ उसकी क्या दशा होगी ? किन कठिन परिस्थितियों में वह अपना जीवन-निर्वाह कर रही होगी ? इसी प्रकार की अनेकों उलझनों में आजाद का दिमाग परेशान था।

आजाद अपने कमरे में अकेला बैठा था। चारों ओर अन्धकार छा गया और आजाद को बत्ती जलाने का भी ध्यान न रहा। इतने में मिस्टर इस्माइल ने आकर धीरे से दरवाजा खोला और वह सीधे आजाद के पास पहुँच कर कान में बोले, "सब काम तैयार है, फौरन चलो।"

आजाद का मुर्झाया हुआ चेहरा खिल उठा और उसने बिला एक शब्द भी मुँह से कहे इस्माइल को गले से लगा लिया। बुजुर्गवार पीछे खड़े थे। उन्होंने तिजोरी खोलकर एक नोटों की गड्डी निकाली और आजाद की तरफ करते हुए बोले, "मालिक यह आपकी अमानत है। मैंने कल आप से बिना पूछे ही आपके दो मकान बेच डाले। ये मकान वे थे जो आपके वालिद साहब मेरे नाम वसीयत कर गए थे।"

आजाद की आँखें भर आईं और वह एक क्षण के लिए बुजुर्गवार से लिपट कर फूट-फूट कर रो पड़ा।

"अधिक समय नहीं है आजाद भैया ! पुलिस अभी-अभी मकान पर आपकी खोज करने के लिए आने वाली है। आपके नाम पर दो और वारेंट बन चुके हैं।" दारोगाजी ने कहा और आजाद तुरन्त चलने के लिए उद्यत हो गया।

आजाद और मिस्टर इस्माइल दोनों जाकर कार में बैठ गए और बुजुर्गवार दरवाजे की चौखट कसकर पकड़े न जाने किस प्रकार खड़े रहे।

१५

"क्या आपने अपना पत्र एकदम बन्द कर देने का निश्चय कर लिया भैया ?" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक पूछा।

"हाँ बहन ! इस समय तो यही निश्चय किया है।" उतनी ही गम्भीरता के साथ अमरनाथजी ने उत्तर दिया।

"परन्तु भैया ! अब आपका खर्चा कहाँ से चलेगा ? आप तो यह कहते थे कि खर्चे के विषय में आपने उन लोगों से कोई बातचीत ही नहीं की।" कुछ उत्सुकता के साथ शान्ता ने पूछा।

"यह ठीक है शान्ता ! परन्तु खर्चा तो मेरा पहले भी पत्र से नहीं चलता था। प्रेस की नौकरी करके जो पैसा कमाता था उसे इस पत्र में खर्च कर देता था। मेरा पत्र केवल मेरे विचारों के स्पष्टीकरण का साधन मात्र था। अपना पेट काट कर मैं उस साधन को जुटाता था, अब वह साधन मुफ्त में ही प्राप्त हो गया और जो पैसे उसमें खर्च होते थे वे बच गए। मैंने तो केवल यही सोच कर उन लोगों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दोनों ही व्यक्ति बड़े भावुक तथा सहृदय हैं।" अमरनाथजी बोले।

इतने में छोटी शान्ता भी पानी लेकर आ गई और बड़ी शान्ता ने स्टोव जला दिया। आज रविवार का दिन था। शान्ता और अमरनाथजी पिकनिक के लिए ओखले आए हुए थे। नदी के किनारे आम के वृक्ष के नीचे उस कच्ची बनी हुई सड़क के अन्तिम छोर के पास इन लोगों ने अपना डेरा लगाया हुआ था। एक बड़ी दरी बिछाई हुई थी, जिस पर छोटी शान्ता आनन्द के साथ लुढ़कती फिरती थी। चाय-पानी का सब सामान ये लोग साथ लेकर आए थे।

"कमला अभी तक नहीं आई।" शान्ता ने पूछा, "आपने कह तो दिया था न कमला से ?"

"कह दिया था, भाई कह दिया था ! तुम कमला पर ऐसी लट्टू न जाने क्यों हो गई हो ? यदि कमला न आई तो शायद तुम्हें चाय पीनी भी दूभर हो जाए और वे जो काजू और मिठाई इत्यादि मैं लाया हूँ वे सब बेकार रह जाएँ।" अमरनाथजी बोले।

"क्यों ! बेकार क्यों जाएँगी भैया ? मित्र-गण तो आपने काफी इनवाइट किए होंगे।" शान्ता यह कह ही रही थी कि सामने से सरदार करमसिंहजी और उजागरमलजी आते दिखलाई दिए, "यह लो भया ! आपकी मिठाई को ठिकाने लगाने वाले तो आगए।" मुस्कराकर सामने आने वाले दो व्यक्तियों की ओर संकेत करके शान्ता बोली।

अमरनाथजी ने करमसिंह और उजागरमलजी का "आइए ! आइए !! हम लोग आपकी ही राह देख रहे थे," कहकर स्वागत किया।

"यदि क्षमा करो तो एक बात कह डालूँ अमरनाथजी !" मुस्कराते हुए

उजागरमलजी ने अपनी मोटी तोंद पर हाथ फेरकर कहा।

"क्षमा करने की भला क्या बात है उजागरमलजी ! और फिर आप जैसे स्वतन्त्र विचारों वाले पत्रकार के लिए तो सभी कुछ क्षम्य है।" कहकर अमरनाथजी ने उजागरमलजी के मुँह पर देखा।

"मेरे कहने का मतलब था कि आज की यह पार्टी कुछ फीकी-फीकी सी लगती है......।"

"यानी पुरलुत्फ नहीं है।" बीच ही में उजागरमलजी के विचारों को लेकर जरा तीव्र गति के साथ करमसिंहजी कह उठे।

"जी हाँ ! जी हाँ ! यही मेरा मतलब था।" उजागरमलजी बोले।

"उसका साधन जुटाने का आप लोगों ने कुछ प्रयत्न भी तो नहीं किया !" कनखियों से झाँकते हुए एक व्यंग भरी दृष्टि डालकर शान्ता ने बड़ी तीव्रता से कहा और वह फिर अपने कार्य में जुट गई। मानों ये शब्द अचानक ही उसकी जबान से निकल गए, बिना अभिप्राय और बिना किसी विशेष अर्थ के।

अब करमसिंह और उजागरमलजी का ध्यान शान्ता की ओर गया और उनकी कुछ जान-में-जान आई। नारी के अभाव की कुछ पूर्ति उन्हें शान्ता के रूप में प्राप्त हुई। आँखों को भी कुछ लाभ हुआ, परन्तु जिह्वा बेचारी स्वतन्त्रता प्राप्त न कर सकी। कारण यह था कि शान्ता के सामने बातें करते हुए उन्हें भय लगता था और उनकी आँखें कभी ऊपर को उठने का प्रयास नहीं कर पाती थीं। शान्ता के मुख का भी इन दोनों व्यक्तियों ने केवल प्रोफाइल मात्र ही देखा था और एक बार जब सामने से देखने की इच्छा हुई भी थी तो इन्हें शान्ता के चित्र की शरण लेनी पड़ी थी।

"क्या आपने यह नहीं सुना बहन शान्ता क्या कह रही हैं।" अमरनाथजी ने मुस्कराते हुए उजागरमलजी से पूछा।

"सुनता भला क्यों नहीं ? परन्तु यह सवाल करमसिंहजी से किया गया था, क्यों बहन शान्ता !" शान्ता की ओर मुख करके उजागरमलजी तनिक मुँह ऊपर-नीचे करके बोले।

"जी नहीं !" तनिक सकपका कर करमसिंहजी बोले, "मूल प्रश्न आपका था और प्रसंग भी आनन्द न आने का आपने ही छेड़ा था। मैं तो साधु आदमी हूँ। साहित्य की सेवा करने में सर्वस्व अर्पण कर दिया है। मैं जब सेवा के पथ पर चलता हूँ तो आनन्द को उठाकर एक ओर रख देता हूँ।" गम्भीरतापूर्वक करमसिंहजी ने कहा।

"यही बात है लाला उजागरमलजी ! मैं इनकी बात का पूरी तरह समर्थन करता हूँ। यह तो साहित्य के पुजारी हैं, कर्मठ व्यक्ति हैं। गुरु गोविन्दसिंहजी ! सिक्खों को ये पाँच निशानियाँ दी क्यों ! जानते हो ? इसीलिए कि वह युद्ध का समय

था। इसलिए बाल काटने का समय नहीं था, कृपाण, कंघा, कड़ा और कुछ आवश्यक वस्तुएँ थीं। आज जो सरदार करमसिंह के साथ ये तुम्हें दिखलाई दे रही हैं ये इसलिए नहीं कि इन्हें धर्म से कोई विशेष प्रेम है, बल्कि इसलिए कि इनके पास साहित्य-सेवा से इतना समय ही नहीं बचता कि यह इन व्यर्थ के झगड़ों में पड़ते फिरें। रविवार को यदि तुम इन्हें गुरुद्वारे में नियमित रूप से जाते देखते हो तो इसलिए नहीं कि इनका वहाँ जाना बहुत आवश्यक है। बल्कि इसलिए कि यह इनके व्यापार, यानी पत्रकारिता का एक अंग बन गया है। यही बात है न करमसिंहजी ?" बहुत गम्भीरतापूर्वक अमरनाथजी बोले और सरदार करमसिंहजी ने भी सिर हिला दिया।

सरदारजी के सिर हिलाते ही सब खिलखिलाकर हँस पड़े और उन्होंने बड़े आश्चर्य से देखा कि कमला उस हँसी में साइकिल के पैडिल से नीचे उतरकर उनका साथ दे रही थी।

"धन्य है सरदार करमसिंहजी आपकी साहित्य-सेवा। आप तो वास्तव में सतयुग के विशुद्ध साहित्यिक जन्तु निकले।" मुस्कराकर कमला बोली।

"मैं पूछता हूँ कमलादेवी! आपने जन्तु शब्द का प्रयोग क्यों किया? क्या इस प्रकार आपने एक पत्रकार का अपमान नहीं किया? और यदि किया तो आपको इसका दण्ड मिलना चाहिए?" उजागरमलजी तनिक गम्भीर होकर पेट पर हाथ फेरते हुए बोले।

इधर कुछ दिनों से कमला और उजागरमलजी में कुछ खींचातानी चल रही थी। आकर्षण और उपहास ने आपस में लड़कर एक विचित्र रूप धारण कर लिया था। कमला के प्रत्येक शब्द पर टिप्पणी करना और उसपर अपने पांडित्य की धाक जमाना वह अपना कर्तव्य समझने लगे थे और उनका यह प्रयास जितना भी आगे बढ़ता था कमला उनकी उतनी ही पोल-पट्टी अधिकाधिक स्पष्ट रूप से खोलती जाती थी।

कमला उजागरमलजी की बात सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ी और फिर करमसिंहजी की तरफ एक विचित्र दृष्टि फेंककर बोली, "यह लीजिए उजागरमलजी ने पार्टी के सामने एक प्रस्ताव रख डाला। क्यों करमसिंहजी, क्या आप इस विषय पर अधिक टिप्पणी कराना पसन्द करेंगे?"

करमसिंहजी कमला की तीव्र बुद्धि से डरते थे और फिर उसके गोरे कपोलों पर दमकती हुई दो पुतलियों के चक्कर में पड़कर वह अपना और अधिक मजाक नहीं उड़वाना चाहते थे। वह एकदम कह उठे, "नहीं कमलादेवी! नहीं! यह सब तो मजाक है। मजाक में सब कुछ कहा जा सकता है।"

"परन्तु मैंने जन्तु शब्द का प्रयोग मजाक में नहीं किया करमसिंहजी! यह

आप फिर सुन लीजिए। मैं इसी शब्द का प्रयोग उजागरमलजी के लिए और भी निखरे रूप में कर सकती हूँ।" कमला बोली।

"मेरे लिए ?" क्रोध में भरकर उजागरमलजी ने पूछा।

"हाँ आपके लिए। क्यों करमसिंहजी ! क्या इसमें कुछ असत्य है ?" कमला गम्भीरतापूर्वक कह रही थी।

"बिलकुल नहीं, कमला देवी, बिलकुल नहीं। उजागरमल जी का शरीर तो एक जन्तु नहीं, कई जन्तुओं का सम्मिलित रूप मालूम देता है।"

करमसिंहजी की इस बात पर सब खिलखिला कर हँस पड़े और शान्ता पर तो अपनी हँसी रोके नहीं रुकी। "'सम्मिलित' शब्द का आपने खूब प्रयोग किया करमसिंहजी मैं आपको दाद देती हूँ।" कहकर शान्ता फिर अपने काम पर जुट गई।

कमला ने अपनी साइकिल एक ओर आम के पेड़ के तने से सटा कर रख दी और स्वयं आकर पार्टी के बीच में बैठ गई। कमला के बैठने पर शान्ता अपने ही स्थान से बोली, "क्यों उजागरमलजी ! अब तो पार्टी पुरलुत्फ हो गई न !"

उजागरमलजी उत्तर न दे सके। कमला शान्ता की ओर देखकर मुस्करा दी, यह समझ कर कि उसके आने से पूर्व वहाँ पर किस विषय पर बातचीत चल चुकी थी।

इस बीच में पहाड़ी नौकर ने शान्ता की मदद से चाय बना ली और सबने एक-एक प्याली चाय पी। फिर सब यमुना-किनारे, जहाँ उसे रोक कर नहर निकाली गई है, चल दिए। कमला ने शान्ता का हाथ पकड़ा हुआ था और छोटी शान्ता अमरनाथजी के साथ आगे-आगे चल रही थी।

आज रविवार का दिन होने के कारण यहाँ बड़ी भीड़ थी। दिल्ली की तंग गलियों के रहने वाले अनेकों व्यक्ति यहाँ अपनी-अपनी दरी अथवा चटाई बिछाए लेट लगा रहे थे। कहीं पर पकौड़े बन रहे थे तो कोई घर से बन्द करके लाए हुए टिफन-दान को ही अपने रूमाल पर खोल रहा था। किसी के साथ अपनी पत्नी थी तो कोई अपनी न होने के कारण किराए की ही साथ में ले आया था। कहीं ग्रामोफोन-रिकार्ड बज रहे थे तो कहीं हारमोनियम के शौकीन बैठे अपना दिल बहला रहे थे। एक अजीब रंग था और विचित्र वातावरण। जंगल में मंगल हो रहा था। कुछ लोग पेड़ों पर रस्सियाँ डाले बच्चों को झुला रहे थे तो कुछ अकेले में लुभाए हुए कभी किसी तरफ और कभी किसी तरफ को ताक लेते थे।

यह पत्रकारों की टोली सबके आनन्द में से अपने मतलब का आनन्द बटोरती हुई आगे बढ़ चली। समय धूप का था, इसलिए वहाँ घूमने में कुछ अधिक लुत्फ नहीं आ सका और किनारे पर मछली पकड़ने वालों की सैर में इन लोगों ने कुछ दिलचस्पी नहीं ली। इसलिए थोड़ी ही देर में फिर वहीं अपनी बिछी हुई दरी का इन्हें सहारा

लेना पड़ा, जिसे कुछ समय पूर्व वे छोड़कर गए थे।

"मैंने सुना है आपने 'इन्सान' में नौकरी कर ली है।" व्यंग्य से उजागरमलजी ने अमरनाथजी की ओर मुँह करते हुए कहा।

"जी हाँ।" अमरनाथजी ने संक्षेप में उत्तर दिया और शान्ता को छोड़ कर सभी ने बड़े आश्चर्य के साथ सुना।

"इन्सान में ?" कमला ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा।

"हाँ, इन्सान में।" अमरनाथजी ने फिर उसी गम्भीरता के साथ उत्तर दिया और शान्ता की ओर देख कर मुस्करा दिए।

"क्यों, क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगा कमला ?" शान्ता ने धीरे से पूछा।

"इसमें अच्छा लगने के लिए है ही क्या शान्ता बहन ?"

"यही मेरा भी विचार है।" जरा उचक कर उजागरमलजी बोले और कमला की ओर जरा ललचाई-सी दृष्टि डालकर कुछ अभिमान और गौरव का अनुभव किया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो वह अब वर्तमान प्रगतिशील विचार वाले पत्रकारों में किसी से पीछे नहीं थे।

"परन्तु आपका 'विचार' विचार विहीन है और कमला के कथन में कुछ उसके विचार से विचारणीय हो भी सकता है।" बहुत गम्भीरतापूर्वक शान्ता बोली और फिर उसने अमरनाथजी की ओर देखा तो न जाने वह किन विचारों में निमग्न थे कि मानों उन्हें पता ही नहीं था कि किस विषय को लेकर यहाँ इतनी लम्बी-चौड़ी बातें चल रही थीं। शान्ता का वाक्य सुनकर करमसिंह ने हँसी की धड़तोड़ दी। करमसिंह को जब कोई ऐसा अवसर मिलता था कि जहाँ उजागरमलजी पर कोई व्यंग्य कसा गया हो तो उनका रोम-रोम खिल उठता था और वह बिला इस बात का प्रयत्न किए कि वास्तव में व्यंग्य अथवा उपहास का क्या कारण बना है, खिलखिलाकर हँस देते थे। उधर उजागरमलजी के तन-वदन में करमसिंह की हँसी से आग लग जाती थी, और वास्तव में क्रोध के मारे वह अपने दाँत पीसने प्रारम्भ कर देते थे। करमसिंहजी की हँसी से उनका क्रोध इतना बढ़ जाता था कि तमाम शरीर तूफान की तरह काँपने लगता था और वाणी में हकलाहट पैदा हो जाती थी।

" 'इन्सान' मजदूरों का दुश्मन है। आपने उसे कैसे ज्वाइन किया ?" कमला ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"यही तो मैं भी सोच रहा था।" उजागरमलजी ने कहा।

"इसीलिए तो मैंने ज्वाइन किया है कि शायद मेरे वहाँ पहुँचने पर 'इन्सान' मजदूरों का दुश्मन न रहे।" अमरनाथजी ने साधारणतया मुस्कराते हुए कहा।

"परन्तु यह असम्भव है। क्या वे लोग आपके वहाँ पहुँचने पर अपने पत्र की

पॉलिसी बदल डालेंगे ? और यदि वे ऐसा करेंगे तो मैं आपका ऐसे छोटे पत्र मे जाना आपकी मान-हानि के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझती।" कमला ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

"यही मैं भी समझता हूँ।" तनिक और आगे खिसककर उजागरमलजी बोले।

"यह किस लिए कमलादेवी ?" अमरनाथजी ने उसी प्रकार मुस्कराते हुए प्रश्न किया।

"यह इसलिए कि वह पत्र ही क्या है जो इस प्रकार अपनी नीति बदल डाले ? पत्र के लिए उसकी नीति का स्थिर रखना नितान्त आवश्यक है। जो पत्र नित्य प्रति अपनी नीति दलकर समय के अनुसार अपने को बना लेते हैं उन्हें मैं गिरगिट की मिसाल दिया करती हूँ और उन पत्रों को मैं सम्मान की दृष्टि से नहीं देखती। उन पत्रों से तो मैं करमसिंहजी और उजागरमलजी के पत्रों को ही अच्छा समझती हूँ!" कमला बोली।

"यह किस लिए ?" अमरनाथजी उसी प्रकार मुस्कुराते हुए बोले।

"क्योंकि इन बेचारों की कोई नीति नहीं है। ये पत्र केवल व्यवसाय के लिए निकालते हैं और .अपने उस कार्य में दोनों सफल हैं।" कहकर कमला चुप होना चाहती थी कि शान्ता बड़े जोर से हँस पड़ी और फिर एकदम चुप होकर बोली, "तो तुम्हारा यह अभिप्राय है कि उजागरमलजी और सरदार करमसिंहजी पत्रकार नहीं, केवल विज्ञापन एकत्रित करने वाले एजेण्ट मात्र हैं।"

"यदि यह भी समझ लिया जाए तो पत्रकारिता की कोई विशेष हानि नहीं होगी।" उसी गम्भीरता से कमला ने उत्तर दिया।

"नहीं, बिलकुल नहीं।" उजागरमल ने बौखलाकर घुटनों पर खड़े होते हुए रूमाल से अपने माथे का पसीना पोंछ कर कहा।

"हमारे पत्र विचारात्मक हैं!" करमसिंहजी ने दाढ़ी पर हाथ फेर कर कहा।

"और यह भी समझ लीजिए कि ऐसा कहकर आपने हमारा अपमान किया है।" उजागरमलजी बोले।

"बिलकुल अपमान किया है। हम यह सहन नहीं कर सकते।" करमसिंहजी जरा गर्मी से बोले।

"परन्तु आप लोग कर भी क्या सकते हैं ? यदि आप लोग मजदूर होते तो मैं आपको इस अपमान का बदला लेने के लिए हड़ताल करने को उकसाती। दुर्भाग्य-वश आप हैं कमलादेवी के शब्दों में विचार न रखने वाले जन्तु। आपको अपमान का अनुभव करने का कष्ट न करना पड़े इसलिए मैंने जन्तु से पूर्व विचार शब्द का प्रयोग उजागरमलजी के शब्दों में किया है। अंग्रेजी भाषा में मनुष्य के लिए एनीमल

शब्द का प्रयोग बहुत प्रचुरता से किया जाता है। आपने तो कितने ही ग्रंथों में पढ़ा होगा उजगारमलजी ?"

"परन्तु यह भारतवर्ष है शान्तादेवी ! यहाँ हिन्दी भाषा की बातें हो रही हैं। यहाँ इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना केवल अपमान मात्र है, और कुछ नहीं।" उजागरमलजी बोले।

"अगेन बदतमीजी ! मैं कहती हूँ यही मूर्खता है। कोई तमीज ही नहीं है। क्या हिन्दी और क्या भारतवर्ष ? संसार एक है। जब तक इस समस्त संसार के लिए एक ही प्रकार के नियम नहीं बनेंगे तब तक मानव शान्ति और सुख की नींद नहीं सो सकता। संसार का मजदूर एक होकर रहेगा और संसार के हर व्यक्ति का पेट एक-सा होगा किसी का कम अथवा अधिक नहीं। हर व्यक्ति को अच्छे कपड़े पहनने और आराम से रहने का अधिकार होगा। ये सब समाज और देशों के संकुचित भेद-भाव मिटा दिए जाएँगे। समय इन्हें स्वयं मिटा देगा। समय के थपेड़ों के सम्मुख ये नहीं टिक सकेंगे, मैं दावे के साथ कहती हूँ।" कमला बोली।

"चलो तुम्हारा कहना हम मान लेते हैं बहन। परन्तु भाई उजागरमलजी के पेट का क्या होगा ?" मुस्कराते हुए शान्ता ने पूछा। सरदार करमसिंह तो खिलखिला कर हँस पड़े और अमरनाथजी भी मुस्कराए बिना न रह सके। कमला भी मुस्करा दी और अन्त में कमला की मुस्कराहट के सम्मुख उजागरमलजी से भी बिना मुस्कराए न रहा गया और हँसकर बोले, "भाई अमरनाथजी ! कमला भी है दिमाग दार। जब बोलती है तो मैं तो इनकी बातों को सुनने में इतना संलग्न हो जाता हूँ कि यह भी ध्यान नहीं रहता कि यह कहती क्या हैं ? परन्तु कहती खूब है। इसकी दाद दिए बिना मैं नहीं रह सकता।"

अमरनाथजी ने भी सिर हिला दिया, मानो उन्होंने उजागरमलजी के कथन का समर्थन किया, सब कुछ सुनकर और समझकर, परन्तु शायद उन्होंने सुना कुछ भी नहीं। इस समय कमला और शान्ता वहाँ से उठकर छोटी शान्ता के पास चली गई थीं जहाँ वह यमुना के पानी से नहर निकाल कर सिंचाई में संलग्न थी। कमला और शान्ता को अपनी ओर आते देख वह खड़ी होकर गम्भीरतापूर्वक बोली, "देखो जीजी ! हमने कितना बड़ा काम किया है। यह हमने जमना से नहर निकाली है।"

"यह तो खूब निकाली भई तुमने शान्ता !" कमला ने प्यार से छोटी शान्ता को गोद में उठाते हुए कहा। परन्तु शान्ता गोद में न ठहरी और तुरन्त नीचे उतर कर बोली, "केवल यही नहीं और भी तो देखिए अभी। हमने 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन का कितना बड़ा काम पूरा कर दिया है ? इस नहर से सिंचाई का काम किया जा रहा है। कितना बड़ा भू-भाग जो पानी की कमी के कारण बंजड़

पड़ा था, अब खेती के काम में लाया जा रहा है। तुम जानती हो जीजी, कि इस वर्ष इसमें कितना अधिक अन्न पैदा होगा ? आप शायद नहीं जानतीं।"

"शान्ता ! यह कमला जीजी कुछ नहीं जानतीं। तुम जब तक नहीं समझाओगे तब तक इनकी समझ में कुछ नहीं आएगा।" मुस्कराती हुई शान्ता बोली।

"आप मेरे इस महान् कार्य को खेल न समझिए जीजी !" उसी गम्भीरता के साथ छोटी शान्ता ने कहा। "मैंने इसे बनाने में बड़ा श्रम किया है। देखिए किस प्रकार मैंने छोटी-छोटी नालियाँ निकालकर पानी को समस्त भूखण्ड पर पहुँचाया है ?"

कमला ने छोटी शान्ता के कार्य की बहुत सराहना की और कुछ समय के लिए ये दोनों यहीं पर छोटी शान्ता के साथ खेल में आनन्द लेने लगीं। उधर दूसरी ओर उजागरमलजी और करमसिंहजी की स्वच्छन्द वार्ता चल रही थी। उजागरमलजी और करमसिंहजी इस समय खूब खुल कर खेल रहे थे।

"तो शान्ता बहन से अमरनाथजी आपकी कोई घरेलू नातेदारी का सम्बन्ध नहीं है ?" उजागरमलजी ने पूछा।

"भाई मुँह बोले का सम्बन्ध क्या कुछ कम होता है ?" मुस्कराते हुए व्यंग्य के साथ करमसिंहजी ने कहा।

"मैं तो यही कहता हूँ भाई ! संसार में जिसे अपना मान लिया बस वही अपना हो गया। एक हम भी तो हैं कि जिनका संसार में अपना कहलाने वाला कोई है ही नहीं।" लम्बी साँस खींच कर उजागरमलजी बोले।

"यह भला तुम क्या कहने लगे उजागरमलजी ? कमला तो दिनरात आपके ही नाम की माला जपती है।" अमरनाथजी बोले।

"कमला···" कह कर करमसिंहजी ठहाका मार कर हँस पड़े, "और वह भी उजागरमलजी के नाम की। आप भी क्या इन्हें बनाने की बातें कर रहे हैं; बल्कि सच तो यह है कि वह इनसे घृणा करती हैं।" गम्भीर होकर करमसिंहजी बोले।

"कमला को आप नहीं पहचानते करमसिंहजी ! आप कभी किसी स्त्री के सम्पर्क में आए ही नहीं। उजागरमलजी ने देखी थी अपनी धर्मपत्नी···क्या कहूँ उनकी बात ? यदि आप कभी इन दोनों की बातें सुन लें तो ऐसा मालूम दे कि मानो आपस में छूरे-कटारी चल रहे हैं। परन्तु दिलों में एक मीठी रस की धार बहा करती थी। मैं कुछ झूठ तो नहीं कह रहा हूँ उजागरमलजी !" अमरनाथजी बोले।

उजागरमलजी ने अपनी स्वर्ग में पहुँची हुई स्त्री का एक बार स्मरण किया और तुरन्त सिर हिला कर मन-ही-मन कह दिया कि वास्तव में अमरनाथजी आप सत्य कह रहे हैं। नारी-हृदय की आपकी परख सराहनीय है।

"खैर कुछ भी सही, परन्तु कमलादेवी का तनिक भी रुझान उजागरमलजी की ओर नहीं है।" करमसिंहजी फिर स्थिरता के साथ अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर बोले। दाढ़ी पर हाथ फेरने की करमसिंहजी को बान थी और जब कभी भी उन्हें अपने किसी वाक्य पर विशेष जोर देना होता था तो वह दाढ़ी पर ऊपर से नीचे कई बार हाथ फेरते थे।

"मेरी तरफ नहीं, करमसिंहजी की ओर कमलादेवी का रुझान मुझे तो मालूम देता है।" उजागरमलजी ने मन में खिसियाकर और ऊपर से मुस्कराते हुए कहा।

"इसमें मुझे सन्देह है।" अमरनाथजी गम्भीरतापूर्वक बोले।

"वह क्यों ?" उसी गम्भीरता के साथ उजागरमलजी ने पूछा।

"वह इसलिए कि कमला को इन लम्बे-लम्बे बालों से, इस साफे से और धर्म-कर्म के चक्कर में पड़ने वाले व्यक्तियों से कोई प्रेम नहीं हो सकता। आपके विषय में तो वह जानती हैं कि मनमौजी स्वच्छन्द प्रकृति के व्यक्ति हैं! न धर्म से कोई सम्बन्ध है, न समाज से कोई नाता। अपने आनन्द में आनन्द है, और अपने मजे-में-मजा। फिर कमला स्वतन्त्र प्रकृति की लड़की है। आपमें उसे वे गुण स्पष्ट दिखलाई दे रहे हैं जहाँ उसकी स्वच्छन्दता के मार्ग में बाधा नहीं आएगी, बल्कि यों कह सकते हैं कि कुछ और प्रोत्साहन ही मिलेगा।" अमरनाथजी कह रहे थे।

"इसमें क्या सन्देह है अमरनाथजी! मेरी प्रकृति को आप से अच्छी तरह और कौन समझ सकता है ? मैं किसी के मार्ग में कोई बाधा नहीं डालना चाहता और फिर कमला! कमला तो मेरे दिल पर राज्य करेगी, मेरी आँखों की पुतलियों में खेलेगी और···" न जाने प्रेमावेश में उजागरमलजी और क्या-क्या कह गए।

"बस-बस और मत कहो; कहीं अधिक कहने से विस्फोट न हो जाए।" खिल-खिलाकर हँसते हुए करमसिंहजी ने कहा।

उजागरमलजी प्रेम के आवेश में यह सब कुछ कह तो गए, परन्तु बाद में उन्हें अपनी कमजोरी पर बहुत खेद हुआ और डरे भी कि कहीं कमला के कानों तक ये बातें पहुँच गईं तो वह क्या कहेगी ? वह कहेगी कि "वाह हमारे बुद्धू प्रेमी ! तुम से प्रेम-प्रदर्शन करना भी नहीं आया। वह भी तुमने किया तो अपने प्रतिद्वन्द्वियों के सम्मुख।"

परन्तु अब पछताए क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत। कमान से निकला हुआ तीर फिर लौट कर नहीं आ सकता था। इसलिए उजागरमलजी ने शान्त होकर एक साँस ली और फिर अपनी स्वर्गवासिनी पत्नी का स्मरण करके कलेजे को थाम लिया। वास्तव में जब से उनकी स्त्री का देहान्त हुआ था उन्हें यह संसार निस्सार-सा

प्रतीत होता था। यों कमला के प्रति उनका आकर्षण अपनी पत्नी के जीवन-काल से ही था, परन्तु उसके मरने के पश्चात् तो कमला का प्रभाव उजागरमलजी के लिए एक समस्या बनता जा रहा था। उजागरमलजी अमरनाथजी को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझते थे, परन्तु अमरनाथजी के साथ शान्ता का इतना निकट सम्बन्ध देखकर उन्हें अपने लक्ष्य में सफल होने की कभी-कभी सम्भावना प्रतीत होने लगती थी और वह भी विशेष रूप से तब जब कि अमरनाथजी स्वयं इस प्रसंग को अपने मुँह से छेड़ते थे। उजागरमलजी का विचार था कि कोई भी व्यक्ति अपनी प्रेमिका के प्रेमी से इस प्रकार घुल-मिल कर बातें कर ही नहीं सकता जिस प्रकार अमरनाथजी उनसे करते थे।

इस प्रकार की विचारधारा चल ही रही थी कि सामने से कमला, शान्ता और छोटी शान्ता आती दिखलाई दीं और तीनों ने अपनी बातों की दिशा बदल दी। इसके पश्चात् एक बार फिर चाय पहाड़ी नौकर ने तैयार की और जो नमकीन, मिठाई, फल इत्यादि लाए गए थे वह सब आनन्दपूर्वक खाया गया।

उजागरमलजी और करमसिंह ने, यह बार-बार दुहराते हुए कहा, "भाई खाने के मामले में भी भला क्या संकोच करना," अपना-अपना पार्ट खूब प्ले किया। खाने के बीच-बीच अनेकों प्रकार की बातें चलती रहीं परन्तु किसी विशेष समस्या को लेकर नहीं। चाय इत्यदि के पश्चात् छोटी शान्ता ने अपने मधुर कंठ से दो गाने सुनाए और साथ-ही-साथ एक छोटा-सा नाच भी दिखलाया। इसके पश्चात् संध्या-समय सब मिल कर फिर बांध की ओर वहाँ का सुन्दर दृश्य देखते हुए बस स्टेण्ड पर आ गए। सरदार करमसिंह और कमला ने अपनी-अपनी साइकिलें सँभाली और शेष तीनों ने बस का टिकट कटा लिया।

चलते समय उजागरमलजी को इस बात का बड़ा खेद रहा कि आज वह भी अपनी साइकिल लेकर क्यों नहीं आए? यदि वह भी साइकिल लेकर आए होते तो क्यों सरदार करमसिंहजी अकेले कमला के साथ साइकिल पर जाते और उन्हें इस प्रकार मन मारे बस में आना होता।

१६

जब से अमरनाथजी यहाँ आए 'इन्सान' कार्यालय का रूप-रंग ही बदल गया। अब पत्र का अपना प्रेस था। प्रेस तथा पत्र का सब प्रबन्ध अमरनाथजी के हाथ में

था। एक शानदार दफ्तर था, जिसके बाहर चपरासी बैठा रहता था। किसी को व्यर्थ अन्दर आने की आज्ञा नहीं थी। प्रेस तथा पत्र दोनों अब लाभ से चल रहे थे, घाटा समाप्त हो चुका था। 'इन्सान' अब दिल्ली का प्रमुख साप्ताहिक पत्र था, जिसकी बिक्री दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी। इस समय यह दस हजार छप रहा था। विज्ञापन की दर दो सौ रुपया प्रति पृष्ठ था और प्रथम पृष्ठ पर किसी भी मूल्य पर विज्ञापन नहीं लिया जाता था। रशीदा और रमेश बाबू दोनों अपने कमरे में बैठे इसी विषय पर बात-चीत कर रहे थे। "अब तो आपका प्रयास सफल हो गया रमेश भैया।"

"हाँ! अब मैं समझता हूँ कि 'इन्सान' के चलने में कोई कठिनाई नहीं रही। यह कार्य अब सुचारु रूप से चल निकला।" रमेश बाबू ने उत्तर दिया।

"आपके इस कार्य में भाई अमरनाथजी ने आकर विशेष योग्यता का परिचय दिया है। उनकी सहायता के बिना हम लोग अपने इस कार्य में इतने शीघ्र सफल नहीं हो सकते थे।" दृढ़तापूर्वक रशीदा बोली।

"इसमें कोई संदेह नहीं रशीदा! अमरनाथजी हीरा आदमी हैं, जो हमारे हाथ आ गए। उनका रात-रात भर दूसरे प्रेस में मेहनत करके जीविका-उपार्जन करना और अवैतनिक रूप ने सारे-सारे दिन 'इन्सान' में कार्य करना, क्या कभी 'इन्सान' से भुलाया जा सकेगा? उनका वह प्रथम परिश्रम पत्थर पर रेखाएँ बना चुका है रशीदा!" प्रसन्नता की झलक मुँह पर लिए हुए गद्गद् होकर रमेश बाबू बोले, "उस दिन वाला तुम्हारा निमन्त्रण, जो तुमने अचानक ही उन्हें 'इन्सान' में सहयोग देने के लिए दिया था, और उनका उसे स्वीकार कर लेना मैं कभी नहीं भूल सकूँगा रशीदा! तुमने हीरे को परखा और 'इन्सान' ने उसका लाभ उठाया। मैं दोनों के प्रति समान रूप से कृतज्ञ हूँ।"

"कृतज्ञता की इसमें क्या बात है भैया?" विनम्र भाव से रशीदा बोली।

"कृतज्ञता की बात पूछती हो रशीदा! इस संसार का कोई भी कार्य बिना पैसे के नहीं हो सकता। 'इन्सान' की योग्यता व्यर्थ है जब तक उसके पास उसे दिखलाने के साधन न हों। साधन धन जुटाता है और वह तुमने दिया। यदि तुम साथ देने के लिए मेरे पास न होतीं तो सम्भवतः यह प्रयास ही मैंने न किया होता।" रमेश बाबू एकटक रशीदा के मुख पर देखकर सरलता से बोले।

"इन पुरानी बातों को जाने दो भैया! बार-बार कहकर मुझे तुम इस प्रकार शरमिन्दा किया करोगे तो मैं रूठ जाऊँगी और फिर कभी भी आपसे इस विषय पर बात-चीत नहीं करूँगी।" मुँह बनाकर रशीदा बोली।

"इतनी-सी बात पर रूठ जाओगी रशीदा! तो जीवन कैसे चलेगा?"

"और नहीं तो क्या ? जब आप मानते ही नहीं ।"

"भाई-बहन का कैसा झगड़ा चल रहा है ?" चिक उठाकर अन्दर आते हुए अमरनाथजी ने कहा और वह आकर मेज के पास पड़ी हुई कुर्सी को खिसकाकर उस पर बैठ गए । उनके हाथ में एक पत्र था । "आपने कुछ सुना भैया रमेश !"

"क्या कोई विशेष समाचार है ?" रशीदा ने पूछा ।

"हाँ बिलकुल नवीन और विशेष भी, परन्तु पहले रशीदा बहन चाय पिलाएँगी तब बतलाऊँगा ।" अमरनाथजी बोले ।

"अमरनाथजी हमेशा बदला माँगते हुए आते हैं । कभी बिला बदले के भी कोई बात बतला दिया करो ।" मुस्कराते हुए रशीदा ने उठकर कमरे से बाहर जाते हुए कहा और बाहर नौकर को अन्दर तीन कप चाय बनाकर लाने के लिए कह दिया । फिर अन्दर आकर बड़ी उत्सुकता से बोलीं, "लीजिए, मैं चाय का प्रबन्ध कर आई, अब आप अपना वह विशेष और नवीन समाचार सुना डालिए, जिसके बदले में आपने एक प्याली चाय चाही है ।"

"अच्छा सुनिए ! भारत सरकार ने हैदराबाद के खिलाफ पुलिस-एक्शन ले लिया, अर्थात् भारत की फौजों ने चारों दिशाओं से रियासत को घेरकर उसकी राजधानी की ओर प्रस्थान कर दिया । जहाँ कहीं भी रजाकार और रियासती फौजें सर उठा रहीं हैं उन्हें दबाया जा रहा है । आशा की जाती है कि दो दिन के अन्दर ही राजधानी पर अधिकार कर लिया जाएगा ।"

"सच !" आश्चर्य प्रकट करते हुए रशीदा ने कहा ।

"सच नहीं तो क्या झूठ कह रहा हूँ ?" मुस्कराकर अमरनाथजी बोले ।

"मैं यही सोच रहा था । और अधिक इस ओर ढील देना भारत-सरकार की भूल होती । अब संघ और हिन्दू महासभा के व्यर्थ प्रोपेगेण्डा करने वालों को पता चलेगा कि भारत-सरकार अपने उत्तरदायित्व के प्रति अचेत नहीं है ? पिछले दो मास से जनता में व्यर्थ की अफवाएँ फैलाकर इन लोगों ने एक तूफान मचाया हुआ था । इन्हें यह नहीं मालूम कि इस प्रकार की बातें करके ये भारत का कितना अहित करते हैं ?" रमेश बाबू बोले ।

"अब जनता के मस्तिष्क का वह भ्रम, कि भारत सरकार में इन साधारण-सी शक्तियों से भी टक्कर लेने की शक्ति नहीं है, छिन्न-भिन्न हो जाएगा । मैं बाजारों में देखता हुआ आ रहा हूँ कि लोग सरकार की इस कार्यवाही की हार्दिक प्रशंसा कर रहे हैं । कोई पटेल की सराहना कर रहा है तो कोई जवाहरलाल की ? जो लोग कल तक यह कहा करते थे कि 'ये कांग्रेसी मुसलमानों से पता नहीं क्यों कान कटवा कर बैठे हैं, उनके विपरीत कोई कार्यवाही करने का इनका साहस ही नहीं होता, इनका दिल

दहलता है, अपने ही मुख से इनके इन्साफ और बहादुरी की दाद दे रहे हैं।" अमरनाथजी बोले।

"इतना बड़ा परिवर्तन जनता के विचारों में !" आश्चर्य से रशीदा ने पूछा।

"ऐसा ही होता है। जनता के पास मस्तिष्क की कमी रहती है। किसी भी देश के सफल नेता वे ही कहलाते हैं जो जनता को आपत्ति-काल में भी विचलित न होने दें। जो कार्य करें उसे उचित समय पर सोच-समझकर करें। नेताओं पर समस्त देश का उत्तरदायित्व होता है, केवल उनके अपने भाग्य का ही नहीं। ऐसी परिस्थिति में यदि वे कोई गलत कार्य कर डालें तो उसका प्रभाव समस्त देश पर पड़ता है। किसी कार्य की टीका-टिप्पणी करना बहुत आसान है, परन्तु उसे कार्यरूप में परिणित करना एक समस्या होती है। हैदराबाद और काश्मीर इस समय भारत और पाकिस्तान के सामने कठिन समस्याएँ बनकर खड़े थे। इन समस्याओं को कोरी बातों से नहीं सुलझाया जा सकता। इन्हें सुलझाने के लिए बलिदान देने की आवश्यकता होती है। नेताओं को देखना होता है कि क्या देश वह बलिदान देने के लिए उद्यत है? क्या उसके साधन उसे उन परिस्थतियों में आज्ञा देते हैं कि वे उसके लिए उद्यत हो सकें? इस परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान करके ही कोई कार्यवाही की जाती है। तीर एक बार कमान से निकल कर फिर नहीं लौटता। इसी प्रकार जो कार्यवाही एक बार कर दी जाती है वह फिर लौटानी सरल नहीं होती।" रमेश बाबू ने कहा। फिर कितनी ही देर तक इसी विषय पर आपस में बातें होती रहीं।

इसी बीच चाय आ गई और तीनों ने बीच में मेज़ डालकर चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। चाय पीते-पीते बातों का क्रम राजनीति के क्षेत्र से बदलकर व्यक्तिगत क्षेत्र में आ गया। अमरनाथजी को रशीदा और रमेश बाबू के विषय में अभी तक केवल इतना ही ज्ञान था कि रमेश बाबू पाकिस्तान से आये हुए एक व्यक्ति हैं, जिन्होंने यहाँ देहली के हत्याकाण्ड में रशीदा के प्राण बचाए और अब ये साथ-साथ रह रहे थे। दोनों के विचारों में बहुत कुछ साम्य होने के कारण दोनों साथ-साथ रहने लगे हैं। एक दूसरे को भाई और बहन कहते अवश्य हैं परन्तु इनके हृदयों के कोमल स्थलों में क्या भावनाएँ छुपी हैं, इसका पूर्ण ज्ञान उन्हें नहीं हो पाया था। एक युवक और एक युवती का इस प्रकार स्वतन्त्र रूप से रहना, इतना एक दूसरे के प्रति प्रेम और श्रद्धा होना और फिर भी एक दूसरे से पृथक् रहना, ये कुछ विचित्र-सी बातें थीं, उसे समझने में वह अपने को असमर्थ पाते थे।

"रमेश बाबू ! मेरे मन में एक प्रश्न, जिस दिन से मैं आपसे मिला हूँ, न जाने कितनी बार आया और सर्वदा ही मैंने उसको रोक लिया, पूछ न सका, न जाने क्यों ?" अमरनाथजी ने चाय की प्याली मेज पर रखते हुए कहा।

"ऐसा क्या प्रश्न है ?" रमेश बाबू ने पूछा। "यदि व्यक्तिगत है तब भी तुम्हें पूछने में संकोच न होना चाहिए और यदि किसी अन्य विषय में है तो तब भी तुमको उसका उचित उत्तर मिल सकता है।"

"प्रश्न बिलकुल व्यक्तिगत है, इसीलिए इतना संकोच रहा। मैंने आपको अपने काम में जितना संलग्न देखा है उतने संलग्न मुझे जीवन में बहुत कम व्यक्ति दिखलाई दिए हैं। इतनी संलग्नता से कोई मनुष्य तभी कार्य कर सकता है जब उसका कोई निश्चित लक्ष्य हो और ज्यों-ज्यों वह अपने लक्ष्य की पूर्ति देखता जाए उसका चित्त उमंग से भरता जाय और उसकी चिन्ता कम होती जाए। परन्तु आपके विषय में मैं ऐसा नहीं पाता।

" 'इन्सान' आज सफलता की ओर बहुत बड़ी प्रगति के साथ अग्रसर है। यह पत्र आपके जीवन की एक बड़ी साध है और इसके प्रति आपका प्रयास और परिश्रम सराहनीय है। परन्तु इस सफलता से आपके जीवन पर किसी भी प्रकार का प्रभाव पड़ता हुआ मैं नहीं देख रहा। आपका जीवन ज्यों-का-त्यों चल रहा है। न उसमें कोई उत्साह है और न किसी प्रकार की कोई उमंग, परिश्रम और उत्तरदायित्व अवश्य है। मैं पूछता हूँ कि उत्साह और उमंग के अभाव में परिश्रम और उत्तर-दायित्व कब तक चल सकेंगे ?" गम्भीरतापूर्वक इतना कहकर अमरनाथजी चुप हो गए। उन्होंने चाय की प्याली उठाकर फिर अपने होठों से लगा ली। उनके माथे पर पड़ी हुई दो-चार सलवटें अभी तक ज्यों-की-त्यों बनी हुई थीं और उनसे पता चलता था कि यह व्यक्ति जो कुछ कहना चाहता था उसे अभी स्पष्ट नहीं कर पाया। बात अभी तक अस्पष्ट थी और उसकी छाया उसके मस्तिष्क में घुमड़ रही थी।

"मैं तुम्हारे कहने का आशय नहीं समझ सका अमरनाथजी ! शायद तुम्हारा सम्बन्ध मेरे रूखे और शुष्क व्यवहार से है।" कुछ विचारते हुए रमेश बाबू ने कहा।

"शायद मैं ही अपने भाव को अधिक स्पष्ट नहीं कर सका रमेश बाबू ! आपके समझने की भूल नहीं, रूखा आपका स्वभाव नहीं, जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ। इस जीवन में कभी रंगीनियाँ भी रही हैं। सदा यह इसी प्रकार वैराग्यपूर्ण रहा हो, यह मैं नहीं मान सकता। सरसता आपके जीवन के कण-कण में विद्यमान है। एक नारी के साथ रहने वाला व्यक्ति कभी रूखा और नीरस हो ही नहीं सकता, यह बात मैं सप्रमाण कह सकता हूँ। नारी प्रत्येक रूप में जीवन की सरसता को प्रेरणा प्रदान करती है, इस कठोर सत्य को भुलाकर यह नर और नारी का संसार एक दिन के लिए भी आगे नहीं चल सकता। मैं तो कभी-कभी सोचा करता हूँ कि यदि वास्तव में कोई परमात्मा है तो उसने प्रकृति को ये दो खिलौने किस लिए प्रदान किये ? या यों भी कह सकता हूँ कि प्रकृति को ही इन दोनों के खेलने के लिए भगवान् ने

बनाया है। यदि यह मेरा विचार सत्य है तो फिर जीवन में नीरसता के लिए स्थान कहाँ रह जाता है ? जीवन प्रकृति का सरस रूप है और उसे नीरस बनाना न केवल अपने ऊपर अन्याय करना है बल्कि अपनी प्रकृति और अपने भगवान् को धोखा देना है। धोखा मैं जानता हूँ कि आप दे नहीं सकते। अवश्य कोई कठोर सत्य है, जिसने आपको जीवन के प्रति इतना उदासीन कर रखा है। क्या वह कठोर सत्य मैं जान सकता हूँ ?" कहकर अमरनाथजी चुप हो गए और फिर चाय की प्याली मुँह से लगा ली, परन्तु जो कुछ वह कहना चाहते थे उसे अब भी स्पष्ट नहीं कर सके, यह उनका मन कह रहा था। शायद उनके पास शब्द नहीं थे उनकी भावना को व्यक्त करने के लिए या विचार आ-आ कर स्पष्ट करने के समय बिखर जाते थे।

रशीदा, जो अभी तक गम्भीरतापूर्वक ये सब बातें सुन रही थी, बोल उठी, "बाबू अमरनाथजी, आपके कहने का मतलब, चाहे भैया समझे हों या न समझे हों, परन्तु मैं समझ गई। इसका उत्तर किसी समय शायद मैं आपको दे सकूँ, भैया नहीं दे सकेंगे और मैं समझती हूँ कि यदि आप इस समय और विशेष आग्रह न करें तो अच्छा होगा, वरना मेरी तमाम रात हराम हो जाएगी और भैया के मस्तिष्क की दशा क्या होगी यह आप नहीं जान सकते।"

"यदि मुझसे कोई भूल हुई हो तो क्षमा करना रशीदा ! क्योंकि मेरा मन कुछ जानने के लिए व्यग्र था, इसीलिए मैं आज अपने को न रोक सका। यदि मुझे पहले से यह ज्ञात होता कि मैं अपनी उत्सुकता शान्त करने के लिए आप लोगों के इतने बड़े कष्ट का कारण बन रहा हूँ तो सम्भवतः मैं इस विषय की ओर संकेत भी नहीं करता।" व्यग्रता के साथ अमरनाथजी बोले।

"ऐसी कोई बात नहीं है अमरनाथ बाबू ! तुम व्यर्थ इतने परेशान न हो। यह तो साधारण-सी बात थी जिसे तुम दो शब्दों में भी मुझसे पूछ सकते थे। रशीदा बड़ी बावली लड़की है। इसके कहने पर तुम नाराज न होना। तुम शायद मेरे जीवन की प्रेम-कहानी को टटोलना चाहते हो, सो वह अब समाप्त हो चुकी, शायद पूर्णतया समाप्त। मेरा जीवन सर्वदा से ऐसा नहीं था, जैसा इस समय है। यह तुम्हारा अनुमान बिलकुल ठीक है। शेष बातें रशीदा तुम्हें बतला देगी।" इतना कह कर रमेश बाबू कुछ परेशानी की सी दशा में खड़े हो गए और रशीदा तथा अमरनाथजी को कमरे में ही बैठे छोड़कर स्वयं बाहर बराँडे में घूमने लगे। रमेश बाबू की आँखों के सामने पिछला जीवन आकर खड़ा हो गया था। कहाँ वह जीवन की चहल-पहल और कहाँ आज का यह मशीन का जीवन, चारों ओर से जकड़ा हुआ, बँधा हुआ ? मन में एक बार आया कि वह इस सब बखेड़े को छोड़कर कहीं एकांत स्थान में चले जाएँ जहाँ शान्ति के साथ रह सकें। रमेश बाबू का मन अब इन व्यर्थ के

दिमाग परेशान करने वाले झमेलों से ऊब चुका था। वह चाहते थे शान्ति। जीवन की संगीत-लहरियाँ एक बार फिर प्राचीन स्वर में झंकृत हो उठीं और विलीन हो गईं उस नित्य के कार्यक्रम में, जो जीवन का एक साधारण नियम बन चुका था।

रशीदा और अमरनाथजी कुछ देर तक वहीं पर बैठे रहे और अपने-अपने आफिस-कार्य पर चले गए। प्रेस का चक्र चल रहा था। आज 'इन्सान' प्रकाशित होना था। हैदराबाद पर कई उल्लेखनीय लेख 'इन्सान' में छपे थे। रमेश बाबू का एक लेख 'हैदराबाद भारत का अंग है' पत्र के मुख-पृष्ठ पर था। पत्र निकलने से पूर्व ही 'इन्सान' कार्यालय' के सामने हॉकरों की भीड़ लग गई।

१७

आजाद पाकिस्तान की सीमा पार करके भारत में आया तो फटे हाल था। जेबें खाली थीं और जो रहा सहा पैसा था भी वह सीमा के पहरेदारों के हवाले करना पड़ा। पैसा देकर प्राण बचाना ही आजाद ने उचित समझा। आजाद को शान्ता का ध्यान था और उसका यह भी विचार था कि वह अवश्य कहीं दिल्ली में ही होगी। इसीलिए वह सीधा दिल्ली के लिए रवाना हो गया। जिस समय भारत का विभाजन हुआ था तो शरणार्थियों को लाने और ले जाने के लिए सरकारी स्पेशल ट्रेनें चल रही थीं। उनमें किसी भी व्यक्ति को टिकट नहीं लेना होता था और मार्ग में कहीं-कहीं कुछ खाने का भी प्रबन्ध था, परन्तु अब वह समय समाप्त हो चुका था और हर व्यक्ति के लिए ट्रेन का टिकट लेना आवश्यक था। आजाद के हाथ में एक घड़ी थी वह उसने अमृतसर में पचास रुपए में बेच दी और इस रुपए से वह गाड़ी पर सवार होकर दिल्ली आ पहुँचा।

दिल्ली आजाद के लिए कोई नया नगर नहीं था। वह यहाँ पहले भी कई बार आ चुका था और यहाँ के प्रायः सभी बड़े-बड़े बाजारों से परिचित था। स्टेशन पर उतर कर आजाद ने सोचा कि वह सीधा जाकर उसी मेडेन्स होटल में ठहरे जहाँ पहले कई बार ठहर चुका था; परन्तु आज परिस्थिति पहले जैसी नहीं थी। आजाद के पास अब केवल तीस रुपए शेष थे और आने वाले अनिश्चित काल तक के लिए यही उसकी जमा-पूंजी थी।

किसी धर्मशाला में ठहरना आजाद अपनी मान-हानि समझता था। यहाँ

उसके कई सगे-सम्बन्धी भी थे, परन्तु उनके मकान पर जाकर ठहरना भी उसने उचित नहीं समझा। इसीलिए बिल्लीमारान में एक छोटे से होटल में एक रुपया आठ आने रोज़ पर उसने एक कमरा किराये पर ले लिया और सबसे पहले अपने को उसने रहने की समस्या से मुक्त किया।

आजाद ने कमरे को एक बाल्टी पानी लेकर अपने हाथ से धोया और फिर वहाँ अपने छोटे से विस्तर को खोल दिया। दरी बिछाकर उस पर सफेद चादर बिछा दी और उस पर लगा लिया अपना फूलदार तकिया। फिर आजाद ने स्नान किया और सब चीजों से मुक्त होकर जब वह कमरे में पहुँचा तो होटल के बैरे ने आकर खाने के लिए पूछा। आजाद ने केवल एक सब्जी के साथ चार चपाती और चाय का आर्डर दिया और इस प्रकार भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर आजाद ने कमरे का ताला लगा दिया। वह घूमने के लिए बाहर निकला।

रहने की समस्या के पश्चात् दूसरी समस्या थी आजाद के सामने अपने निर्वाह की। आजाद आज तमाम दिन किसी नौकरी की खोज में घूमा, परन्तु कोई काम नहीं मिला। पूरे दिन का थका-माँदा जब आजाद शाम को अपने होटल में पहुँचा तो होटल-मैनेजर रजिस्टर लेकर आजाद के पास पहुँचा।

"बाबूजी जरा इस रजिस्टर की खाना-पूरी कर दीजिए।"

"सुवह करा लेना जनाब ? इस समय मेरी तबियत बहुत खराब है और सिर में बहुत सख्त दर्द है।" आजाद मुँह बनाकर बोला।

"सर-दर्द की मैं बाबूजी अभी आपको दवा ला देता हूँ ! आप एक चाय की प्याली के साथ दो टिकिया खा लीजिए, सिर दर्द काफूर हो जाएगा।" और इतना कह कर वह बिला जवाब की प्रतीक्षा किए ही वहाँ से चला गया।

आजाद कुछ बोल न सका। तमाम दिन आज उसने चाय नहीं पी थी। इसीलिए सिर वैसे ही चकरा रहा था। थोड़ी देर में होटल का नौकर चाय की प्याली लेकर वहाँ आया और उसी समय उसके पीछे-पीछे होटल का मैनेजर भी हाथ में दो टिकियाँ एस्प्रो की लिए खड़ा था।

"लीजिए ये दो गोलियाँ खाकर चाय पी लीजिये ! दर्द-सिर ऐसे भाग जाएगा कि मानो था ही नहीं।" मैनेजर ने कहा।

यह बात नहीं थी कि आजाद एस्प्रो को जानता ही नहीं था। गोलियाँ लेकर उसने मुंह में एक-एक करके रखीं और ऊपर से चाय का घूंट भर लिया। फिर धीरे-धीरे स्वाद के साथ चाय पी। चाय पीकर आजाद कुछ देर के लिए अपने विस्तर पर आराम के साथ लेट गया और होटल-मैनेजर वहाँ से अपना रजिस्टर लेकर बिला कुछ कहे-सुने चला गया।

आजाद को कुछ क्षण के लिए नींद आ गई। नींद से जब आजाद की आँखें खुलीं और उसने कमरे से बाहर झाँक कर देखा तो चारों ओर बिजली का प्रकाश पाया। सूर्य अस्त हो चुका था और इस समय रात्रि के आठ बजे थे। आजाद धीरे से उठा और उठकर शौच इत्यादि से निवृत्त होकर उसने मुँह हाथ धोए और फिर अपने कमरे में आकर कंघे से बाल सँवारे।

"कहिए जनाब ! अब तबियत ठीक है ना आपकी ?" होटल-मैनेजर ने पीछे से आकर पूछा।

"जी हाँ, अब ठीक है। तमाम दिन परेशानी की दशा में घूमते-घूमते मेरा सिर चकरा गया था।" आजाद ने कृतज्ञता से उत्तर दिया। "मैं आपके इस सुलूक के लिए आपका अहसानमन्द हूँ।"

"अहसान की जरूरत नहीं जनाब ! यह तो इन्सानियत का फर्ज था। हमारा यह होटल रुपया कमाने की वह मशीन नहीं है जहाँ और लोगों की जेबें काटकर अपनी जेबें भरी जाती हैं। यह तो चन्द मजदूरों का पेट भरने के लिए एक साधन मात्र बना लिया है। यहाँ यात्री बहुत कम आते हैं। केवल छड़े ही आदमी यहाँ पर ठहर सकते हैं। बूढ़े, बच्चे, चाहे औरत हो या मर्द यहाँ आने की उन्हें आज्ञा नहीं।" मैनेजर ने कहा।

"यह क्यों ?" आश्चर्य-चकित होकर आजाद ने कहा।

"हमारे होटल की अधिष्ठात्रीजी की यही आज्ञा है।" मैनेजर ने उत्तर दिया।

"इसका मतलब यह है कि आप इसके मालिक नहीं हैं।" आजाद ने गम्भीरतापूर्वक पूछा।

"जी नहीं ! इस होटल का कोई मालिक नहीं है। यहाँ मालिक कहलाने का नियम ही नहीं है बाबूजी ! यहाँ सब मजदूर हैं और सब मालिक हैं। यहाँ तक कि यहाँ के बैरे, यहाँ के रसोईए, यहाँ के गाइड़ सब मालिक हैं, नौकर नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने काम पर स्वयँ लगा रहता है, किसी को किसी का कर्तव्य समझाने की आवश्यकता नहीं।" मैनेजर ने कहा।

आजाद बड़े ही आश्चर्य के साथ यह सब सुन रहा था। फिर कुछ सहम कर उसने पूछा, "फिर यह आपकी अधिष्ठात्रीजी कौन हैं ?" इतना कहकर उत्तर की प्रतिक्षा में आजाद उनके मुँह पर ताकने लगा।

"उन्हें आपने नहीं देखा। शायद आप भूल रहे हैं। वह वही देवी थीं जो सुबह आपको यहाँ छोड़ गईं थीं। कितना कार्य करती हैं वह बाबूजी ! यह आप अन्दाज नहीं लगा सकते। बस यह समझ लीजिए कि उन्हें चौबीसों घण्टे चैन नहीं।

हर समय, हर घड़ी, दूसरों के ही लिए परेशान रहती हैं। एक बहुत बड़े घर की लड़की हैं, परन्तु घरवार सबको लात मार दी है उन्होंने। आजकल यही होटल उनका सर्वस्व है। इसमें भी पच्चीस कॉमरेड खाना खाते हैं।"

इतना कहकर मैनेजर बाहर किसी काम से चला गया और आजाद कितनी ही देर तक सोचता रहा कि वह युवती कितनी विचित्र थी। उसने मुझे फतहपुरी पर देखते ही यह अनुमान लगा लिया कि मैं क्या चाहता हूँ ? कितने संक्षेप में उसने पूछा, "आपको ठहरने के लिए स्थान की आवश्यकता है शायद ? चलिए मैं आपको सस्ता और अच्छा स्थान वतला देती हूँ।"

मैं उसके पीछे-पीछे हो लिया।

"अच्छा है न स्थान ?" स्थान दिखलाकर उसने पूछा।

मैंने "हाँ" कह दिया।

आजाद इन्हीं विचारों में निमग्न था कि इतने में वही स्त्री सामने से आती दिखलाई दी और आजाद ने देखा कि वह सीधी उसी ओर आ रही थी। सामने आकर बोली, "कहिए, जो स्थान मैंने आपको दिखलाया, कुछ बहुत बुरा तो साबित नहीं हुआ ?"

"जी नहीं ! बुरे के क्या माने ? बहुत अच्छी जगह है और फिर यहाँ की इन्सानियत का आदर्श देखकर तो मेरा अब यह जी चाहता है कि मैं जीवन भर यहीं पर बना रहूँ।" सादगी और गम्भीरता के साथ आजाद ने कहा।

"यह बात है ?" मुस्कराकर देवीजी ने कहा।

"यही बात है।" आजाद ने उसी गम्भीरता के साथ उत्तर दिया।

"परन्तु यहाँ रहने के लिए घर-बार, माँ-बहन, स्त्री-बच्चे सभी से नाता तोड़ना होता है। यहाँ सब बराबर हैं, इन्सान हैं, कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं, किसी की किसी पर सत्ता नहीं, किसी का किसी पर बड़प्पन नहीं। ये सब बातें मन्जूर हैं तुम्हें ?" कहकर वह उसी प्रकार मुस्कराती रही।

आजाद शान्ति के साथ दृढ़ प्रतिज्ञ होकर बोला, "मेरा घर समाप्त हो चुका। मेरा कोई सम्बन्धी नहीं है। माँ, बहन कुछ नहीं। स्त्री-बच्चे बनने का समय ही नहीं आया। इन्सानियत का सबक मैंने अपने एक मित्र से पढ़ा था। परन्तु अब वह स्वप्न-सा प्रतीत होता है, क्योंकि वह मित्र भी किनारा कर गया। आज मैं इस दुनिया में अकेला हूँ और..." कहते-कहते आजाद का गला रूँध गया। वह चुप हो गया।

वह स्त्री भी कुछ देर तक मौन रही और उसने आजाद में वह वस्तु पाई जिसकी खोज में कि वह न जाने कितने दिन से चिंतित थी।

"क्या मैं तुम्हारा नाम पूछ सकती हूँ ?"

"मुझे आजाद कहते हैं।"

"नाम तो अच्छा है।" पहले की तरह मुस्कुराती हुई बोली।

"बुरा कुछ मैं भी नहीं हूँ अपने नाम से।" मुस्कराकर आजाद बोला। "क्या मैं भी आपका नाम मालूम कर सकता हूँ?"

"अवश्य! मेरा नाम कमला है।" कहकर उस स्त्री ने रसोई की ओर देख कर कहा, "क्या अभी तक खाना नहीं बना?"

"खाना तैयार है।" रसोइए ने उत्तर दिया।

"क्या सब खाना मेज पर पहुँच गया?"

"जी हाँ!"

"अच्छा तो घंटी बजाओ।"

"बहुत अच्छा", कहकर घंटी बजाई गई और खाने के कमरे में तुरन्त एक चहल-पहल दिखलाई दी। होटल में जितने भी यात्री ठहरे हुए थे सब वहाँ आकर एकत्रित हो गए और कमला तथा आजाद भी उन्हीं में से थे। खाना प्रारम्भ होने से पूर्व कमला ने आजाद का अपना एक नया मेहमान कहकर, सब यात्रियों के बीच परिचय दिया। इसके बाद सबने साथ-साथ भोजन किया। होटल के बैरे तथा किचन के रसोइए तक भी मेजों पर बैठे भोजन कर रहे थे।

भोजन के उपरान्त सब हाथ मुँह धोकर अपने-अपने कमरे में चले गए। आजाद भी अपने कमरे में चला गया। चलते समय कमलादेवी एक बार फिर आजाद के पास आई और बोलीं, "यदि तुम्हारी तबियत यहाँ न लगती हो तो मैं तुम्हारा किसी और स्थान पर ठहरने का प्रबन्ध कर सकती हूँ।"

"बस आपकी कृपा है। इस समय मैं कहीं नहीं जाऊँगा। मेरा चित्त कुछ खिन्न-सा है, इसीलिए यहीं आराम करूँगा। कल प्रातःकाल जब आप आयेंगी तो मैं कुछ आपसे और बातें करना चाहूँगा।" आजाद बोला।

"अच्छा तो अब मैं चली। मुझे एक पार्टी में पहुँचना है। प्रातःकाल फिर भेंट होगी।" कहकर कमला विदा होगई। आजाद अपने कमरे में बिस्तर पर लेट गया।

प्रातःकाल आजाद ज्यों ही कुल्ला इत्यादि से निवृत्त होकर कुर्सी पर बैठा तो सामने मेज पर चाय आगई। चाय दो आदमियों की थी। चाय रखने वाले ने कहा, "बहनजी अभी आती हैं।"

"कमलादेवी?" आजाद ने पूछा।

"जी हाँ!" आगन्तुक ने उत्तर दिया।

"तब क्या वह सोती भी यहीं हैं?" आजाद ने पूछा।

"जी नहीं, वह बहुत सवेरे यहाँ आ जाती हैं।"

इतने में सामने से कमलादेवी आती दिखलाई दीं। उन्हें आते देखकर आजाद खड़ा हो गया और आदरभाव से उसने कमला को बिठलाया।

"इतना आदरभाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं है।"

"चाय पीजिए ! मुझे कुछ आवश्यक बातें आपसे करनी हैं और फिर एक कार्य पर जाना है। बेचारे मजदूरों की परेशानियाँ देख-देख कर मेरा मन हर समय परेशान रहता है। कांग्रेस-सरकार ने पूँजीवादी मनोवृत्तियों में ब्रिटिश सरकार को भी कई कदम पीछे छोड़ दिया है। जहाँ भी देखो धनपतियों का बोल-बाला है, कांग्रेस के सब पुराने वायदे झूठे पड़ गए। आज ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वायदे कभी उन्होंने किए ही नहीं थे।"

दोनों ने चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। इसके पश्चात् आजाद ने धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ किया, "मुझे भारत-सरकार की परिस्थिति के विषय में तनिक भी ज्ञान नहीं। मैं कल ही पाकिस्तान से किसी प्रकार अपनी जान बचाकर आया हूँ। मेरे खिलाफ वहाँ कई वारंट थे और जमानत पर छुटा हुआ था। अपने एक मित्र दारोगाजी की सहायता से मैं सीमा पार कर सका।" आजाद भावुकता में कह तो गया, परन्तु कहने के पश्चात् बहुत सकपकाया।

"डरिए नहीं ! यहाँ कोई खुफिया-पुलिस का आदमी नहीं है, जो तुम्हारी सूचना पुलिस तक पहुँचाए। यहाँ तुम्हें हर प्रकार की सहायता मिलेगी।" कहकर कमला खड़ी हो गई और अपना बेग हाथ में लिए, खटाखट करती हुई जीने से नीचे उतर गई।

"आपके लिए चाय और लाऊँ ?" चाय लाने वाले व्यक्ति ने दुबारा कमरे के अन्दर आकर पूछा।

"एक प्याली और।" आजाद ने कहा। चाय तुरन्त आ गई। चाय पीकर आजाद फिर लेट गया। आजाद का मस्तिष्क अभी तक आराम नहीं पा सका था। यह सत्य था कि इस समय उसके सामने से रहने और खाने की चिंताएँ समाप्त हो गई थीं। उसे क्या करना है ? किस दशा में अपने जीवन को लगाना है ? यह निश्चय करने में आजाद अभी तक असमर्थ था। इस गम्भीर प्रश्न पर विचार करने वाला मस्तिष्क भी उसके पास इस समय नहीं था। वास्तव में आजाद एक सिपाही था, सिपहसालार नहीं। इसीलिए उसने अपने पिछले जीवन में रमेश बाबू के रहते हुए कभी विचार करने की आवश्यकता भी अनुभव नहीं की।

१८

"भैया ! आपका लेख मुझे बहुत पसंद आया। हैदराबाद की समस्या पर आपने जो पहले प्रकाश डाला था परिस्थिति उससे पृथक् और कुछ नहीं बन सकी। आज भारत-सरकार को वही करना पड़ा जो आपने अपने पिछले अंक में लिखा था। उस समय कुछ कांग्रेसी भाईयों ने आप पर ताने कसे थे। भारत-टाइम्स में तो उस लेख पर टिप्पणी भी निकली थी।"

"यह सब तो चलता ही रहता है बहन ! परन्तु हमारे आज के अंक में रमेश बाबू का लेख बहुत मार्के का है। शायद तुमने वह नहीं पढ़ा।" अमरनाथजी बोले।

"आप तो भैया ! रमेश बाबू और उनके लेखों पर ऐसे लट्टू हैं कि उनके अतिरिक्त आपको और सब फीका-फीका लगता है। यहाँ तक कि आपकी अपनी स्वतन्त्र विचार-धारा भी उनके विचारों में उन्हीं की बन गई है। यदि मैं यह कह दूँ कि उसमें अपना कहलाने के लिए कुछ रह ही नहीं गया है तो कुछ अनुचित नहीं होगा।" शान्ता बोली।

"मैं तो यही चाहता हूँ शान्ता बहन, कि मेरे विचारों में कुछ अपनापन न रह कर केवल उनकापन हो आए परन्तु वह अभी तक हो नहीं पाया। यह मैं अपनी असमर्थता मानता हूँ। उनके लेखों का गाम्भीर्य, प्रयत्न करने पर भी मेरे लेखों में नहीं आ पाता। जब मैं उनसे बातें करता हूँ तो ज्ञात होता है कि मानो मैं किसी बहुत गहरे समुद्र के किनारे पर खड़ा हूँ।" अमरनाथजी बोले।

इसके पश्चात् शान्ता ने बातों की दिशा बदल दी और अपने स्कूल में होने वाले वार्षिकोत्सव की बात छेड़ दी। शान्ता इस स्कूल की हेड-मिस्ट्रेस थी। जब से शान्ता ने इस स्कूल का चार्ज सँभाला था, स्कूल दिन दूनी उन्नति करता जा रहा था। जब वह वहाँ गई थी तो केवल पैंतीस कन्याएँ पढ़ने के लिए आती थीं और इस समय वहाँ आने वाली कन्याओं की संख्या दो सौ पचास से ऊपर थी। स्कूल के प्रबन्ध में भी शान्ता ने काफी सहयोग दिया। बहुत-सा रुपया कन्याओं के संरक्षकों से मिल कर एकत्रित कर लिया था। स्कूल के लिए सरकारी सहायता का भी प्रबन्ध शान्ता के ही परिश्रम से हुआ। इस प्रकार यह पाठशाला इस समय बहुत सुचारु रूप से चल रही थी।

शान्ता ने पाठशाला के वार्षिकोत्सव पर आने के लिए अमरनाथजी को निमंत्रण-पत्र दिया और साथ ही रमेश बाबू तथा उनकी बहन के विषय में पूछा कि क्या वे भी वहाँ आने का कष्ट कर सकते हैं ?

अमरनाथजी कोई निश्चित उत्तर न दे सके, क्योंकि उन्हें मालूम था कि

आगामी सप्ताह में रमेश बाबू बाहर जाने वाले थे, किस दिन और कहाँ, यह ज्ञान स्वयं उन्हें भी नहीं था। "रशीदा बहन के विषय में मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि वह अवश्य आ सकेंगी क्योंकि वह कहीं बाहर नहीं जा रही हैं," अमरनाथजी ने कहा और फिर इधर-उधर की बातें चल पड़ीं।

"क्यों भैया! आपको इतने दिन वहाँ काम करते हुए हो गए, और आप यह भी कहते हैं कि आप उनके घनिष्टतम सम्पर्क में हैं, परन्तु आप आज तक यह नहीं बतला सके कि रमेश बाबू कौन हैं, कहाँ के हैं, यहाँ किस प्रकार आये और रशीदा का उनसे क्या सम्बन्ध है?" शान्ता ने मेज पर अपने दोनों हाथों की कोहनियाँ टिका कर अपने मुँह को दोनों हाथों पर सँभालते हुए कहा।

"यह सब मालूम करने की जिज्ञासा मेरे हृदय में न हो, ऐसी बात नहीं है बहन? परन्तु यह सब ज्ञान प्राप्त करने में मेरी असमर्थता है। मैंने कई बार इस प्रकार का प्रयत्न किया परन्तु सब व्यर्थ और निष्फल सिद्ध हुआ। मैं असमर्थ ही रहा। जब कभी भी इस प्रकार की बात चलती है तो रमेश बाबू की दशा बिलकुल विचित्र-सी हो जाती है और न जाने वह किस विचार-जाल में फँस जाते हैं।" अमरनाथजी ने उत्तर दिया।

"अच्छा यह रशीदा कौन है? उनके पास किस प्रकार रहती है और दोनों का परस्पर क्या सम्बन्ध है? क्या यह भी आप मालूम नहीं कर सके?"

"रशीदा कौन है यह मैं नहीं कह सकता, परन्तु इस कार्यालय पर जितना रुपया लगा हुआ है वह सब रशीदा का ही है। रमेश बाबू को वह भैया कहती है और रमेश बाबू उसे रशीदा, बस यही दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जान सका। दोनों में परस्पर घनिष्ट-प्रेम है, यह बात भी स्पष्ट ही है, परन्तु वे दोनों सगे भाई-बहन नहीं हैं।" अमरनाथजी ने उत्तर दिया।

"प्यार क्या भैया आप मुझे नहीं करते?" शान्ता ने मुँह नीचा करके कहा।

"क्यों नहीं शान्ता?" अमरनाथजी बोले।

"सगे तो हम भी नहीं कहे जा सकते, परन्तु मैं आपको सगे भाई से भी अधिक समझती हूँ।" शान्ता मुस्कराती हुई बोली।

"खैर कुछ भी सही शान्ता! यह एक राज की बात है, जिसे मैं अभी तक मालूम नहीं कर सका और तुम न जाने कैसी लड़की हो कि इस मकान की चहार दीवारी से पाठशाला और पाठशाला से यह मकान, बस यही तुम्हारी दुनिया है। तुम यदि दो-चार बार मेरे साथ वहाँ चलकर उनके सम्पर्क में आ जातीं तो शायद रहस्य का उद्घाटन सरलता से हो जाता।" अमरनाथजी विश्वास के साथ बोले।

"परन्तु मैं जीवन में आज तक भैया कभी बिला बुलाए कहीं नहीं गई।

आपने उन लोगों से अवश्य कभी-न-कभी कहा होगा कि आपके भी एक बहन है। क्या कभी उन्होंने उस बहन से मिलने की इच्छा प्रकट की ?" उत्सुकतापूर्वक शान्ता ने पूछा।

'बहन सच बात तो यह है कि इस विषय में उनसे कभी मेरी बात-चीत ही नहीं हुई।" अमरनाथजी ने उत्तर दिया और साथ ही उन्हें कुछ बुरा भी लगा कि क्यों उन्होंने कभी शान्ता के विषय में उनसे बात-चीत नहीं की ?

शान्ता का भ्रम दूर हो गया। उसका विचार था कि शायद वे लोग कुछ अभिमानी हैं, परन्तु अमरनाथजी के इस उत्तर ने बात स्पष्ट कर दी। इसी प्रकार की बातें चल रही थीं कि इतने में बाहर से छोटी शान्ता ने आकर दूर उंगली का संकेत करते हुए सूचना दी कि कमला बहन आ रही हैं। कमला को देखकर दोनों की बातों की दिशा बदल गई। शान्ता बहन एकदम कह उठीं, "कमला आज कई दिन बाद इधर आ रही है। न जाने क्या कारण है कि कई दिन से उसे इधर आने का अवकाश ही नहीं मिला ?"

"आजकल वह पार्टी के कार्य में बुरी तरह से फँसी हुई है। मैंने तो सुना है कि उसने अपना घर का रहना भी त्याग दिया है और एक पार्टी-होम तैयार किया है।" अमरनाथजी ने कहा।

'पार्टी-होम !" आश्चर्य से शान्ता ने पूछा।

"हाँ ! वह एक ढाँचा कमला ने रूस के ढंग पर तैयार किया है। मैंने सुना है कि वही उसकी संचालिका है और उसका प्रबन्ध भी बहुत सुन्दर है। उसमें पार्टी के कॉमरेड रहते हैं और सब-का-सब कार्य वे सब लोग स्वयं अपने ही हाथ से करते हैं। मुझे एक दिन कमला ने तुम्हारे साथ आकर वह होम देखने के लिए कहा था परन्तु मैं पिछले दिनों कुछ ऐसा कार्य में फँसा रहा कि मुझे ध्यान ही नहीं रहा उस बात का।" अमरनाथजी बोले।

इतने में कमला वहाँ आ गई और अमरनाथजी ने मुस्कुरा कर तथा शान्ता ने खड़े होकर बड़े प्रेम-भाव से कमला का स्वागत किया। कमला न जाने क्यों शान्ता को बहुत प्यारी लगती थी। यह बात दूसरी थी कि कमला और शान्ता में सैद्धांतिक रूप से बहुत बड़ा मतभेद था, परन्तु व्यक्तिगत रूप से दोनों में ही बहुत स्नेह हो गया था। कमला एक धनाढ्य परिवार की लड़की होते हुए भी कम्यूनिस्ट-विचार रखती थी और धनपतियों से उसे महान् घृणा थी। सरमायेदार, यहाँ तक कि उसका पिता और उसके भाई भी कभी उसके स्नेह के पात्र नहीं बन पाए। यदि राज्यसत्ता कभी उसके हाथ में आ जाए तो वह सबसे पहले उन्हीं लोगों को गोली से उड़वाए। गोली से उड़वाने से छोटी सजा देना कमला को पसन्द नहीं था।

यों कमला का व्यक्तित्व बहुत ऊँचा था, लोभ, लालच, स्वार्थ ये सब उसे छू तक नहीं गए थे, कर्मठ होने में उसकी बराबरी करना कठिन था, उसका हर कार्य तूफानी वेग के साथ बहुत व्यवस्थित रूप से होता था, अपने विचार की वह बहुत पक्की लड़की थी, आलस्य और आरामतलबी लेश-मात्र भी उसके जीवन में नहीं थी, उसका जीवन मजदूर और सरमायेदारों की समस्याओं का एक झमेला था।

जिस पार्टी में भी कमला चली जाती थी उसके सौन्दर्य का माया-जाल युवकों पर जादू का काम करता था। विद्यार्थी नवयुवक तो कमला के संकेत पर नाचने लगे थे। कमला के संकेत में न जाने कैसी मादकता थी कि उसका पालन न करना नवयुवक के लिए असम्भव बात बन गई थी। दिल्ली की सभी ट्रेड-यूनियनें कमला के संकेत पर चलती थीं। कमला का प्रभाव धीरे-धीरे मजदूरों और विद्यार्थियों में बढ़ता जा रहा था। यह प्रभाव इतना बढ़ता जा रहा था कि यहाँ की पुलिस के लिए भी कमला का इस प्रकार स्वतन्त्र घूमना एक परेशानी हो चला था।

कमला शान्त बैठी अमरनाथजी के मुंह पर एक टक जाने क्या देखती रही। शान्ता चुप थी। यह मौन न जाने कितनी देर तक बना रहता यदि इसी बीच में छोटी शान्ता न आ जाती। वह कमला जीजी का हाथ पकड़ कर बोली, "कमला जीजी ! मैंने सुना है कि आपने एक होम (घर) तैयार किया है। क्या आप उसमें मुझे नहीं रखेंगी ?"

"तुम्हारे लिए अभी शान्ता बहन का होम ही उपयुक्त है।" उसके गालों पर एक हलकी-सी चपत लगाते हुए प्यार से कमला ने कहा, "वह होम तुम्हारे लिए अभी उचित नहीं है। एक समय आयेगा, जब तुम उसे समझ सकोगी और उसमें जाकर रहना आवश्यक समझोगी।" गम्भीरतापूर्वक कमला ने कहा।

"परन्तु जीजी ! मैं तो आज भी बहुत चतुर हूँ। आपने ही तो कहा था पिछले दिन कि छोटी शान्ता चतुराई में बड़ी शान्ता के भी कान काटती है।" छोटी शान्ता ने यह बात गम्भीरतापूर्वक कही। इसे सुनकर अमरनाथजी तथा शान्ता दोनों ही खिलखिला कर हँस पड़े।

बातों की दिशा पार्टी-होम पर केन्द्रित हो गई और अमरनाथजी ने जी खोलकर इस प्रकार के होटलों की निन्दा की। इस प्रकार की व्यवस्था के विपरीत उन्होंने एक लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दे डाला। यों तो साधारणतया अमरनाथजी केवल आवश्यक विषयों और समस्याओं पर ही बोलना उचित समझते थे परन्तु आज न जाने क्या मन में आ गई ? शान्ता और कमला दोनों चुप-चाप सुनती रहीं। कमला शायद एक दो बार बीच में "शटअप" कह भी बैठती, परन्तु शान्ता उसे सँभाले रही।

जब कमला प्रयत्न करने पर भी अपने को न रोक सकी तो कह उठी,

"यह बकवास है। गृहस्थ-आश्रम, पति, पुत्र, घर की मर्यादा, जीवन के नियम, मूर्ख रूढ़िवादी विचारों वाले व्यक्तियों की ढकोसले बाजी है, बदमाशी है। मैं इन बातों पर विश्वास नहीं करती। प्रत्येक व्यक्ति को जीवन-पथ पर चलने के लिए सिपाही बनना होगा, सैनिक !"

"परन्तु मैं तो सैनिक नहीं बन सकता। मेरी ही तरह और भी बहुत से व्यक्ति है जो सैनिक नहीं बन सकते। फिर आपकी व्यवस्था में हम जैसों के लिए क्या स्थान होगा ?" मुस्कराते हुए अमरनाथजी ने कहा।

"ऐसे व्यक्तियों को गोली से उड़ा दिया जायेगा। उनका जीवन व्यर्थ है। उनके जीने से कोई लाभ नहीं।" कमला अमरनाथजी के लिए ये शब्द कह तो गई, परन्तु कहने के पश्चात् वह बहुत सकपकाई।

"तुमने ठीक कहा कमलादेवी !" उसी प्रकार मुस्कुराते हुए अमरनाथजी बोले। "तुम्हारे हृदय की इसी स्पष्टता का मैं आदर करता हूँ। मुझे आशा है कि जिस निस्संकोच भाव से यह बात तुमने आज कही है यदि कल समय आ जाये तो इसी निस्संकोच साहस के साथ तुम इसे कार्यरूप में परिणत करने में भी सफल होगी।" कहकर अमरनाथजी चुप हो गए।

कमला चुप थी। अमरनाथजी के हृदय को पढ़ना कमला जानती थी। वह स्पष्ट रूप से समझ गई कि अमरनाथजी के इन शब्दों में लेश-मात्र भी व्यंग्य की पुट नहीं थी। वह जो कुछ कह रहे थे अपनी अन्तरात्मा से कह रहे थे और स्पष्टभाव से कह रहे थे। कमला मन से अमरनाथजी को चाहती थी, आदर करती थी, परन्तु उनकी विचारधारा में एक गम्भीर गाँठ पड़ती जा रही थी। अमरनाथजी का अत्यधिक झुकाव कमला की ओर था; परन्तु नारी-जीवन का इतना चंचल और स्वतंत्र रूप वह अपनी गृहस्थी के लिए स्वीकार करने से डरते थे। प्रेम का रूप बदल रहा था, भक्ति और श्रद्धा का रूप बदल रहा था, साथ-साथ व्यवहार की प्रणाली भी धीरे-धीरे बदलती जा रही थी। सरल जीवन गम्भीर होते जा रहे थे। राजनीतिक मतभेद जीवन में मतभेद पैदा करता जा रहा था।

"क्या आप लोग खाना खा चुके ?" अचानक बातों की दिशा बदल कर कमला ने कहा। उसने अपने 'होम' वाले विषय पर औरबातें चलाना उचित नहीं समझा।

"अभी नहीं खाया" संक्षेप में अमरनाथजी ने उत्तर दिया और फिर एक दम कमला के 'होम' वाले विषय को ही ले दौड़े, "अच्छा तो फिर कमला देवी तुम्हारे 'होम' में सब खाना एक साथ खाते हैं और एक ही प्रकार का।"

'जी हाँ।" कमला ने गर्व के साथ कहा।

"बहुत सुन्दर ! बहुत सुन्दर ! यह तो तुमने कमला कमाल कर दिया। बहुत

सुन्दर व्यवस्था बनाई है ? इस व्यवस्था का सब कुछ सुन्दर है कमलादेवी ! परन्तु मुझे खेद केवल इतना ही है कि इस समस्त व्यवस्था में अपना कहने के लिए कुछ नहीं है, ये व्यवस्थाएँ अपने-अपने देश के अनुकूल होती हैं। वे स्वयँ बन जाती हैं जब समय आता है, परन्तु दूसरों की नकल करने से कभी लाभ नहीं होता।" कहकर एक गम्भीर दृष्टि से अमरनाथजी ने कमला के मुख पर देखा।

"होता है अमरनाथजी, होता है। आप भूल करते हैं इस विषय में। मैं ऐसे अजीब दृष्टान्त आपको दे सकी हूँ जहाँ नकल करने वाले मूल तैयार करने वालों से न जाने कितने आगे निकल गए। अच्छी व्यवस्था जहाँ भी मिले अपना लेनी चाहिए। आज भारत में कितना भेद-भाव पैदा हो रहा है। वर्तमान कांग्रेस-सरकार जिस प्रकार इन भेद-भावों को मिटाना चाहती है वह उन्हें मिटाने में असमर्थ सिद्ध होगी। मैं आपको लिखकर दे सकती हूँ कि वह सफल नहीं होगी, बल्कि और बढ़ने की संभावना है। आज इस अव्यवस्थित भारत को व्यवस्थित बनाने के लिए सोवियत रूस के सिद्धांतों को अपनाना होगा। हमें क्रांतिकारी मार्गों पर चलना होगा। भारत से अंगरेजी सरकार का हट जाना मैं कोई क्रांति नहीं मानती। यहाँ की शासन-व्यवस्था पहले की अपेक्षा आज और अधिक खराब हो चुकी है।" कमला अपनी झोंक में आकर कहती जा रही थी।

अब शान्ता को भी जबान खोलनी पड़ी और वह मुस्कुराते हुए कमला के मुँह पर देखकर बोली, "क्यों बहन ! एक इतनी बड़ी राज्यसत्ता समाप्त हो गई और तुम्हारे निकट यह कोई क्रांति ही नहीं हुई ?"

"हाँ नहीं हुई बहन शान्ता ! समाज का ढाँचा ज्यों-का-त्यों खड़ा है। उसके भेद-भाव ज्यों-के-त्यों खड़े हैं। मजदूर उसी तरह कुचले जा रहे हैं। सरमायेदार उसी प्रकार ऐश कर रहे हैं और बिला काम किए शराबें पीते हैं। यह सब क्यों ? मैं कहती हूँ कि किसी भी व्यक्ति को बिला काम किए खाना खाने का क्या अधिकार है ? सुबह से शाम तक गद्दों पर कमर घिसने वालों को हलवा-पूरी और सुबह से शाम तक झल्ली ढोने वालों को सूखी रोटी भी नहीं—यह सब क्या व्यवस्था है, कैसा स्वराज्य है ? यदि इसी का नाम स्वराज्य है तो ऐसे स्वराज्य से कोई लाभ नहीं, व्यर्थ है यह स्वराज्य। मैं इसके विरुद्ध आन्दोलन करूँगी, क्रांति की चिंगारी भारत के कोने-कोने में जलाऊँगी और कहूँगी कि यह स्वराज्य धोखा है, मजदूरों का शत्रु है, सरमायेदारों का साथी है; इसे हटाना है और भारत के उद्धार के लिए भारत में कम्यूनिज्म लाना है। बिला कम्यूनिज्म लाये भारत का उद्धार नहीं होगा, नहीं होगा।"

इतना कहकर कमला खड़ी हो गई और खड़ी होकर बोली, "मैं यहाँ आई

थी कि शायद चाय मिल जायेगी शान्ता जीजी के यहाँ, परन्तु यहाँ व्यर्थ की बहस छिड़ गई और किसी ने खाने-पीने की बात भी नहीं पूछी। आज सुबह से मैंने कुछ नहीं खाया है। ऐसे ही झमेले में फँसी रही।"

"बैठो न बहन ! चाय पीकर जाना होगा। मैं तो वास्तव में तुम लोगों की बातें सुनने में ऐसी फँस गई कि चाय इत्यादि के लिए पूछना भूल ही गई।" शान्ता ने कमला को बिठलाते हुए कहा।

"परन्तु मुझे अब देर हो रही है और चाय बनने में देर लगेगी।" कमला यह कह ही रही थी कि सामने से पहाड़ी नौकर चाय की ट्रे लाता हुआ दिखलाई दिया। उसके पीछे छोटी शान्ता भी थी।

"लो जीजी, चाय पीओ ! मैं आपके लिए चाय बनवाकर लाई हूँ।" छोटी शान्ता ने कमला से कहा। सब देखते ही रह गए और बड़ी शान्ता ने छोटी शान्ता को उठाकर उसका मुँह चूम लिया।

सबने चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। चाय पीते-पीते अचानक अमरनाथजी कह उठे, "तो कमलादेवी ! आपकी वह हड़ताल वाली स्कीम तो फेल हो गई।"

"परन्तु मैं उसे फेल नहीं मानती। इस प्रकार के प्रयत्नों से मजदूरों में हड़ताल करने की प्रवृत्ति जागृत होती है। आज इन पूँजीपतियों को सरकारी शक्ति प्राप्त है और ये मजदूरों पर मनमाने अत्याचार कर सकते हैं, परन्तु संसार की इस प्रगति में अत्याचार पछड़ कर ही रहेगा। मैं कहती हूँ अमरनाथजी, कि कम्यूनिज्म आकर रहेगा। संसार की कोई शक्ति उसे नहीं रोक सकती। अमेरिका का एटमबम उसे नहीं रोक सकता। राज्यसत्ता उस वर्ग के प्रतिनिधि सँभालेंगे जो वर्ग देश में सबसे अधिक होगा। भारत किसान और मजदूरों का देश है। इसीलिए यहाँ की राज्यसत्ता इसी वर्ग के प्रतिनिधियों के हाथों में आनी चाहिए।" कमला ने कहा।

"यही तो मैं भी कहता हूँ कमलादेवी ! मेरे विचार से तुम यहीं पर भूल कर रही हो। तुम समझती हो कि वर्तमान राज्यसत्ता को सँभालने वाले किसानों के प्रतिनिधि नहीं है।" अमरनाथजी बोले।

अमरनाथजी के इन साधारण से शब्दों ने अग्नि पर घृत का कार्य किया और कमला आग-बगूला होकर बोली, "नौनसेंस, ईडियट, गधे कहीं के। ये सब बदमाश हैं, चोर हैं, धोखेबाज हैं। ये जनता को धोखा देते हैं। धनपतियों के हाथों की कठपुतलियाँ हैं। सेठों के हाथों के खिलौने हैं। उनके उपहास की सामग्री हैं। मैं इन्हें जनता का प्रतिनिधि नहीं मानती।" कहकर कमला चाय पर से खड़ी हो गई।

"नाराज न हो कमला बहन ! यह तो चाय पर होने वाला वाद-विवाद है, राजनीति के क्षेत्र का नहीं। यहाँ क्रोध व्यर्थ है और शान्ता की मेज पर क्रोध करना

तो बिलकुल ही व्यर्थ है क्योंकि मैं तो दोनों की बहस से कुछ ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया करती हूँ।" शान्ता बोली।

शान्ता की यह गम्भीर बात सुनकर कमला और अमरनाथजी दोनों बड़े जोर से खिलखिलाकर हँस पड़े और फिर तीनों ने प्रेमपूर्वक चाय पी।

"तो फिर विवाह की बात कब तक पक्की होगी ?" शान्ता ने चुटकी लेते हुए कहा।

कमला ने कनखियों से एक ओर को ताका, मानो वह इस प्रकार की बातों से भाग जाना चाहती थी, परन्तु शान्ता छोड़ने वाली कहाँ थी ? उसकी बातों का जवाब दिए बिना मुक्ति नहीं मिल सकती थी। कमला को कहना ही पड़ा, "शान्ता बहन ! विवाह एक झमेला है, जिसका जिक्र आप मेरे सामने न किया करें। वास्तव में यदि सच पूछो तो मुझे इससे घृणा है। मुझे जीवन में बहुत कुछ करना है, मेरी आकांक्षाएँ और इच्छाएँ बहुत प्रबल हैं, इसलिए मैं अपने उन्नति के मार्ग में रुकावट पैदा नहीं करना चाहती।"

"तो आपके विचार से शादी एक रुकावट है। मैं कहती हूँ कि यह आपकी भूल है। विवाह से एक साथी मिलता है। साथी पाकर किसी की शक्ति का ह्रास नहीं हो सकता, बल्कि वृद्धि ही होती है। तुम इस वृद्धि के मार्ग को रुकावट का मार्ग बतलाती हो कमला ! यह गलत है। यदि सभी इस प्रकार का विचार रखने लगें, तो यह सृष्टि समाप्त हो जाय।" शान्ता गम्भीरतापूर्वक बोली।

"परन्तु सृष्टि को चलाने के लिए विवाह की आवश्यकता नहीं। वह चल सकती है। जब चल सकती है तो फिर मैं पूछती हूँ कि बन्धन क्यों ? मैं बन्धन नहीं चाहती, मैं चाहती हूँ मुक्ति। मैं छुटकारा चाहती हूँ, फँसना नहीं चाहती। संसार का हर प्राणी स्वतन्त्र रहे, यह मेरी हार्दिक इच्छा है। मैं जीवन में अपने इसी सिद्धान्त को सफल बनाना चाहती हूँ।" कमला गर्व के साथ बोली।

"परन्तु तुम्हारे कम्यूनिज्म में तो हर प्रकार का बन्धन है। मानव की स्वतन्त्र प्रवृत्तियों के लिए तो लेशमात्र भी विकास का साधन वहाँ नहीं मिल सकता। मानव-जीवन एक यन्त्र बन कर रह जाता है। यहाँ तक कि आपका खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना और रहना-सहना भी एक यन्त्र की भांति सूई के नाके में को निकल कर चलता है। वहाँ आपकी स्वतन्त्र प्रवृत्ति को ठेस नहीं लगेगी क्या ?" शान्ता उसी गम्भीरता के साथ बोली।

कमला ने इस बात की ओर ध्यान नहीं देना चाहा और उसने अपने हाथ की कलाई पर बँधी हुई घड़ी पर देखा। घड़ी में चार बज गए थे

"अच्छा फिर !" कहकर कमला खड़ी हो गई। "मुझे पार्टी-मीटिंग में जाना

है। चाय के लिए छोटी शान्ता को धन्यवाद !"

शान्ता कमला को मकान से बाहर तक छोड़ने के लिए आई और अमरनाथजी वहीं पर न जाने किन विचारों में निमग्न बैठे रह गए।

१६

रमेश बाबू कुछ दिन के लिए मंसूरी चले गए। रशीदा ने भी साथ चलने के लिए आग्रह कम नहीं किया परन्तु रमेश बाबू ने कार्य-भार का बहाना कर्तव्य के रूप में इस प्रकार सामने लाकर उपस्थित किया कि रशीदा को चुप रह जाना पड़ा और अमरनाथजी का साथ-साथ यह कहना, "अरे भाई! यदि सभी लोग चले जाओगे तो बेचारे 'इन्सान' का क्या होगा?" यह रशीदा के मार्ग में बाधा बन कर आ गया। रशीदा और अमरनाथजी यहीं रहे, कार्यालय को सुचारु रूप से चलाने को।

अब रशीदा और अमरनाथजी दोनों ही नित्य साथ-साथ एक मेज पर बैठ कर चाय पीते थे। इधर-उधर की गप्पें भी लड़ती थीं, कुछ हँसी-दिल्लगी भी कभी-कभी हो जाती थी, हास्य के साथ-साथ व्यंग्य को भी जीवन में स्थान मिलता था, इन सब में खिंची हुई होती थीं कुछ हास्य की रेखाएँ, आकर्षण की, व्यंग्य की, मादकता की, प्रलोभन की, मधुरता की और अन्त में यदि यह कह दिया जाए कि पुरुषत्व और नारीत्व के समन्वय की तो कुछ अनुचित न होगा।

नारी स्वाभाविक रूप से पुरुष की ओर खिंचती है और पुरुष नारी की ओर। यह आकर्षण कोई ऐसी विशेष बात नहीं है कि हम यहाँ इसे समस्या बनाकर इसके झमेले में पड़ जाएँ। संध्या और प्रातःकाल दोनों का मिलकर घूमने जाना, कभी-कभी घूमते समय अमरनाथजी का रशीदा के हाथ को अपने हाथ में ले-लेना भी कुछ-कुछ प्रयोग में आने लगा—बस इससे अधिक कुछ नहीं; यह सब भावुकता का खिलवाड़ था जो दो जीवनों को खिला रहा था। आकर्षण की दोनों ओर कमी नहीं थी, परन्तु अमरनाथजी के अन्दर कभी-कभी एक ऐसी झिझक आ जाती थी कि उस दिन उनका तमाम समय न जाने किन-किन विचारों में चला जाता था और इस प्रकार कार्यालय को हानि भी होती थी।

कार्यालय के कार्य की व्यवस्था खराब हो चली। किसी-किसी दिन तो घूमने के लिए प्रातःकाल अमरनाथजी और रशीदा निकल जाते तो लौटने में ग्यारह बजा

देते और जब लौटकर आते तो देखते कि प्रेस के कर्मचारी दरवाजों पर पड़े ऊंघ रहे हैं। इस प्रकार प्रेस-व्यवस्था कुछ बिगड़ी और पत्र का प्रकाशन भी अनियमित हो गया, डाक लेट होने लगी।

पहली बार डाक लेट होते ही रमेश बाबू का पत्र आया। उसमें लिखा था, "अमर, रशीदा! पत्र देर से प्रकाशित होने का कारण केवल अव्यवस्था हो सकता है। क्या मेरी अनुपस्थिति में दोनों व्यवस्थित व्यक्ति अव्यवस्थित हो गए? मुझे ऐसी आशा नहीं थी। विस्तृत समाचार तुरन्त लिखो।

तुम दोनों का

रमेश।"

रमेश बाबू का पत्र पढ़कर दोनों ही बहुत लज्जित हुए। किसी प्रकार सोच कर रशीदा ने उत्तर दिया, "यदि आप बुरा न मानें तो रमेश भैया को लिख दिया जाए कि मशीन टूट गई थी, इसलिए पत्र देर से प्रकाशित हुआ। इस उत्तर को पाकर उनके हृदय का खेद कम हो जायगा और हम लोगों की अव्यवस्था वाली बात भी छुप जाएगी।" रशीदा बोली।

"नहीं रशीदा! नहीं! यह मुझसे नहीं हो सकेगा। मैं जानता हूँ कि तुम केवल रमेश बाबू को इस समय होने वाले खेद से बचाने के लिए यह सब झूठ लिखाना चाहती हो, परन्तु यह मेरी अकर्तव्यपरायणता का प्रायश्चित्त नहीं हुआ। मैं प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा रशीदा! मैंने अपना कर्तव्य नहीं निभाया।" एक पागल की भांति अमरनाथजी कह गए।

"यह आप क्या कह रहे हैं अमरनाथ बाबू! खुदा के लिए अपने शब्द वापस ले लीजिए। वरना मेरा दिल टूट जाएगा अमरनाथ बाबू! आप निर्दोष हैं, आपने कोई गलती नहीं की। प्रायश्चित्त उसके लिए आवश्यक है जिसने कोई गलती की हो। मैंने भी कोई गलती नहीं की। हम दोनों स्वतन्त्र हैं, हमें पूर्ण अधिकार है अपने भविष्य के विषय में निश्चय करने का। मैंने जो कुछ भी कहा या किया है अपनी विचार-शक्तियों का प्रयोग करके कहा और किया है। मैं यह नहीं कहती कि मैं एक भाव रहित रूखे स्वभाव की लड़की हूँ; मेरे अन्दर नारी में व्यापक रहने वाले सभी गुण और दोष वर्तमान हैं, परन्तु फिर भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकती कि मैंने अपने मस्तिष्क पर भी काफी जोर दिया है। परिणाम चाहे जो भी हो, उसकी मुझे चिंता नहीं।

मैं भाग्य पर भी विश्वास रखती हूँ अमरनाथ बाबू! भाग्य की फटी हुई चादर को युक्तियों और प्रयत्नों की सूई से नहीं सिया जा सकता। आप मेरा भाग्य नहीं बदल सकते और मैं आपका नहीं बदल सकती। यदि दो भाग्यों में यही लिखा है कि

एक-दूसरे से टकराओ और चकना-चूर हो जाओ तो वही होगा, और होकर रहेगा। मैं और आप उसे नहीं रोक सकते। इसलिए मैं कहती हूँ कि आप इस प्रकार प्रयत्न करने की भी कोशिश न करें।" रशीदा बोली।

अमरनाथ बाबू चुप-चाप बैठे यह सब सुनते रहे। उनका सिर चकरा रहा था। वह अपने को इस समय एक ऐसे दोषी के रूप में देख रहे थे कि जैसे किसी ने अपने विश्वासी मित्र के साथ घोर विश्वासघात किया हो। वह इसके लिए रमेश बाबू को आज क्या उत्तर दें कि उन्होंने उनके घर पर दिन दिहाड़े डाका क्यों मारा? जिस घर का रमेश बाबू उन्हें चौकीदार बनाकर गए थे उस घर का इस प्रकार मालिक बन बैठना विश्वासघात नहीं तो और क्या है? वह लज्जा से गड़े जा रहे थे और उसी प्रकार मौन एक चित्रित प्रतिमा के समान एक टक आकाश की ओर न जाने क्या देखते रहे?

प्रेस की छुट्टी हो गई। सब कर्ल्क, टाइपिस्ट, कम्पोजीटर्स, मैशीनमैन छुट्टी कर गए, परन्तु अमरनाथ बाबू उसी प्रकार बैठे रहे।

आज दोपहर बाद की चाय का समय रूखा ही चला गया। उधर रशीदा रमेश भैया के पत्र के डर के कारण सुबह से ही काम पर ऐसी जुटी कि उसे चाय के समय का भी ध्यान न रहा और दूसरी ओर अमरनाथ बाबू अपनी परेशानी में फँसे थे। उनका धर्म-संकट क्या था, इसे रशीदा न समझ पाई।

"लो चाय आ गई।" रशीदा ने सामने आते हुए कहा और कमरे की बत्ती जला दी। "ऐसे अंधकार में आप क्या कर रहे थे? क्या आपको बत्ती खोलने की भी फुर्सत नहीं मिली? आज मेरी भी यही दशा रही। तमाम दिन काम करते-करते थक गई, परन्तु हाँ इतना मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि मैंने दस दिन का कार्य आज एक ही दिन में समाप्त कर दिया। परन्तु अमरनाथ बाबू! ये कम्पोजीटर लोग भी खूब होते हैं। आज मैं आपको अपने अनुभव की बात बतलाऊँगी।" रशीदा बोली।

अमरनाथ बाबू कुछ सचेत से होकर बैठ गए। यह बात अच्छी ही हुई कि रशीदा ने कुछ प्रश्न करने के पश्चात् एक ऐसा विषय छेड़ दिया जिसमें उन्हें बोलना ही न पड़े और उनका काम केवल रशीदा की बात को सुनने मात्र से चल जाए। रशीदा ने फिर कहा, "प्रेस चलाने के लिए मैनेजर, कम्पोजीटर, मेशीनमैन और काम के समन्वय की आवश्यकता है। इन सबके मेल से प्रेस चलता है, परन्तु यह समन्वय करना एक कठिन कार्य है। जहाँ समन्वय व्यवस्थित रूप से हो जाता है वहाँ कार्य सफल हो जाता है और जहाँ इनमें से एक में भी ढिलाई हुई तो काम में हानि होने लगती है। भारत के प्रायः सभी व्यवस्थापकों को कुछ-न-कुछ अभावों का सामना करना होता है। जो इन अभावों की जितनी सफलता से पूर्ति करता है वह काम में उतना

सफल होता है।" इतना कह कर रशीदा चुप हो गई और अमरनाथजी भी चुप थे।

रशीदा का आज का रूप पिछले दिन के रूप से सर्वथा भिन्न था। रशीदा का यह स्वरूप पहले कभी अमरनाथजी ने नहीं देखा था, परन्तु फिर भी उन्होंने उस पर कोई आश्चर्य प्रकट नहीं किया।

बड़े प्रेम से दोनों ने चाय पी, प्रातःकाल घूमने चलने का रशीदा का प्रस्ताव अमरनाथजी को फिर मानना पड़ा, सुवह, शाम, सुवह, शाम—फिर प्रेम का चक्र पहले जैसी गति के साथ घूमने लगा। खेल, तमाशे, सिनेमा, इण्डियागेट, महरौली, कुतुब इत्यादि स्थानों की यात्रा होने लगी और दोनों व्यक्तियों में नई ताजगी, नई तरावट आ गई।

अब की वार जो तरावट आई उसमें एक बड़ा अन्तर यह आ गया कि पहली बार उन्होंने अपने कर्तव्य को भुला दिया था, परन्तु इस बार वह उन्होंने याद रखा और प्रेस तथा कार्यालय के संचालन में किसी प्रकार की भी बाधा नहीं आने दी; बल्कि प्रेस ने इतनी उन्नति की कि अमरनाथजी ने प्रेस के लिए प्लाट खरीद लिया और प्रेस की अपनी ही विल्डिग बनवाने की स्कीम पास करके इंजिनियर्स के पास नक्शे के लिए कागजात पहुँचा दिए। कार्य फिर बड़े वेग के साथ चल पड़ा।

रमेश वावू का दूसरा पत्र आया। उसमें लिखा था, "अमर और रशीदा !

अब पत्र का कार्य सुचारू रूप से चल रहा मालूम देता है क्योंकि पत्र समय पर आ जाता है और उसकी छपाई इत्यादि भी दोष रहित है।

मैं तुम दोनों के तथा तुम्हारे कार्यकर्त्ताओं के इस सहयोगपूर्ण कार्य के लिए तुम्हें वधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप दोनों का यह सफल कार्य कभी असफल न होने पाएगा। इसके लिए जीवन में सदा सचेत रहना।

तुम्हारा अपना
रमेश।"

पत्र की भाषा वहुत स्पष्ट तथा सरल थी, जिसे पढ़ कर अमरनाथजी को महान् दुःख हुआ और रशीदा ने उसे अपनी प्रशंसा के रूप में समझा। भाई ने रशीदा को पहचान लिया, रशीदा यही समझी परन्तु अमरनाथजी ने सोचा कि रमेश बाबू उन पर व्यंग्य कस कर जूते लगा रहे हैं। वह एक वार तिलमिला उठे और कह उठे, "नहीं, नहीं, नहीं, मैं विश्वासघात नहीं करूँगा, नहीं करूँगा," और फिर मौन होकर एक ओर को मुँह कर लिया।

रशीदा कुछ भी न समझ सकी और वह सब काम छोड़कर अमरनाथ बाबू के मुँह को ताकने लगी। फिर थोड़ी देर पश्चात् बोली, "क्या आपको कभी-कभी कोई किसी प्रकार का फिट भी आ जाता है अमरनाथजी ?"

"नहीं, कुछ नहीं !" अमरनाथजी ने जवाब दिया और फिर मेज पर कोहनी टेक कर हथेलियों पर मस्तक को टिका लिया। रशीदा ने आश्चर्य से देखा कि अमरनाथ बाबू की आँखों से टपा-टप आँसुओं की झड़ी बँधी हुई थी।

रशीदा सन्न-सी रह गई और न समझ पाई कि उसका कारण क्या है ? अमरनाथजी इस प्रकार क्यों रो रहे हैं। उसके मुख की हास्य-रेखाएँ चिंता में विलीन हो गईं। फूल से चमकते हुए मुख-चन्द्र पर ग्रह-नक्षत्रों के फेर से ग्रहण की दशा आ गई। रशीदा का हृदय भारी हो गया अमरनाथजी के इस प्रकार दुःखी होने से। रशीदा से रहा नहीं गया। वह भी रोनी सी सूरत बनाकर अमरनाथ बाबू के सामने हाथ जोड़ कर बोली, "क्या मुझसे कोई ऐसा अपराध बन पड़ा है कि जिसके आघात से आपकी यह दशा हो गई ?" रशीदा के इस कथन में कितना सत्य था, यह अमरनाथजी से छिपा न था।

अमरनाथ बाबू से अब और उसी प्रकार मौन मुद्रा में बैठा न रहा गया। उन्होंने तुरन्त आगे बढ़ कर रशीदा के दोनों जुड़े हुए हाथों को अपने हाथों में लेकर कहा, "यह क्या कह रही हो रशीदा ? तुम अपना यह पागलपन नहीं छोड़ोगी। मैं तो और ही कुछ परेशानियों में फँसा हुआ इस प्रकार बैठा था। मैं सोच रहा था कि कमेटी ने अभी तक नक्शा पास करके नहीं दिया और रमेश बाबू के लौटने के दिन समीप आ गए। मैं सोचता था कि यदि वह रुकावट मार्ग में न आती तो रमेश बाबू के लौटने तक मैं प्रेस और 'इन्सान' कार्यालय को इसके अपने मकान में ले जाता। अपने लगाए पौधे को लौट कर जब रमेश बाबू इस रूप में पाते, तो उन्हें कितनी प्रसन्नता होती ?"

"आप बात बदल रहे हैं अमरनाथ बाबू ! मुझे आप इतना नादान न समझें कि मैं आपको समझती ही नहीं हूँ। एक नारी जिससे प्रेम करती है उसे पूरे तौर पर नाप-तौल कर देख लेती है और यदि कोई स्त्री अपने इस गुण में अपूर्ण है तो समझ लो कि उस स्त्री के नारीत्व का दोष है। मेरा दावा है कि मैं आपको जितना आप अपने आप को समझते हैं, उससे कई गुना अधिक समझती हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि जीवन के किस पहलू का आपको ज्ञान है और किस पहलू से आप अनभिज्ञ हैं। मैं जानती हूँ कि यदि जीवन में मैं और आप साथ-साथ रहें तो हमें अपनी गृहस्थी को चलाने के लिए कौन-सा मार्ग अपनाना होगा। आप यह सब कुछ नहीं जानते। जीवन केवल कोरी भावना मात्र नहीं है। इसलिए इसके यात्रियों को भी भावनाओं के जंजाल से मुक्ति पाकर जीवन की सत्य समस्याओं पर विचार करना चाहिए।" रशीदा दृढ़ता-पूर्वक कह रही थी और अमरनाथजी चुपचाप बैठे सुन रहे थे। रशीदा का जो निखरा रूप अमरनाथजी ने रमेश बाबू के जाने के पश्चात् देखा वह उनके लिए शिक्षाप्रद और आश्चर्यजनक था।

रशीदा फिर कहने लगी, "मैंने व्यक्ति दो प्रकार के देखे हैं और पढ़े हैं। गृहस्थ, समाज, सभा सब का एक सरदार होता है। जो उस सरदार के पीछे अपनी पूर्ण शक्ति के साथ चलेगा वही जीवन में सफल होगा। अब रही सरदार की बात, सरदार स्त्री भी हो सकती है और पुरुष भी। कुछ पुरुष ऐसे होते हैं कि यदि उनकी स्त्रियाँ न सँभालें तो वे बराबर जीवन में डुबकियाँ खाएँ। यही दशा कुछ स्त्रियों की भी होती है इसलिए कुछ परिवार स्त्रियों के चलाए चलते हैं और कुछ पुरुषों के चलाए कुछ दोनों के चलाए चलते है, परन्तु आपका परिवार सर्वदा वह होगा जो स्त्री के चलाए चलेगा, क्योंकि आपमें किसी परिवार की बागडोर सँभालने की योग्यता और क्षमता नहीं है। एक फूल स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता, उसकी रक्षा के लिए मालिन की आवश्यकता होती है। वही आवश्यकता तुम्हें भी जीवन में चाहिए। यदि आपको यह आवश्यकता पूर्ण करने वाली स्त्री जीवन में न मिली तो आपका जीवन श्राप हो जाएगा, यह मैं लिखकर दे सकती हूँ।"

अमरनाथजी सोच रहे थे कि, 'वाह ! कैसा क्रिटिक का मस्तिष्क पाया है इस लड़की ने, वाह !' प्रशंसा के लिए उनका हृदय गद्-गद् होता जा रहा था। मन 'रमेश बाबू के प्रति उनका क्या कर्तव्य है' इस उलझन में उलझा था। कभी-कभी रह-रह कर अमरनाथजी को कमला की भी याद आ जाती थी, परन्तु वह बहुत कम, क्योंकि रशीदा का आकर्षण उनके सामने एक बड़ी दीवार बनकर आ गया था। इसके ऊपर से होकर कमला को झाँकना इनके लिए कठिन हो गया था। अमरनाथ बाबू इस समय रशीदा के ऊपर दिल से मोहित थे। उनके रास्ते में था केवल उनका रमेश बाबू के प्रति कर्तव्य। उनका मन कहता था कि उन्होंने विश्वासघात किया। यह विचार कर उनका तमाम बदन सिहर उठता था। इस विचार ने अमरनाथ बाबू का जीवन एक समस्या बना दिया। उन्हें हर समय सोते-जागते खाते-पीते यही रोग-सा लग गया।

रशीदा आनन्दपूर्वक रहती थी और जीवन की एक सफल अभिनेत्री की भाँति अपने पार्ट को अदा कर रही थी। वह पूर्ण रूप से सुखी थी। अमरनाथजी के पुरुषत्व पर यह उसके जीवन की प्रथम विजय थी जो जीवन के अन्त तक उसे घर की कर्णधार बनाए रखेगी। रशीदा को पूर्ण विश्वास था अपने ऊपर कि यदि उसे अपने लिए जीवन में कोई ऐसा साथी मिल जाए, जो योग्य हो और विचारशील भी, व्यवस्था चाहे उसे भले ही न आती हो, उसे वह स्वयं सँभाल लेगी।

"और मैं आपको बतलाऊँ," रशीदा बोली, "मैं कमला बहन को भी जानती हूँ—शायद यह आप नहीं जानते अमरनाथजी ! कमला का नाम मेरे मुँह से सुनकर आपको आश्चर्य अवश्य हुआ होगा कि यह मैंने कहाँ से खोज निकाला, परन्तु यह आप जानतें ही हैं, कोई सौदा करते समय छोटी-छोटी वस्तुओं की भी जाँच की जाती

है और फिर यहाँ तो जीवन का सौदा है। यदि इस सौदे को अनाड़ी के हाथों में सौंप दिया जाए तो जीवन भर पछताना होता है।" कहकर रशीदा जरा भारी-सा मुँह करके एक ओर को हो गई।

अमरनाथजी को लगा कि वह आज रूठ गई। कुछ मनाने के स्वर में थोड़ी देर बाद अमरनाथजी बोले, "अच्छा अब व्याख्यान तो सुन लिया, कहीं घूमने नहीं चलोगी क्या ?"

रशीदा का हृदय कह उठा कि उसने विजय पाई और विजय के ही स्वर में बोली, "क्यों नहीं चलेंगे घूमने ? चलिए ! आज बारिश होगी, जो आपको घूमने चलने का ध्यान आया। चार महीने हो गए, न खाने को कहना, न नहाने को। मैं कहती हूँ, समय से पहले कुछ नहीं होगा और आप कहते हैं कि एक दिन में पत्र के लिए लालकिला बनवा कर खड़ा कर देना चाहिए। किसकी शुभ कामनाएँ नहीं हैं इस शुभ कार्य के साथ, परन्तु समय आने पर ही तो सब कुछ हो सकेगा, समय से पूर्व नहीं।" दोनों इसके पश्चात् घूमने के लिए निकल गए और आज एक सिनेमा देखने का भी प्रोग्राम बना।

२०

अमरनाथजी के जीवन में जो स्थान कमला ने बनाया था वह रशीदा के बीच में आ जाने से फीका पड़ गया। कमला का अधिकार धीरे-धीरे कम होता गया और रशीदा का बढ़ता गया।

कमला इस समय शहर की प्रधान कम्यूनिस्ट कार्यकर्त्ता थी और उसने 'होम' का एक सुन्दर मॉडल तैयार किया था।

कमला का 'होम' बड़े व्यवस्थित ढंग से चल रहा था। कमला को इस 'होम' से आय भी थी और वह सब आय पार्टी के ही हित में लगा रही थी। इस 'होम' के पास इस समय दस वैतनिक व्यक्ति थे जो पार्टी के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे।

इस होम को इस दशा पर लाने में आजाद का भी हाथ था।

कमला ने आजाद के रूप में वह शक्ति पाई जिसने उसके आन्दोलन की व्यवस्था को सँभाल लिया। व्यवस्था का ढाँचा दिन-प्रतिदिन अच्छा होता चला गया और साथ-साथ पार्टी की शक्ति भी बढ़ने लगी।

चीन में कम्यूनिस्टों की विजय का भारत की कम्यूनिस्ट पार्टियों पर प्रभाव पड़ा ? उनकी शक्तियाँ बढ़ीं और दूसरी शक्तियों की दृष्टि में यह खटकने लगी।

कमला ने आजाद के रूप में एक जबरदस्त शक्ति प्राप्त की और वह जीवन में और भी बड़ा कार्य करने के लिए अग्रसर हुई। वह जा रही थी एक राज्यसत्ता को छिन्न-भिन्न करके अपनी सत्ता स्थापित करने। उसके हृदय का वेग अपार था। कमला में कार्य करने की कितनी क्षमता थी यह केवल आजाद ही जानता था। अमरनाथजी इस शक्ति का मूल्यांकन न कर सके।

आजाद जब से दिल्ली आया, पार्टी के ऐसे कार्य में फँसा कि कभी उसे उस 'होम' से बाहर निकलने का अवकाश ही न मिला। उसका दिल-बहलावा केवल यही था कि जब संध्या को कमला पार्टी के फील्डवर्क से लौटकर आती थी तो वे दोनों साथ-साथ बैठकर चाय पिया करते थे। दोनों एक-दूसरे को अपनी-अपनी प्रोग्रेस सुनाते थे। एक कहता था कि मैंने आज रूस के इतने प्लान दिल्ली प्रान्त के अमुक-अमुक भाग में बँटवाए और दूसरी कहती थी कि मैंने आज अमुक-अमुक ट्रेड यूनियनों में अमुक-अमुक व्यक्ति छाँटे हैं जो पार्टी के मेम्बर होना चाहते हैं।

"चलिए दोनों की प्रोगेस खूब रही। अब हमारी पार्टी की दशा बहुत अच्छी है। हमारे पास मेम्बर कम हैं, परन्तु जितने हैं सब गृहत्यागी हैं, उनका घर गृहस्थों से कोई सम्बन्ध नहीं। उनके जीवन का लक्ष्य बन चुका है कम्यूनिज्म का प्रचार करना। हमारी पार्टी अब दिन-प्रति-दिन शक्तिशाली होती जा रही है।" कमला ने विश्वास के साथ कहा।

"यह सच है कमला ! क्योंकि उत्थान का मूल मन्त्र त्याग है। जब तक कोई त्याग नहीं जानता, उन्नति नहीं कर सकता। कांग्रेस ने त्याग किया, राज्यसत्ता प्राप्त की। परन्तु राज्यसत्ता को पाकर त्याग को भुला दिया और एक ऐसे माया-जाल के चक्कर में पड़ी कि यह पथभ्रष्ट हो गई। यही इनकी अवनति का प्रधान कारण है।"

आजाद ने कमला की हाँ में हाँ मिला दी और दोनों के विचार एक होगए। दोनों के विचार स्वतन्त्र थे और साथ-साथ चल रहे थे। जीवन ज्यों-का-त्यों सुचारु रूप से चल रहा। इतना अवश्य था कि व्यर्थ का रहस्य कहलाने वाला विवाह-जाल नहीं था। किसी की स्वतन्त्रता में कोई बाधक नहीं था।

कमला के इस 'होम' का पता धीरे-धीरे दिल्ली सी० आई० डी० को भी लग गया और एक दिन संध्या-समय जब आजाद और कमला चाय पी रहे थे तो पुलिस ने आकर छापा मारा। एक कॉमरेड ने बड़ी चतुराई से काम लिया और उसने आगे बढ़ कर कमला तथा आजाद को पीछे के मार्ग से निकाल दिया। एक कॉमरेड ने स्वयं अपने को आजाद बतलाकर गिरफ्तार करा दिया और पुलिस इनके कागजातों की

तलाशी लेकर तथा दो तीन अन्य कॉमरेडों को हिरासत में लेकर वहाँ से विदा हुई।

कमला और आजाद धीरे से गली पार कर के चाँदनीचौक वाजार में निकल गए। आजाद आज 'होम' से बाहर निकला तो उसे ऐसा लगा कि इस दुनिया में रहने वाला तू भी एक प्राणी है।

"बाहर का जीवन भी क्या खूब जीवन है ?" आजाद बोला।

"जी हाँ" कमला ने मुँह बनाकर कहा, "जब लम्बी यात्रा करनी पड़ती है तब पता चलता है बाहर के जीवन का। घर में बैठे-बैठे ठाठ के साथ जो काम हो जाता है वह बाहर की भागदौड़ में नहीं हो पाता। यहाँ तक कि कभी-कभी तो थकान के कारण बदन इतना चूर-चूर हो जाता है कि मन बाहर की ड्यूटी देते-देते ऊब उठता है। अब और अधिक बाहर की ड्यूटी देने के लिए मन नहीं चाहता।"

"तो हम लोग ड्यूटी बदल लेंगे कमला ! तुम चिन्ता न करो। मैं, तुम देखोगी कि बाहर की ड्यूटी भी उसी निपुणता से दूँगा जिस निपुणता से आफिस की दे रहा था। अब आफिस की बागडोर तुम सँभालो।"

आज से दोनों की कार्य-धाराएँ बदल गईं और कमला ने आफिस-संचालन अपने हाथों में ले लिया। दोनों ही अपना-अपना कार्य करने में कुशल निकले। बाहर के कार्यकर्त्ताओं ने आजाद को अपनाया और कार्य करने वाली व्यवस्थापक मैशीन को कमला ने।

काम में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। भारत-सरकार ने कम्यूनिस्ट पार्टी को कानून विरुद्ध तो नहीं घोषित किया, परन्तु उन व्यक्तियों पर क्रोध प्रकट किए बिना न रही जो उपद्रवों की जड़ थे ? सरकार ने आन्दोलनों को दबाने का यही उपाय सोचा और कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ताओं पर कड़ी नजर रख कर उपद्रव-कारियों को जेल में सुरक्षित रख दिया।

कम्यूनिस्टों को हैदराबाद की कुव्यवस्था से भी अपनी शक्ति बढ़ाने में सहायता मिली और दूसरी ओर बंगाल में चीन का प्रभाव पड़े बिना न रह सका।

कमला का 'होम' पूर्ण रूप से सरकार के हाथों में चला गया और इस होम के समाप्त हो जाने पर कमला के कार्य को बहुत बड़ा धक्का लगा। उसके पास आय का जो साधन था, जिसके बल पर पार्टी के मेम्बर बढ़ते चले जा रहे थे, वह उसके पास से जाता रहा। कॉमरेडों की दशा बिगड़ने लगी और उनके जूते काफी हाउस में पालिश विहीन दिखलाई देने लगे। मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं और दशा खराब हो चली।

कमला और आजाद दोनों फटेहाल हो गए। कभी-कभी तो दो-दो दिन फाके से हो जाते थे, परन्तु कभी किसी के पास दीन शब्द नहीं बोले। ऐसी दशा में एक

दिन कमला शान्ता के मकान पर दो दिन की भूखी चाय पीकर आई थी।

आज अचानक बैठे-बैठे आजाद कहने लगा, "कमला हम प्रोपोगण्डे का ही कार्य क्यों न करें ? अपनी एक न्यूज-एजेंसी खोल देते हैं। व्यवस्था हमारी बनी-बनाई है। भारत के हर शहर में हमारे कॉमरेड हैं। मैं आशा करता हूँ कि हम बहुत शीघ्र सफल हो जाएँगे।"

कार्य कमला की समझ में आ गया और दोनों ही इस कार्य में जुट गए। दो महीने के अन्दर-अन्दर कमला और आजाद ने इस विज्ञापन-एजेंसी को एक बड़ा रूप दे दिया और इनकी आय दिन-प्रति-दिन फिर बढ़ने लगी।

कॉमरेडों में भी जरा ताजगी आई। सबको काम करने को मिला और चार पैसे भी मिले। काफी-हाउस में भी फिर चहल-पहल दिखलाई दी और उनके पुराने जूते भी पालिश की रगड़ से चमक उठे। जो रेस्टोरेण्ट पिछले कुछ दिनों से कॉमरेडों की कम चहल-पहल से सूने हो गए थे वहाँ फिर से रौनक आ गई। कांग्रेस-सरकार को खुदगर्जों और सरमायेदारों की सरकार कहकर आलोचनाएँ होने लगीं।

होटल के जिस केबिन की ओर भी दृष्टि डालो ये ही बातें होती थीं। कोरे-कोरे कटु शब्दों में आलोचना।

इस एडवरटाइजिंग एजेंसी की कार्यकर्त्ता सब लड़कियाँ थीं, जो फील्डवर्क करती थीं, और ऑफिस का सब कार्य लड़कों के हाथों में था। जिस-जिस विज्ञापनदाता के पास भी वे कॉमरेड पहुँच गईं, उससे आर्डर मिल गया। इस प्रकार एजेंसी का कार्य सुचारु रूप से चल निकला और कमला तथा आजाद दोनों की ही परेशानियाँ कुछ दूर हुईं, परन्तु उनके मार्ग में एक और कठिन समस्या इस समय यह आ गई थी कि कमला और आजाद दोनों के ही वारंट निकले थे। पिछले दिनों एक कॉमरेड ने अपना नाम आजाद बतलाकर कुछ दिन के लिए आजाद का वारंट स्थगित होने में सहायता अवश्य की, किन्तु बाद में वह रहस्य खुल गया और वारंट फिर जारी रहा। कमला तथा आजाद दोनों को ही अण्डरग्राउण्ड रहना पड़ रहा था। इसीलिए आजकल साथ-साथ रहने का अधिक अवकाश न मिलता था।

"सरकार की वर्तमान नीति से हमारे काम में काफी बाधा पड़ गई।" कमला ने कहा।

"हाँ, और एक विशेष कठिनाई जो इस समय हमारे सामने है वह यह है कि देश की जनता हमारे साथ नहीं है। जितने अच्छे कार्यकर्त्ता हमारे पास हैं यदि उतना ही अच्छा हमारा प्रभाव जनता में भी होता तो सरकार की इस नीति का प्रभाव हमारे आन्दोलन पर उल्टा पड़ता।" आज़ाद कमला के मत का प्रतिपादन करते हुए बोला।

"यह सब प्रभाव केवल इस बात का है कि सन् ४२ के आन्दोलन में कम्यूनिस्ट पार्टी ने देश के स्वतन्त्रता-आन्दोलन का विरोध किया था। भारत की जनता नहीं जानती कि यह स्वराज्य जो उन्हें मिल गया है, ब्रिटिश राज्य से भी बदतर साबित होगा। उस समय हमें अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने का अधिकार था और यदि अधिकार न होते हुए भी आन्दोलन किया जाता था तो जनता उसका साथ देती थी। उस समय आन्दोलन करने वाले देश भक्त कहलाते थे और आज वे देशद्रोही कहलाते हैं। अपनी सरकार जो है आज। इसे पूर्ण अधिकार है कि यह गरीबों के गले काट-काट कर अमीरों के खजाने भरे। इसे पूर्ण अधिकार है कि यह सूखे मजदूरों के शरीर में से रक्त निकलवा-निकलवा कर मोटी-मोटी तोंद वालों के शरीरों में इंजेक्शन द्वारा और रक्त भर दे। एक ओर मजदूर सूख कर हड्डी और पंजर मात्र रह जाएँ और दूसरी ओर पूंजीपतियों के शरीर रक्त और चर्बी के आधिक्य से फटने को तैयार हो जाएँ।" कमला बोली।

"यह नहीं हो सकता, नहीं होगा।" क्रोध में भरकर आजाद ने चाय पीनी छोड़ दी। "गरीब मजदूरों का रक्त पूंजीपति नहीं पी सकेंगे, नहीं पी सकेंगे। हम हर मजदूर के रक्त में वह विष पैदा कर देंगे कि एक-एक मजदूर के बदन की एक-एक बूँद अनेकों पूँजीपतियों को यमलोक पहुँचाने में सफल होगी। पूँजी को हम मजदूरी से गौण बना देंगे। प्रधानता हर कार्य में मजदूरी की होगी। उस दशा में किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार न होगा कि वह दूसरों की कमाई में से मलाई उतार कर खा जाए और कमाने वाले के पल्ले केवल मक्खन निकला दूध ही पड़े। हम इस व्यवस्था को मिटाकर छोड़ेंगे कमला! अब समय निकट आ गया है कि जब जनता भी समझने लगेगी कि कांग्रेस ने उनसे कितने-कितने वायदे किये थे और वह कहाँ तक उन्हें पूरा करने में सफल हो रही है।" आजाद बोला।

"क्यों नहीं समझेगी? मैं तो कहती हूँ समझने लगी है। फिर हमारे कार्य का क्षेत्र व्यापारी वर्ग नहीं है! ये लोग बेपैंदी के लोटे होते हैं। 'जैसा देश, वैसा वेश' इन लोगों का सिद्धान्त रहता है। हमारा प्रभाव विद्यार्थियों पर धीरे-धीरे तेजी से बढ़ता जा रहा है। देश के मजदूरों पर हमारा एक छत्र राज्य है। मजदूर जब हमारे साथ हैं तो देश-भर की मिलें हमारे हाथों में हैं, रेलें हमारे हाथों में है। हम जिस दिन चाहें उन्हें जाम कर सकते हैं।" कमला सगर्व बोली।

"यह ठीक है कमला देवी! परन्तु मैं अभी अपना अधिकार उतना पूर्ण नहीं मानता। ये गिरगिट की चाल चलने वाली सोशलिस्ट पार्टी, एक अजीब चूँ-चूँ का मुरब्बा बनकर भारत की राजनीति में आ फँसी है। घड़ी भर में यह सरकार का साथ देने लगती है और घड़ी भर में उससे पृथक् हो जाती है। ये लोग अजीब

दोगले किस्म के आदमी हैं। मुझे इन लोगों का कहना-सुनना कुछ समझ में नहीं आता। परन्तु फिर भी इन लोगों ने अपना खटराग अच्छा बना लिया है। सरकार का पूर्ण रूप से विरोध न करने के कारण इनके अस्तित्व को कहीं ठेस नहीं लगती और सरकार को भी यह एक ऐसी पार्टी मिल गई है कि जिसके पास चाहे दो-चार लीडरों के अतिरिक्त और कुछ न हो, परन्तु फिर भी यह भारत की राजनीति में एक प्रधान पार्टी बन गई है और इसका अपना एक स्थान भी बन गया है।" आजाद बोला।

"अभी भारत का मजदूर अच्छी तरह ट्रेंड नहीं हुआ है। मजदूर अभी केवल नारों को समझता है, सिद्धान्त को नहीं। जब तक वह यह नहीं समझने लगेगा कि कम्यूनिज्म ही उसकी अपनी चीज है और इसके अतिरिक्त सब उसे भुलावे में डालने वाले मायाजाल है, उसे गुलाम बनाये रखने के चमकदार फन्दे हैं, उसका खून चूसने के लिए जोकें हैं, तब तक वह अपना निश्चित मार्ग निर्धारित नहीं कर सकेगा।" कमला बोली।

"तुम्हारा विचार ठीक हैं कमला देवी! परन्तु अब समय आ गया है कि मजदूर को यह समझना ही होगा, क्योंकि उसे और अधिक भुलावे में नहीं रखा जा सकता। यदि वह भुलावे में रहा तो नष्ट हो जायेगा। हम उसे नष्ट नहीं होने देंगे। जिसका जो अधिकार है वह उसे अवश्य प्राप्त होगा। यदि वह स्वयँ प्रयत्न न करेगा तो उसकी पीठ पर पड़ने वाली पूँजीपतियों की ठोकरें उससे प्रयत्न कराकर रहेंगी।" आजाद ने कहा।

"मैं आपकी राय से सहमत हूँ आजाद बाबू!" चाय पीती-पीती कमला उछल पड़ी, मानो आजाद ने कोई विशेष बात कह डाली। कमला को आजाद में इतना अपनापन अनुभव हुआ कि मानो कमला के ही मन की बात उसने चुराली। "कमला शान्ति से व्यवस्था नहीं चाहती, बल्कि अशान्ति से चाहती है।" कमला ने अपने छोटे-छोटे सुन्दर से नथनों को कई बार फुलाकर बड़े गर्व के साथ कहा, "मैं खण्डहर पर फिर एक विशाल भवन बनाना चाहती हूँ, जिसकी बुनियादें नई हों, जिसकी दीवारें नई हों और जिस पर छत भी नई डाली जाएगी। पुरानी छतें काम नहीं देंगी, पुरानी कड़ियों में घुन लग गया है, पुराना चूना और सीमेंट बेजान हो चुका है। कांग्रेस-सरकार ऊपरी टीपटाप के पश्चात् मकान पर कली करके यह कहना चाहती है कि यह मकान उसने नया तैयार किया है। यह उसकी भूल है। अब पुराने मकान नहीं रह सकते, पुरानी व्यवस्थाएँ नहीं चल सकतीं, पुरानी सभ्यता को नई सभ्यता के लिए स्थान छोड़ देना होगा। संसार नवीनता की ओर बढ़ रहा है। भारत कैसे पीछे रह सकता है? यहाँ के मजदूर भी हाड़ और चाम के बने हुए हैं, उन्हें भी अच्छा

खाना और पहनना बुरा नहीं लगता। वे क्यों नहीं होटलों में जाकर जिन्दगी का मजा लें ? तमाम दिन परिश्रम करके उन्हें क्यों यह अधिकार नहीं है कि वे जीवन को जीवन मान कर चल सकें। उन्हें उनके परिश्रम का पूरा फल मिलना ही चाहिए। क्यों वे जीवन भर सरमायेदारों की कृपा के पात्र बने रहें ? सरमायेदारों का रुपया इन्हीं मजदूरों के खून और पसीने की कमाई में से लूटा हुआ धन है ! मजदूरों को पूर्ण अधिकार है कि वे अपने धन पर जिस प्रकार भी हो सके अधिकार कर लें और उनसे कह दें कि बस, यह शोषण अब और अधिक नहीं चल सकता। यदि तुम लोग हमारे सामने आओगे तो तुम्हें अपनी प्रवृत्तियों के साथ प्राणों से भी हाथ धोने होंगे।" कमला ने गम्भीर होकर कहा।

"परन्तु सरकार मिल-मालिकों के साथ है, मजदूरों के साथ नहीं, पूँजीपतियों के साथ है, कार्यकर्त्ताओं के साथ नहीं। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि ऐसी सरकार नहीं रह सकती और न उसे रहने का अधिकार ही है।" आजाद ने क्रोध के साथ कमला की बात की पुष्टि करते हुए कहा।

"यही होगा आजाद बाबू ! चीन में मार्शल च्यांकाई शेक की जो दशा हुई वही भारत में होगी।" कमला ने गर्व के साथ कहा और फिर घड़ी की ओर देखा—"नौ बजने में केवल दस मिनट शेष हैं। अब हम लोगों को चलना चाहिए। ठीक नौ बजे सभा प्रारम्भ करके दस मिनट में ही समाप्त करनी होगी।"

दोनों व्यक्ति उठ खड़े हुए और होटल से बाहर आकर उन्होंने एक टैक्सी किराये पर ले ली। दस मिनट में टैक्सी ने आजाद तथा कमला दोनों को उनके लक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। इधर घड़ी ने टन-टन करके नौ बजाने प्रारम्भ किये और उधर कमला तथा आजाद ने कमरे में प्रवेश किया। सब कॉमरेडों ने दोनों का खड़े होकर फौजी सैल्यूट से स्वागत किया और फिर सब-के-सब शान्त होकर बैठ गए। कमला ने कहना प्रारम्भ किया, "अब सब ट्रेड यूनियनों में हमारे कॉमरेड छा गए हैं, समय आ चुका है जब कि हमें कुछ करना चाहिए। और अधिक शान्त अब हम लोग नहीं रह सकते। हड़ताल ही हम लोगों के पास एक अस्त्र है। हड़ताल का सफल होना या असफल होना हमारा उद्देश्य नहीं है। हड़तालें कराना मात्र ही हमारा उद्देश्य है। हम चाहते हैं कि क्रान्ति पैदा हो और वह तभी हो सकती है जब यह वर्तमान व्यवस्था छिन्न-भिन्न होकर शक्तिहीन हो जाए और फिर उसके खंडहरों पर चलने के लिए तुम लोग नई सड़कें बना सको, नई व्यवस्था तैयार कर सको। इस व्यवस्था को समाप्त करने के लिए तुम्हें जो भी बलिदान देना होगा उसे तुम कर्तव्य समझकर दोगे। कहिए क्या आप लोग तैयार हैं ?"

"तैयार हैं।" चारों ओर से आवाजें आईं। कॉमरेडों में जोश का ठिकाना

नहीं था। सब जी-जान से पार्टी का काम करने को उद्यत थे।

"अब आपके सामने जो प्रोग्राम होगा उसे व्यवस्थित रूप से समझा कर आजाद बाबू रखेंगे और आप शान्तिपूर्वक उसे समझिए।" कहकर कमला एक ओर बैठ गई।

आजाद ने खड़े होकर कहना प्रारम्भ किया,

"डियर कॉमरेड्स,

आपको जानना चाहिए कि भारत आजाद नहीं हुआ है, बल्कि और अधिक गुलाम हो गया है। भारत के पत्रकार भी गुलाम हैं। 'नेशन मैन' जो अंग्रेजी सरकार के सामने अंग्रेजों का पत्र माना जाता था आज सरकार के विचारों का प्रतिपादन उसी प्रकार करता है जिस प्रकार किसी के हाथ में रोटी का टुकड़ा देख कर कुत्ता दुम हिलाने लगता है। जिस पत्र को भी देखो उसकी यही दशा है। एक 'इन्सान' पत्र निकलता है, उसे भी आपने देखा होगा। कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध जितना जहर यह पत्र उगलता है उतना 'भारत टाइम्स' भी नहीं उगलता। खैर! मेरा यह सब कहने का मतलब यह है कि हमें पहले प्रेस-कर्मचारियों को अपने हाथों में लेना होगा और फिर जो पत्र हमारी निन्दा करेगा उसी प्रेस में हड़ताल कराकर उसे बन्द कराया जाएगा। प्रेस और पत्र का सिलसिला एक बार बन्द होने के पश्चात् बड़ी कठिनाई से जुड़ पाता है।"

"हम सब आपके विचारों से सहमत हैं।" सब ने एक स्वर में कहा।

इसके पश्चात् कमला ने सब कॉमरेडों को दिल्ली के हल्कों में इस प्रकार बाँट दिया कि प्रायः सभी प्रेसों तक उनकी पहुँच हो सके। फिर कुछ बाँटने के इश्तहार उन सबको दिये गए और कुछ दीवारों पर चिपकाने के लिए पोस्टर। यह सब कार्य-वाही समाप्त होने पर आजाद और कमला वहाँ से विदा हो गए। विदा होते समय भी सब कॉमरेडों ने फिर फौजी सैल्यूट दिया।

२१

रमेश बाबू मंसूरी में थे परन्तु 'इन्सान' का उन्हें हर समय ध्यान रहता था। वह रहते मंसूरी में थे परन्तु उसका ध्यान हर समय दिल्ली में पड़ा रहता था। काम की प्रगति-रिपोर्ट जो उनके पास जाती थी उसे देखकर वह अमरनाथजी और रशीदा

दोनों को ही शाबाशी देते रहते थे। प्लाट खरीदने की स्वीकृति उन्होंने अमरनाथजी को पहले ही पत्र में दे दी थी और साथ ही पत्र तथा प्रेस के लिए बिल्डिंग बनवाने की भी।

मंसूरी में रमेश बाबू के काफी परिचित हो चले थे और उनमें सबसे अधिक थीं मिस रमा, जो कि पास वाली कोठी में रहती थीं। उनके पिता एक बहुत बड़े डाक्टर थे। वह उनकी इकलौती कन्या थी। रमा स्वभाव की बड़ी नटखट थी और उसे शान्त रहना मानो आता ही नहीं था। उसका हर अंग हर समय मटका करता था और चाहे वह इतनी सुन्दर न थी परन्तु बनाव-शृंगार में कमाल करती थी और किसी-न-किसी प्रकार अपने अन्दर एक ऐसा आकर्षण अवश्य पैदा कर लेती थी कि वह जिससे भी घुलमिल कर बातें करना चाहती थी वह मना नहीं कर सकता था।

यही दशा बेचारे रमेश बाबू की भी थी। रमा देवी से उनकी एक दिन अचानक ही टक्कर हो गई। रमा टेनिस खेल कर अपने रैकिट को इधर-उधर घुमाती हुई मस्ती के साथ आ रही थी और रमेश बाबू अपने घर से निकल रहे थे। रमा गलती से अपनी कोठी में घुसने के बजाय पास वाली रमेश बाबू की कोठी में घुस गई और अकस्मात् दोनों की टक्कर हो गई। टक्कर होने पर दोनों कुछ पीछे हटे और रमेश बाबू ने क्षमा माँगते हुए कहा—"मेरा दोष है कि मैं जल्दी में था और कुछ सोच रहा था। आप सामने से आ रही हैं, यह मैं नहीं देख सका।"

"और मेरा दोष केवल इतना है कि मैं अपनी कोठी को भूलकर आपकी कोठी में घुस गई।" रमा ने कहा।

'यह तो कोई दोष की बात नहीं है क्योंकि पड़ौसी की कोठी में जाना, उनसे मिलना, बातें करना इत्यादि को मैं दोष नहीं मानता। हाँ मेरा दोष अवश्य है। यह आपकी सज्जनता है कि आपने कुछ नहीं कहा। यदि आपके अतिरिक्त कोई और देवी होतीं तो यह कहे बिना न रहतीं कि क्या भगवान् ने आपको देखने के लिए दो आँखें भी नहीं दीं?"

रमा अपने चश्मे को सँभाल रही थी परन्तु वह सँभला नहीं। उसकी एक कमानी टूट गई थी।

"ओह! आपका चश्मा टूट गया। खैर लाइए यह मुझे दे दीजिए और आप यह मेरा धूप का चश्मा लगा लीजिए।" कहकर रमेश बाबू ने अपना चश्मा रमा की ओर बढ़ा दिया।

"यह मेरे नहीं लगेगा। मैं अपना चश्मा स्वयं ठीक करा लूंगी। आप चिन्ता न करें इसकी। परन्तु आप तो कहीं बड़ी फुर्ती से जा रहे थे। जाइए ना! कहीं ऐसा न हो कि आपका वह काम भी रह जाए।" रमा बोली।

रमेश बाबू चलने को ही थे कि रमा ने फिर टोकते हुए कहा, "तो आप जा रहे हैं !" रमा मुस्कुरा रही थी ।

"आप संध्या को पधारिए। मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगा।" रमेश बाबू ने उत्तर दिया।

उस दिन के पश्चात् रमा का आना-जाना यहाँ प्रारम्भ हो गया और आपस के सम्बन्ध भी दिन-प्रति-दिन घनिष्टतम होने लगे। रमा रमेशबाबू को अपनी ओर खींचना चाहती थी परन्तु रमेशबाबू एक ऐसी चट्टान के समान थे कि जो हिलना सीखे ही नहीं थे। वह इतने जड़ साबित होंगे इसका रमा को स्वप्न में भी ध्यान नहीं था। वह टेनिस खेलने नहीं जाते, होटलों में जाने का उन्हें शौक नहीं, रेस देखना वह बुरा समझते हैं, यहाँ तक कि ताश खेलने से भी उन्हें घृणा है। फिर, रमा से उनकी कैसे चले ?

रमेशबाबू करते क्या हैं रमा यह कुछ नहीं जान पाई। पत्र क्या होता है यह रमा न जानती हो, ऐसी बात नहीं थी, परन्तु पिता की इकलौती कन्या लाड़-प्यार में पली, स्वतन्त्रता से रही, उसे कैसा पति चाहिए, सुन्दर, युवक उसके हाथों में खेलने वाला, उसकी चापलूसी करने वाला, उसके सौन्दर्य की हर समय सराहना करने वाला, धनवान न सही क्योंकि उसकी उसके पास कमी नहीं थी। परन्तु रमा आकर्षित हो गई ऐसे विचित्र प्रकार के व्यक्ति पर जो न चापलूसी ही कर सकता है और न किसी प्रकार बाहर के जीवन में उसका साथ ही दे सकता। हाँ इतना अवश्य था कि उसके साथ बैठकर चाय पीते समय यह अवश्य अनुभव होता था कि वह किसी बड़े आदमी के साथ बैठकर चाय पी रही है। रमेश बाबू के मुँह से निकले हुए शब्दों का रमा मूल्यांकन नहीं कर पाती थी। रमा का हृदय उछलने लगता था और ऐसा अनुभव होता था कि मानो उसे उसकी इच्छित निधि प्राप्त हो गई है और वह जीवन में बहुत सुखी है।

"आपका स्वभाव बहुत विचित्र है रमेश बाबू !" एक दिन चाय पर बैठकर रमा ने कहा और रमेश बाबू के चेहरे पर तिरछी दृष्टि डालकर मुस्कुरा दी।

"क्यों ?" रमेश बाबू ने संक्षेप में पूछा।

"इसलिए कि मैं आज तक प्रयास करने पर भी आपको नहीं समझ पाई।" रमा बोली।

"यह मैं नहीं मान सकता रमादेवी ! हाँ इतना अवश्य कह सकता हूँ कि शायद आपने सही तौर पर समझने का प्रयास ही नहीं किया। किसी को समझने के लिए यह आवश्यक होता है कि अपने को खो दे। जो व्यक्ति अपनत्व को दूसरे में खो सकता है वह उसे अवश्य पहचान सकता है। तुम पूछोगी कि क्या आपको समझने वाले

व्यक्ति इस संसार में हैं, तो मैं कहूँगा कि हाँ हैं। मुझे आज तक केवल पाँच व्यक्तियों ने समझा है। उनमें से एक तो परमपिता परमात्मा की गोद में चले गए। वह एक वृद्ध मुसलमान थे, दो व्यक्तियों का पता नहीं, ये दोनों मेरे सहपाठी थे और दो व्यक्ति आज मेरे कार्यालय के कार्य को देहली में सँभाले हुए हैं।

"आपके कार्यालय को ?" आश्चर्य के साथ रमा ने पूछा।

"हाँ मेरा नहीं, एक पत्र का कार्यालय है, उसे मैंने स्थापित किया था 'इन्सान' नाम से। मैं उस कार्यालय को जनता का कार्यालय समझता हूँ। मुझे अपने व्यक्ति को केवल कुछ वस्त्र और खाने-पीने के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए।" रमेश बाबू ने कहा।

"तो यों कहिए कि आपने यह रहस्य आज तक मुझसे छुपाये रखा कि 'इन्सान' पत्र और प्रेस के मालिक आप ही हैं। आप बड़े रहस्यमय व्यक्ति मालूम देते हैं।" रमा ने मुँह बनाकर कहा।

"यदि तुम यह धारणा अपने मन में बना लोगी तो मैं फिर कहता हूँ कि तुम मुझे समझने में भूल करोगी। मेरा कुछ नहीं है। मैं किसी चीज का मालिक नहीं हूँ। हाँ इतना अवश्य है, कि इसे चलाने वाले मेरे परामर्श से ही सब कार्य करते हैं और इस पत्र में मेरे लेख छपते हैं।" रमेश बाबू बोले।

"आपके लेख छपते है ? कितने विचित्र हैं जी आप ? आप तो कहते थे कि मैं पहाड़ पर घूमने आया हुआ हूँ, कोई काम नहीं करता। यह राज भी आपने मुझे आज तक नहीं बतलाया कि आप लेखक भी हैं। अब मैं समझ गई कि 'इन्सान' पत्र में 'एक मानव' के नाम से लिखने वाले व्यक्ति आप ही हैं।" रमा ने दृढ़तापूर्वक कहा और केतली उठाकर चाय की दूसरी प्याली भर दी।

रमेश बाबू को 'हाँ' कहने में संकोच न हुआ, क्योंकि वह अस्वीकार नहीं कर सकते थे। रमा यदि यह जान भी गई तो रमेश ने इस बात में कोई हानि नहीं समझी क्योंकि जब कोई व्यक्ति किसी के इतने निकट सम्पर्क में आ जाता है तो उस पर इस प्रकार के भेद छुपे नहीं रह सकते।

"मैं तुमसे छिपाना कुछ नहीं चाहता था रमा ! कारण केवल यह रहा कि इन बातों को कहने का कभी संयोग ही नहीं हुआ। तुम जानती ही हो मेरा स्वभाव कि व्यर्थ बातें करना मुझे अच्छा नहीं लगता। न मैं स्वयं व्यर्थ अधिक बोलता हूँ और न किसी अन्य को ऐसा करते देखकर प्रसन्न होता हूँ।" रमेश बाबू ने ये शब्द इतनी गम्भीरता से कहे कि कुछ क्षण को रमा को ऐसा लगा कि मानो वह एक बहुत ऊँचे स्थान को छूने का प्रयत्न कर रही है और शायद वह उसे कभी जीवन में छू नहीं पाएगी। उसका यह प्रयास दुःसाहस मात्र होगा। इसलिए उसे यह नहीं करना

चाहिए परन्तु साथ ही एकदम हृदय में एक हिलोर-सी उठी और वह क्षण भर में उस विचार पर छा गई।

रमा मुस्कुरा रही थी अपनी स्वाभाविक छटा के साथ। रमा की मुस्कान में एक ऐसी अनुपम छटा थी कि जिसका प्रभाव रमेश बाबू पर भी बिला पड़े नहीं रहता था। कभी-कभी तो उस मुस्कुराहट के वेग में आकर रमेश बाबू का तमाम शरीर रोमांचित हो उठता था। एक विलक्षण आकर्षण उन्हें रमा के अन्दर दिखलाई देने लगता था परन्तु साथ-ही-साथ रमा के अभावों की पूर्ति उन विलक्षण गुणों से नहीं हो पाती थी। जब कभी रमेश बाबू रमा को अपनी साथिन के स्थान पर रख कर देखते तो उनका मन कह उठता था, "नहीं—यह जीवन-संग्राम में पूरी नहीं उतर सकती। यदि यह अनमेल जोड़ा किसी प्रकार की परिस्थितियों में फँसकर बाँध भी लिया तो जीवन की नौका किसी भी भँवर में फँसकर डूब जायेगी। ऐसा साथी होने से तो यही क्या बुरा है कि आज स्वतन्त्र तो हैं। न किसी के लेने में न देने में।"

रमा के साथ चाय का समय अच्छा कट जाता था। रमा चाय बनाकर पिलाती थी और रमेश बाबू आनन्द के साथ पीते थे। रमा ने अब चाय के अतिरिक्त और समयों पर भी यहाँ आना-जाना प्रारम्भ कर दिया था। रमेश बाबू के मकान को वह अपना ही मकान समझने लगी थी और कभी-कभी स्वयं खड़ी होकर रमेश बाबू के पहाड़ी नौकर से वह कमरों की सफाई और सामान की व्यवस्था भी ठीक करा देती थी। फर्श की सफाई कराना, पलंग की चादर बदलवाना, मेजपोशों को बदलवाना, परदों को ठीक करवाना ये सब कार्य वह अपनी देख-रेख में कराती थी। जब रमेश बाबू लौट कर आते और यह सब कुछ देखते तो उन्हें लगता कि वास्तव में उनके जीवन के किसी अभाव की पूर्ति वहाँ पर विद्यमान थी।

साफ चादर पर लेटकर जब साफ पर्दों, साफ फर्श और मेजपोशों पर रखे हुए गुलदस्तों पर उनकी दृष्टि जाती थी तो मन चाहता था कि क्यों न वह इस व्यवस्था करने वाली से एक स्थाई सम्बन्ध बना लें? इस प्रकार की व्यवस्था पाकर उनका अपना कार्य कितनी उन्नति कर सकेगा? फिर तो उनके पास हर समय केवल लिखने के ही लिए होगा। वह कितना सुन्दर लिख सकेंगे? उस व्यवस्था की कल्पना के स्वप्न में पड़ कर कभी-कभी रमेश बाबू को नींद आ जाती थी और वह खुलती उसी समय थी जब रमा आकर कहती, "आज सोते ही रहेंगे क्या? यह भी ध्यान नहीं कि आपने आज कुछ वचन दिया था किसी को।" कहते हुए रमा सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ जाती।

"लो! मैं तो सचमुच भूल ही गया था रमादेवी! आप बैठिए मैं अभी आधे घण्टे में तैयार हो जाता हूँ, जरा शेव बनानी होगी।" रमेश बाबू ने खड़े होते

हुए कहा।

"बैठने आप मुझे कहाँ देंगे ? अभी आपको चाय जो पीनी है। मैं तो समझ रही थी कि वहाँ पहुँचूँगी तो चाय तैयार मिलेगी, परन्तु यहाँ बिला अपनी काया को कष्ट दिए कुछ प्राप्ति होने की सम्भावना ही नहीं है।" मुस्कुराकर रमा ने कहा।

"कम्यूनिज्म जो आ रहा है देश में। बिला काया-कष्ट किये अब कुछ नहीं होगा रमादेवी !" कहकर रमेश बाबू ने छोटा शीशा सामने मेज पर रखा और सेफ्टी रेजर को हजामत के लिए तैयार करने लगे।

रसोई-घर की ओर जाती-जाती रुक कर सामने वाली कुर्सी पर रमा बैठ गई और बोली, "क्योंजी ! तनिक मुझे आप यह तो समझाइए कि यह कम्यूनिज्म क्या बला है ?" रमा का मुख बहुत गम्भीर बना हुआ था इस समय और वह यह प्रकट करना चाहती थी कि मानो वह कम्यूनिज्म के विषय में कुछ भी नहीं जानती।

"अच्छा बतलाएँगे ! और अवश्य बतलाएँगे कि कम्यूनिज्म क्या है, परन्तु यह समय नहीं है इस बात का। यदि देर करोगी तो चाय रह जाएगी। पहले नौकर से कह आओ कि वह चाय बना डाले और फिर यदि चलने से पूर्व कुछ समय रहा तो आज कम्यूनिज्म पर ही बात-चीत करेंगे।" रमेश बाबू बोले।

"बहुत अच्छा !" कहकर रमा रसोई की ओर चली गई और वह शीघ्र ही चाय बनाने का सब प्रबन्ध करके तुरन्त लौट आई। आकर फिर उसी सामने वाली कुर्सी पर बैठकर मेज पर कोहनियाँ टिका दीं और हथेलियों पर मुँह रख कर बोली. "अब बतलाइए ! कम्यूनिज्म क्या है ?"

रमेश बाबू ने कहा, "तनिक मुझे हजामत बना लेने दो। क्योंकि कम्यूनिज्म में विद्रोह और क्रान्ति की भावनाएँ कूट-कूट कर भरी हैं। कहीं ये बातें सुन कर मेरे उस्तरे में कम्यूनिज्म का असर हो गया तो बस मेरे गालों की खैर नहीं।" कहकर रमेश बाबू मुस्कुरा दिए।

रमा बोली, "आप तो उपहास करने लगे हैं।"

"उपहास नहीं रमा ! मैं सत्य कह रहा हूँ। कम्यूनिज्म का मूल सिद्धान्त है विद्रोह ! ये लोग विद्रोह द्वारा देश को उभारना चाहते हैं। मैं कहता हूँ कि आज यह मार्ग गलत है। हमें गांधीजी ने शान्ति का मार्ग सिखलाया है। धन एकत्रित हो रहा है, सरकार पर न सही, पूँजीपतियों पर ही सही, परन्तु अपने ही देश में है। पूँजीपति भी आखिर उस धन का क्या करेंगे ? किसी व्यापार में लगाएँगे। वह सब सरकार के नियन्त्रण में होगा। जब वह सरकार के नियन्त्रण में होगा तो सरकार को अधिकार होगा कि वह उसे जब चाहे पूर्ण रूप से अपने अधिकार में करले।" रमेश बाबू बोले।

"मैं क्या पूछ रही थी और आपने क्या बतलाना प्रारम्भ कर दिया ? मैं कम्यूनिज्म क्या है यह पूछ रही थी । आप बतलाने लगे कि आप भारत की उन्नति के लिए सरकार का कौन-सा मार्ग उचित समझते हैं ?" मुस्कुराते हुए रमा ने कहा ।

रमेश बाबू ने आज समझा कि रमा का राजनैतिक ज्ञान कितना स्पष्ट है ? वह रमा को अभी तक केवल एक मनचली छैल-छबीली, सभ्य, अच्छे घराने की एक योग्य कन्या समझते थे । उसका मस्तिष्क राजनीति में भी इतना सुलझा हुआ है यह देखकर रमेश बाबू को विस्मय के साथ-साथ हर्ष भी हुआ । इतने में रमा सामने से पहाड़ी नौकर को चाय लाता हुआ देखकर बोली, "अच्छा, अब आप जल्दी से शेव कर लीजिए क्योंकि चाय आ गई और समय भी अधिक नहीं रहा ।"

रमेश बाबू ने शेव समाप्त की और फिर इसके पश्चात् दोनों ने चाय पी ।

"लो ये बिस्कुट खाओ रमा ! मैं कल सन्ध्या को लेता आया था ।" रमेश बाबू ने खड़े होकर आलमारी से बिस्कुटों का डिब्बा निकालते हुए कहा ।

"तो यों कहिए कि यह बिस्कुट आप मेरे लिए लाए हैं कि क्यों मुझे खाली चाय पीना रुचिकर नहीं है ।" रमा ने बिस्कुट दाँतों में दबाने से पूर्व कहा ।

"आप यदि यह भी समझें तो मुझे कोई आपत्ति न होगी, बशर्ते कि आप केवल अपने ही लिए समझकर इस डिब्बे को उठाकर पीछे न रख दें और मेरी प्लेट खाली ही रह जाए ।" मुस्कराकर रमेश बाबू ने कहा ।

रमा बड़े जोर से हँस पड़ी और डिब्बा सामने डालते हुए कहा, "ऐसा भला कहीं हो सकता है । आप पहले और मैं पीछे ।"

"नहीं पहले आप ।" रमेश बाबू बोले ।

आखिर पहले रमा को ही खाना पड़ा । रमेश बाबू को आज की चाय में और दिनों की अपेक्षा बहुत अधिक आनन्द आया । वह बिस्कुट काट-काटकर चाय पीते जा रहे थे और रमा उनके हृदय की गति को सावधानी से पढ़ती जा रही थी । रमा ने देखा कि रमेश बाबू बराबर बिला चीनी की ही चाय पीते जा रहे थे और यह अनुभव ही नहीं कर रहे थे उसमें चीनी नहीं पड़ी ।

रमा को अपनी सफलता पर गर्व हुआ और उसके नेत्रों में पहले से चार गुनी मादकता झलक आई । हृदय में एक थिरकन होने लगी, उसका तमाम बदन रोमांचित हो उठा और मस्तक पर छोटी-छोटी पसीने की बूंदें झलकने लगीं । वह होंठों के पास पहुँची हुई रमेश बाबू की प्याली को रोककर बोली, "बाप रे बाप ! आप तो आज फीकी ही चाय पीते जा रहे हैं ।" और प्याली हाथ से ले ली ।

"फीकी ?" आश्चर्य से रमेश बाबू ने कहा, "परन्तु मुझे तो यह फीकी नहीं लग रही । मुझे तो बड़ा मिठास आ रहा है इसमें ।"

"वह नहीं लग सकती रमेश बाबू ! जीवन का मिठास प्रत्येक वस्तु को मीठा बना देता है।" कहते हुए रमा ने प्याली में चीनी मिला दी और कहा, "यह लीजिए अब पीजिए ! अब इसमें मीठा मिल गया।"

यह सब कुछ एक जादू से समान हुआ, क्या हुआ, इसे पूरी तरह शायद दोनों ही नहीं समझ पाए परन्तु कुछ हुआ अवश्य ऐसा कि जैसा जीवन में पहले कभी नहीं हुआ था, यह दोनों ने ही अनुभव किया। चाय के पश्चात् दोनों बाहर घूमने निकल गए।

२२

शान्ता का जीवन कुछ दिन से बहुत फीका-सा हो गया था। अमरनाथ भैया अपने मकान पर आते नित्य थे परन्तु भाग-दौड़ के साथ। उनका घर पर बहुत ही कम ठहरना होता था और वह अब शान्ता के कहने पर भी चाय पीने के लिए नहीं रुकते थे। दफ्तर के काम का बहाना उनके पास इतना बड़ा था कि इसके सामने शान्ता को चुप रह जाना पड़ता था। शान्ता को पता था कि पत्र के संचालक रमेश बाबू आजकल मंसूरी गए हुए हैं, इसलिए हो सकता है कि अमरनाथजी को बिलकुल भी अवकाश न मिलता हो।

इधर कमला जब से फरार हुई थी तब से एक-दो बार शान्ता के पास आई अवश्य, परन्तु यों ही चोरी-छुपे, दो-चार मिनट के लिए, कभी-कभी चाय पीने के बहाने। शान्ता कमला को प्यार करती थी और बहुत चाहती थी। यह रहस्य कमला पर भी छुपा हुआ नहीं था। यही कारण था कि कमला उसका विश्वास करके उसके पास चली आती थी। अमरनाथ बाबू का वह अब विश्वास नहीं करती थी और साथ-ही-साथ उन्हें अपना राजनैतिक शत्रु भी मानने लगी थी। अमरनाथजी का पत्र कमला की पार्टी की कार्यवाहियों की निन्दा करे और कमला उसे सहनकर सके, यह नहीं हो सकता था। कमला ने इस पत्र को जड़मूल से उखाड़ फेंकने का निश्चय किया था।

शान्ता चाय पीने के लिए बैठी ही थी कि सामने से कमला आती दिखलाई दी। कमला अन्दर घुसी और धीरे से बोली, "बहन मेरे पीछे पुलिस है।" वह कुछ घबरा रही थी।

"घबराओ नहीं। सामने वाले कमरे में जाकर दूसरे वस्त्र बदल लो और जाकर रसोई में चाय बनाने लगो। बस ! तुम वहीं रहना जब तक ये लोग यहाँ आकर चले न जाएँ।" शान्ता ने कहा।

"बहुत अच्छा।" कहकर कमला अन्दर चली गई और शान्ता ने ठाट के साथ बैठकर चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। अभी दो-चार घूँट ही भरे थे कि इतने में पुलिस मकान के सामने आकर खड़ी हो गई। इधर-उधर झाँककर उनमें से एक, जो कि सब-इन्सपेक्टर मालूम देता था, आगे बढ़कर शान्ता के सामने आ गया। शान्ता उसे देख कर खड़ी हो गई और विनम्र भाव से बोली, "कहिए ! क्या मुझसे कोई काम है आपको ? मेरा नाम शान्ता है। मैं बंगाली मार्केट में जो कन्या-विद्यालय है उसकी मुख्याध्यापिका हूँ।"

"जी नहीं !" कुछ लज्जित-सा होकर इन्सपेक्टर बोला। "हम लोग एक लड़की की खोज में थे। वह कम्यूनिस्ट लड़की है 'कमला'। उसने शहर-भर में बड़ा उधम मचाया हुआ है। हमें सूचना मिली थी कि वह इधर आई थी। आपने तो यहाँ सामने से जाती हुई किसी लड़की को नहीं देखा ?"

"नहीं, मैं तो यहाँ पर कितनी ही देर से बैठी हूँ। यहाँ तो मैंने किसी को आते-जाते नहीं देखा। बैठिए ! चाय पीजिए।" शान्ता बोली।

"क्षमा कीजिए कष्ट के लिए। इस समय मुझे तनिक शीघ्रता है। ऐसा न हो कि कहीं वह इधर-उधर से होकर नौ-दो ग्यारह न हो जाए। इन कम्यूनिस्टों के मारे आजकल नाक में दम है हमारा। इनका बच्चा-बच्चा बिच्छू के समान होता है। बस यों समझिए हेडमिस्ट्रेस साहिबाँ कि इनके काटे का इलाज नहीं !"

"आप बहुत परेशान मालूम देते हैं कम्यूनिस्टों से !" मुस्कराकर शान्ता ने कहा।

"मैं नहीं, आज भारतवर्ष का हर व्यक्ति इनसे परेशान है। ये लोग आतंक फैलाकर अपनी शक्ति बढ़ाना चाहते हैं, परन्तु यह नहीं समझते कि आतंक के बल पर तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद भी नहीं ठहर सका, जिसकी जड़ें पाताल में उतर चुकी थीं। फिर नई आने वाली सत्ता भला आतंक के बल पर किस प्रकार जनता की सहानुभूति प्राप्त कर सकती है ? भारत के लोग इन कम्यूनिस्टों को सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकते। ये वे ही गद्दार लोग हैं जिन्होंने सन् बयालीस के आन्दोलन में कांग्रेसी सत्याग्रहियों को चुन-चुनकर पकड़वा दिया था। आज ये देश का हित करने चले हैं मानव-समाज और मजदूर आन्दोलनों की दुहाई देकर। ये हिन्दुस्तान का सर्वनाश करना चाहते हैं। ये चाहते हैं कि भारत भी इनका पिछलग्गू बनकर इनके हाथों की एक कठपुतली मात्र बन जाए. परन्तु यह असम्भव है, ऐसा नहीं होगा, नहीं होगा।"

इन्सपेक्टर बोला ।

यह सब सुनकर शान्ता मौन रह गई । सन् बयालीस का आन्दोलन याद आते ही एक बार मन में आया कि वह दारोगाजी से कहे कि 'चलिए' यह है कमला । इसे आप पकड़ लीजिए और वह दण्ड दिलवाइए जो देश-द्रोहियों को मिलना चाहिए। परन्तु साथ ही ध्यान आया कि कमला तो स्वयं सन् बयालीस के सत्याग्रह में दो वर्ष के लिए जेल गई थी । उस समय तो वह कम्यूनिस्ट नहीं थी । उसके विचारों में यह जो कुछ भी परिवर्तन हुआ है वह सब बाद में आकर हुआ है । और इस समस्त परिवर्तन का दोषी वह मानती थी अमरनाथजी को । यदि अमरनाथजी कमला के प्रति इतनी उदासीनता न बरतते तो कोई कारण नहीं था कि आज तक कमला और अमरनाथजी का छोटा-सा सुन्दर परिवार न बन गया होता ।

"आपका कथन और आपकी आकांक्षा भगवान् करे सफल हों ।" नेत्रों में आँसू भरकर शान्ता ने कहा, "सन् बयालीस और भारत-विभाजन में मेरा सर्वस्व लुट गया भैया ! मैं तो आज कुछ भी नहीं विचार सकती । उस काल की स्मृति हो आती है तो मेरा देवता मेरी आँखों के सामने आकर खड़ा हो जाता है । कितना महान्, कितना अविचल, कितना बलवान—कोई शक्ति उसे परास्त नहीं कर सकती थी, कोई आपत्ति उसे हिला नहीं सकती थी, कोई महानता उसे नीचा नहीं दिखा सकती थी । आप खोजिए भैया ! भगवान् करे आप सफल हों और आप अवश्य सफल होंगे ।"

यह शान्ता ने इस नाटकीय ढंग से कहा कि दारोगाजी बेचारे पीछे लौट लिए और उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि यहाँ कमला हो ही नहीं सकती । पुलिस मोहल्ले-भर की खोज करके वहाँ से चली गई और कमला का पता न लगा सकी ।

"लो कमला ! अब सब लोग गए तुम चाय पी लो ।" शान्ता ने कहा ।

"नहीं बहन ! मेरा एपाइण्टमेण्ट मिस हो जाएगा । मैं रुक नहीं सकती । मैंने उन्हें समय दिया है ।" कमला ने घड़ी देखते हुए कहा ।

"उन्हें किन्हें कमला !" आश्चर्य से शान्ता ने पूछा ।

"आप उन्हें नहीं जानतीं बहन ! उनका नाम आजाद है । शायद पत्रों में कहीं आपने पढ़ लिया हो ।" सरल भाव से कमला ने उत्तर दिया ।

"आजाद !" आश्चर्य से शान्ता ने कहा, "क्या मैं आजाद के विषय में तुमसे कुछ पूछ सकती हूँ कमला ?"

"हाँ हाँ ! क्यों नहीं ? मैं आप पर विश्वास करती हूँ शान्ता बहन ! और आपकी गम्भीरता से भी अपरचित नहीं हूँ कि आपके पास गई हुई बात एक कुएँ में गिरी हुई बात के समान हो जाती है ।" कमला ने कहा ।

"विश्वास रखो कमला ! यदि फाँसी पर भी लटकना पड़े तो भी तुम्हारे साथ

विश्वासघात नहीं होगा।" शान्ता गम्भीरतापूर्वक बोली।

"यह सब कहने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु जरा शीघ्रता करो बहन ! नहीं तो मेरा सब करा-धरा मिट्टी में मिल जाएगा और यदि आज भेंट न हुई तो आने वाले तीन दिन तक फिर कहीं भेंट न हो सकेगी। सब प्रोग्राम खराब हो जाएँगे और बहुत बड़ा कार्य खराब हो जाएगा !" कमला ने कहा।

"यह आजाद बाबू कहाँ के रहने वाले हैं ?" शान्ता ने पूछा।

"यह विस्तार के साथ मैंने उनसे कभी नहीं पूछा ; हाँ, इतना अवश्य जानती हूँ कि यह लाहौर के रहने वाले हैं और पाकिस्तान सरकार की जमानत से भाग कर यहाँ आए हैं। वहाँ इन पर तीन मुसलमानों को मारकर दो हिन्दू लड़कियों को बचाने और उन्हें भारत भेज देने का जुर्म लगाया गया था। बस अब मैं चली !" कहकर कमला चली गई।

शान्ता का दिल धड़कने लगा। वह समझ गई कि यह आजाद अन्य कोई नहीं, उसकी इज्जत और प्राण बचाने वाला आजाद, उसका भैया है। मन में एक बार आया कि वह कमला को जोर से पुकार कर कहे कि ठहरो कमला, मैं भी चलती हूँ तुम्हारे साथ। मुझे भी आजाद भैया से मिलना है, परन्तु वह फिर कुछ सहम गई। हो सकता है कि वह कोई अन्य व्यक्ति हो। कमला फिर आएगी। कमला से पूरी तरह निश्चय कर लेने के पश्चात् ही मिलना उचित होगा, उससे पूर्व नहीं।

शान्ता को उस दिन रात भर चैन नहीं आई। आजाद भैया के विचारों ने उसकी नींद हराम कर दी। आजाद कब यहाँ आया, किस प्रकार आया, कमला से आखिर उसकी किस प्रकार भेंट हुई, वह कम्यूनिस्ट क्यों बना और कब बना ? किन परिस्थितियों ने उसे कम्यूनिस्ट बनने पर बाध्य किया ? वह सिपाही था उनका। सिपाही के लिए काम चाहिए, सच्चा सिपाही खाली नहीं बैठ सकता। कमला का नेतृत्व पाकर ही वह कम्यूनिस्ट बना होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। यह बुरा हुआ, परन्तु अब क्या हो सकता है ? शान्ता इसमें क्या कर सकती है ? उसे परिस्थितियों के पीछे-पीछे जाना होगा, परिस्थितियाँ उसके हाथ की वस्तु नहीं हैं।

आजाद देहली में है, इस विचार ने शान्ता के चित्त की ऐसी अवस्था बनादी कि आज वह और दिन की अपेक्षा कुछ अधिक प्रसन्न दिखलाई दे रही थी। आज अमरनाथजी के पता नहीं क्या जी में आया कि सुबह के समय जब रशीदा के साथ घूमकर लौटे तो शान्ता के घर पर जा धमके और बोले, "शान्ता बहन ! आज हमने कार्यालय की छुट्टी कर दी और सोचा कि बहुत दिन हो गए हैं बहन के यहाँ चाय पिए, आज वहीं जाकर चाय पी जाएगी।"

शान्ता ने मुस्कुरा कर दोनों का स्वागत किया और आदरभाव से दोनों को

बिठलाते हुए कहा, 'भैया अमरनाथजी ! बहन के हाथ की बनाई हुई चाय जीवन के एक निश्चित काल तक ही मीठी लगती है।" और इतना कहकर वह रशीदा की ओर मुँह करके मुस्कुराकर बोली "आपकी क्या राय है ?"

रशीदा कुछ क्षण तो शान्त रही, परन्तु तुरन्त ही अपने को सम्हाल कर बोली "ऐसा न कहो बहन ! बहन की चाय की मिठास स्त्री की चाय में नहीं आ सकती। आप कहेंगी क्यों ? तो मैं उसका कारण बतलाए देती हूँ कि बहन की चाय निस्वार्थ है और पत्नी की स्वार्थपूर्ण।" रशीदा बोली।

शान्ता चुप थी। इतना गम्भीर उत्तर पाने की उसे आशा नहीं थी, परन्तु यह उत्तर पाकर उसने रशीदा के चातुर्य और स्पष्टवादिता की मन-ही-मन सराहना की। नारी का त्यागमय रूप शान्ता ने देखा, कितना स्पष्ट, कितना भोला, परन्तु देखने में, समझने में नहीं ? समझने में कितना तर्कपूर्ण और गूढ़ था।

रशीदा को पहले भी एक बार अपने स्कूल के वार्षिकोत्सव पर शान्ता ने देखा था, परन्तु इतने निकट से देखने का अवसर उसे अभी तक नहीं मिल पाया था। रशीदा ने फिर कहना प्रारम्भ किया, "शान्ता बहन ! मैं आज आपके पास एक गुत्थी सुलझाने के लिए इन्हें लेकर आई हूँ। यह इन्होंने झूठ बोला कि हम लोग यहाँ पर केवल चाय पीने के लिए ही आए हैं।"

इतने स्पष्ट शब्दों में रशीदा क्या कहना चाहती थी, शान्ता न समझ सकी। रशीदा ने फिर कहना प्रारम्भ किया, "मैं यह जानकर और यह विश्वास करके यहाँ आई हूँ कि इन्हें आपसे अधिक स्वस्थ राय संसार में मेरे विचार से अन्य कोई नहीं दे सकता। मैंने जीवन को हमेशा तर्क की कसौटी पर कसने का प्रयास किया है और हमेशा वह पाने की इच्छा की है जिसके योग्य मैंने अपने को समझा है। यदि अपनी शक्ति से बहुत बड़ी वस्तु मैं कोई भाग्यवश अकस्मात पा भी जाऊँ तो उसे सुरक्षित रखने में मैं सर्वदा असमर्थ रही हूँ। जीवन का यही नियम पालन करने के लिए मैं आपके अमरनाथ भैया को कहती हूँ। आप ही राय दीजिए कि क्या मेरी राय अनुचित है ?" कहकर रशीदा चुप हो गई और उसने अपनी बात के समर्थन के लिए शान्ता के मुख पर भेद पूर्ण दृष्टि से देखा।

शान्ता को यह समझने में तो देर न लगी कि अवश्य कुछ दाल में काला है परन्तु वह कहाँ तक है, उसमें क्या रुकावट है और उसे इस समय क्या उत्तर देना चाहिए यह सोचने की बात थी, इसीलिए उसने गम्भीरतापूर्वक कहा—"आपकी बात का उत्तर दो शब्दों में नहीं दिया जा सकता रशीदा ! जहाँ तक मैं समझी हूँ इसका सम्बन्ध दो जीवनों से है और दो जीवनों का समन्वय कोई खिलवाड़ नहीं है। और न ही उसे खिलवाड़ के रूप से लेना चाहिए। यह एक गम्भीर विषय है। इस पर

गम्भीरतापूर्वक ही विचार होना चाहिए।"

"यही तो मैं भी कहती हूँ शान्ता वहन ! परन्तु इनके विचार में मेरी बात ग्राकर समाती ही नहीं। मैं इनसे कहती हूँ कि राजनीति पर लेख लिखना ग्रौर बात है ग्रौर जीवन की कठिन समस्याग्रों का हल निकालना ग्रौर बात।" कह कर रशीदा मुस्कुरा दी ग्रौर बोली, "ग्रच्छा ग्रब ग्राप चाय की चिन्ता कीजिए, जिसके लिए मैं इतनी दूर से चलकर ग्राई हूँ, उसे तो ग्राप भुलाने का प्रयास न करें।"

रशीदा की बात सुनकर शान्ता मुस्कुरा दी ग्रौर बोली, "उसकी ग्राप चिंता न करें। चाय तैयार हो रही है। उसका मुझे ध्यान है।"

बाबू ग्रमरनाथजी जो ग्रभी तक चुपचाप सब सुन रहे थे, ग्रधिक मौन न रह सके ग्रौर एक ग्रजीब भाव-तरंग में बोले, "शान्ता तू जितनी भोली है यह रशीदा उससे भी ग्रधिक भोली है। तुम लोग केवल ग्रपने ही दृष्टिकोण के पहिए पर संसार को घुमाना चाहती हो, परन्तु तुम्हें मालूम ही नहीं कि संसार क्या है ? घनिष्ट-से-घनिष्टतम प्रेम किस प्रकार दुर्भाग्यवश द्वेष में बदल जाता है ? हृदय में स्वाभाविक रूप से उमड़ने वाला स्नेह ग्रौर ममत्व किस प्रकार प्राणों का ग्राहक बन जाता है ? इन कमजोरियों से ऊपर रहने वाला व्यक्ति मानव नहीं हो सकता, वह देवता है।" ग्रमरनाथजी ने बहुत गम्भीरता के साथ कहा।

इस समय शान्ता तथा रशीदा दोनों ग्रमरनाथजी के मुँह को देख रही थीं। यह कहकर वह क्षण भर के लिए मौन हो गए।

रशीदा ग्रपने विचारों को न रोक सकी। वह ग्रब ग्रमरनाथजी के भावों को समझ चुकी थी ग्रौर समझ गई ग्रमरनाथजी के धर्मसंकट को भी। कमला को ग्रमरनाथजी के हृदय से निकाल फेंकना उसके बायें हाथ का खेल था परन्तु दूसरा रहस्य जो उसे ग्राज तक ज्ञात नहीं हो पाया था ग्रौर जिसे मालूम करने का वह हृदय से प्रयत्न कर रही थी, ग्राज ग्रचानक ज्ञात हो गया। वह गम्भीरतापूर्वक बोली, "तो सुनिए ग्रमरनाथजी ! मेरे भैया भी मानव नहीं वही देवता हैं जिन्हें ग्राप ग्राज इतने दिन पास रहकर भी नहीं पहिचान पाए। मैं समझती हूँ कि ग्रब ग्रापके मस्तिष्क का भ्रम दूर हो जाना चाहिए।"

मानव नहीं देवता हैं—कौन—रमेश बाबू—'इन्सान' के संचालक—ग्राखिर यह है कौन व्यक्ति—शान्ता का मस्तिष्क चकराने लगा। वह विचार नहीं सकी कि इतने दिन पश्चात् यह सब कुछ क्या होने जा रहा था ? ग्राजाद का भी कुछ पता चल रहा था ग्रौर रमेश बाबू क्या यह वही रमेश बाबू हैं ? यदि वही हैं तो सचमुच ही ग्रमरनाथजी उनकी प्रशंसा सत्य किया करते थे, ग्रपने ग्रनुभवों का स्पष्टीकरण करते थे। शान्ता मन के भावों को मन में घोंटे चुपचाप ग्रर्द्ध निद्रित-सी

अवस्था में यह सब सुन रही थी।

अमरनाथजी भी कोई साधारण विचारशील नहीं थे। उनके साथ बात-चीत करने के लिए भी कुछ भेजा चाहिए, यह शान्ता जानती थी। शान्ता यह पूर्ण रूप से देख चुकी थी कि अमरनाथजी पर रशीदा का पूर्ण अधिकार हो चुका था। उस अधिकार का वह जीवन में कुप्रयोग करेगी ऐसा भी उसके हाव-भावों से प्रतीत नहीं होता, परन्तु इतना अवश्य था कि इतने भोले व्यक्ति की गृहस्थी को चलाने के लिए इतनी ही योग्य स्त्री की आवश्यकता है। शान्ता को यह जोड़ा बहुत पसन्द आया और उसने मन-ही-मन दोनों को आशीर्वाद दिया। दोनों की आपस की बातों में आज शान्ता को बड़ा आनन्द आ रहा था और वह स्नेह-भरे शब्दों में पूछ उठी, "तो बहन ! तुम अपने भैया का इतना आदर करती हो ?"

"अवश्य ! हर बहन को करना चाहिए शान्ता बहन ! मैं उनसे डरती भी बहुत हूँ। वह मंसूरी में बैठे हैं परन्तु मैं समझती हूँ कि वह यहीं हैं। सच कहती हूँ कि मुझे हर समय उनका डर लगा रहता है, परन्तु साथ ही यह भी जानती हूँ कि मेरे किस कार्य से भैया प्रसन्न होंगे और किस कार्य से अप्रसन्न ?" रशीदा गम्भीर मुद्रा बनाकर बोली।

चाय आ गई और तीनों ने चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। अमरनाथजी की आदत मजाक की बिलकुल नहीं थी परन्तु फिर भी उन्हें भी कुछ-न-कुछ उत्तर अवश्य देना होता था। रशीदा ने मसखरेपन में कहा, "शान्ता बहन ! इनकी एक वह कोई हैं मिस कमला, जिन्हें यह प्रेम करते हैं, ऐसा यह कहते हैं।"

"मैंने तुमसे कब कहा था रशीदा ?" बीच में बात काटकर अमरनाथजी बोले।

"मैं दूसरा प्रश्न करती हूँ कि आपको बात काटकर बीच में बोलने का अधिकार किसने दिया ?" रशीदा बोली।

अमरनाथजी बेचारे चुप हो गए और चुपचाप सुनने लगे। रशीदा कहती गई, "जी, तो मैं कह रही थी कि यह उन्हें प्रेम करते हैं और उधर उनका प्रेम चल रहा है किन्हीं आजाद बाबू के साथ। देखिए तो सही यह कैसा झमेला है कि यह उधर चल रहे हैं और मैं यह सब जान-बूझकर भी इनकी ओर बढ़ने का प्रयत्न कर रही हूँ— जीवन की देखिए कैसी विडम्बना है ? मैं इसीलिए कहा करती हूँ कि यह जीवन एक तमाशा है।"

"यह सब गलत कह रही हैं शान्ता बहन ! शान्ता बहन जानती हैं कि मेरा रुझान कमला की ओर कितना है ?" अमरनाथजी ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

शान्ता अमरनाथजी की बात का समर्थन करते हुए बोली, "यह सत्य भी था एक दिन रशीदा बहन ! परन्तु समय ने दोनों की विचारधाराओं में आकाश-पाताल

का अन्तर ला दिया। एक दूसरे का एक दूसरे के प्रति जो आकर्षण था उस खिंचाव में परिवर्तन हो गया और मुझे भय है कि कहीं वह भविष्य में वैमनस्य में न बदल जाए।"

"यह आपने क्या कह दिया शान्ता बहन ? मैं तो किसी से भी संसार में वैर नहीं करना चाहता और फिर वह भी कमला से, जिसने एक समय मेरे हृदय पर एक छत्र राज्य किया है। मैं इस सत्य को नहीं छिपा सकता, मैं भूत को नहीं भुला सकता और भविष्य के विषय में मैं जानता नहीं। उसने अपना रास्ता बदल दिया। वह रास्ता मुझे पसन्द नहीं। मैं अपना रास्ता नहीं बदल सकता, प्राण दे सकता हूँ। मुझे साथी चाहिए, जो जीवन में मुझे सहयोग दे, मुझ पर राज्य करे, क्योंकि शासित होने में जो स्वतन्त्रता होती है वह शासक बनकर कोई नहीं पा सकता, परन्तु मैं मार्ग बदलने को उद्यत नहीं।

इसीलिए रशीदा ! मैंने जीवन का साथी तुम्हें चुना है। रमेश बाबू के लिए जो भावना मेरे हृदय में थी वह तुम आज मेरी कमजोरी भी मान सकती हो, परन्तु उसमें कोई दुर्भावना नहीं थी।" अमरनाथजी स्पष्टता और गम्भीरता से बोले।

"यह मैं जानती हूँ, इसीलिए मुझे इस रहस्य का ज्ञान होने पर भी किसी प्रकार का खेद नहीं हुआ। मैंने समझ लिया कि यह मानव की साधारण कमजोरी है जो हर व्यक्ति में हो सकती है।" रशीदा बोली।

आज जैसी स्पष्ट बातें रशीदा और अमरनाथजी की पहले कभी नहीं हुई थीं आज शान्ता के सम्मुख ये बातें इतने निखरे रूप में सामने आईं कि शान्ता को भी इस अनमोल जोड़ी के बनने को अपनी अनुमति देनी पड़ी। परन्तु साथ ही उसने रशीदा से इतना अवश्य कहा, "तुम्हें इसका अन्तिम निर्णय करने से पूर्व अपने भाई की अनुमति अवश्य ले लेनी चाहिए।"

इसके लिए दोनों ने सिर झुका लिया। जब चाय पीकर आज ये दोनों व्यक्ति शान्ता के मकान से विदा हुए तो दोनों बहुत प्रफुल्लित थे और साथ ही शान्ता बहन भी। उसका हृदय भी स्नेह से परिपूर्ण था और उसके हृदय की आनन्दमय भावना मुखमण्डल पर आकर चमक उठी थी। प्रसन्नता के डोरे उसकी आँखों की पुतलियों में खिंच गए थे।

आज संध्या का खाना शान्ता ने बहुत प्रसन्नतापूर्वक खाया। उसे ऐसा लगा कि मानो उसका जीवन-प्रभात फिर से लौट रहा है। उसे आज रमेश बाबू का ध्यान रह-रह कर आ रहा था और जब से उसने रशीदा के मुख से उनका बखान सुना था उस समय से तो उसका मन यह कहने लगा था कि हो-न-हो यह वही मेरे देवता हैं। उनके अतिरिक्त और कौन ऐसे स्वभाव का हो सकता है ?

२३

"यारो जिन्दगी का मजा तो बिलकुल ही जाता रहा।" करमसिंह ने सिर खुजलाते हुए उजागरमल से कहा।

"यही बात तो यार मैं भी कहना चाहता था। हम लोग बड़े चालाक और दुनियादार बनते थे। हम से तो वह अमरनाथ ही चलता पुर्जा निकला, देखा कैसी नफीरी-सी दबाई है उसने। मेरा यार औरत के मामले में बड़ा ही भाग्यशाली है! पता नहीं भगवान् ने उसके शरीर में कैसा शहद लगाकर भेजा है कि एक न एक नवेली हर समय मुहाल की मक्खी की तरह चिपटी ही रहती है उससे। कमला ने साथ छोड़ा तो उस बुद्धू पत्रकार की छोकरी पर जाकर कब्जा जमा लिया।" उजागरमलजी बोले।

"मैं कहता हूँ यार यह है बड़ा घाग इस मामले में। 'इन्सान' कार्यालय का तो यह मालिक ही बन बैठा है।" करमसिंह ने कहा।

"यह कैसे भला?" उजागरमल ने आश्चर्य से पूछा।

"यह कैसे क्या? मैंने सुना है कि इस कार्यालय में जितना भी रुपया लगा हुआ है वह सब उसी का है जिस पर अमरनाथ ने डोरे डाले हैं। वह बुद्धू पत्रकार महाशय तो यों ही हैं। यों ही एक दिन टापते रह जाएँगे। तुम लिख लो आज की मेरी इस बात को।" दावे के साथ छाती पर हाथ मारकर करमसिंह ने कहा।

"तब तो अमरनाथ बड़ा चालाक निकला और मैंने सुना है कि रमेश आजकल यहाँ हैं भी नहीं। वह अपना सब कार्य-भार इसी को सौंपकर मंसूरी हवा खाने चले गए हैं। अब अमरनाथ उन महाशय को ऐसी हवा खिलाएगा कि जिन्दगी भर हवा खाएगा बेचारा।" रमेश बाबू के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उजागरमलजी ने कहा।

"ऐसे ही तो होते हैं काठ के उल्लू। औरत का क्या यकीन? ढुलमुल चीज है। जब तक पहलू में रहे अपनी है, जहाँ पहलू से निकली कि बस पराई हुई। फिर उसे कोई नहीं बचा सकता। साक्षात् परमात्मा भी नहीं रोक सकता।" करमसिंह बोला।

"लेकिन यार अमरनाथ को तो हम ऐसा आदमी नहीं समझते थे कि जिस थाली में खाएगा उसी में छेद करेगा। यदि उसने ऐसा किया है तो विश्वासघात किया है।" उजागरमलजी ने खेद प्रकट करते हुए कहा।

"तुम कहते हो—यदि उसने ऐसा किया—मैं कहता हूँ कि वह कर गुजरा। वह बड़ा ही सच्चा दाव लगाने वाला खिलाड़ी है। तुम देखते ही रह जाओ और उसकी गोट पार बोले। उसकी शतरंज की चालों को समझना बड़ा कठिन है उजागर

भैया ! तुमने कमला के मामले में सब कुछ देख ही लिया था। क्या हाथ पल्ले पड़ा यार लोगों के ? कभी प्यार की नजरों से देखने भी नहीं दिया कम्बख्त ने उसे हमारी ओर। बड़ा ही घुन्ना किस्म का आदमी है और आजकल तो वह हम लोगों से मिलना भी अपना अपमान समझता है। अपमान क्या फुर्सत ही नहीं होती उसे उस छोकरी के साथ इधर-उधर की बातें हाँकने से।" करमसिंह बोला।

"मजा-ही-मजा है यार उसका तो। एक पहलू में कमला है और दूसरे में वह नई छोकरी। यह सब किस्मत वालों को ही नसीब होता है। हम उस पर क्या नाराजगी दिखलाएँ जब हमारी किस्मत में ही वह मजा नहीं लिखा। करमसिंहजी, हमारी तो शक्ल कुछ ऐसी बेडौल हो गई है कि कोई छोकरी हाथ ही नहीं रखने देती और तुम्हारी वेषभूषा के जंजाल से वह डर जाती है। मैं कहता हूँ कि यदि तुम बाकायदा बन ठन कर रहो तो तुम्हें तुम्हारे पत्र के लिए विज्ञापन भी अधिक मिल सकता है और ये छोकरियाँ भी तुम्हें प्यार भरी दृष्टि से देख सकती हैं। मैं सच कहता हूँ और तुम्हीं से पूछता हूँ कि क्या अमरनाथ में कुछ सुरखाब के पर लगे हैं या वह तुमसे कुछ अधिक सुन्दर है ? ये आजकल की छोकरियाँ ऊपरी टीप-टाप पर जान देती हैं। यह नहीं देखतीं कि इसके अन्दर क्या है ? तुम देख ही रहे हो कि मुझ जैसे ठोस आदमी को भी एक मामूली-सी छोकरी मिलनी असम्भव हो रही है। यदि मेरा शरीर भी इस बुरी तरह तन्दुरुस्त न हो गया होता तो क्या तुम समझते हो कि मैं इतने दिन तक यों ही खाली फिरता रहता। लेकिन भाई भाग्य ! क्या करें ? उसके सामने तो किसी की कुछ नहीं चलती।" एक आह भरकर उजागरमलजी फिर बोले :

"लाख करे इन्सान तो क्या होता है ?
होता है वही जो मंजूरे खुदा होता है।"

दोनों की इस प्रकार गप्पें लड़ रही थीं कि सामने से दोनों को अमरनाथजी आते दिखलाई दिए। उनके साथ में रशीदा भी थी और रशीदा का हाथ अमरनाथजी ने अपने हाथ में लिया हुआ था। करमसिंह ने उजागरमल के कान में कहा, "यार चीज तो जोरदार है। लाजवाब चीज है यह भी !" इतने में अमरनाथजी और निकट आ गए और उन्हें देखकर उजागरमलजी तथा सरदार करमसिंहजी ने खड़े होकर उनका स्वागत करते हुए साथ से कुर्सियाँ खींच लीं।

"भाई अमरनाथजी ! आप तो ईद के चाँद ही हो गए। 'इन्सान' कार्यालय के मैनेजर क्या बने कि पुराने मित्रों से मिलना-जुलना ही छोड़ दिया।" करमसिंह ने बैठते हुए जरा मुस्कुराकर दाढ़ी पर हाथ फेरकर व्यंग्य के साथ कहा।

"हाँ भाई यह शिकायत तो मेरी भी है आप से।" उजागरमलजी ने अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए कहा।

"मैं अच्छी तरह बैठ भी नहीं पाया था कि आप लोगों ने अपनी-अपनी शिकायतों की झड़ी लगा दी। इससे यह स्पष्ट है कि मेरे आने से पूर्व भी आप लोग मेरे ही विषय में बात-चीत कर रहे थे। कहिए सच कह रहा हूँ ना।" मुस्कुराकर अमरनाथजी बोले।

"बिलकुल सच!" करमसिंह ने मुस्कुराकर कहा और बैरे को काफी लाने का आर्डर दिया। "आपकी उम्र बहुत बड़ी है अमरनाथजी! हम सचमुच ही आपको जब भी यहाँ आते हैं याद किया करते हैं। जब हम दोनों बैठ जाते है तो देखते हैं कि सामने की दोनों कुर्सियाँ खाली रह गईं!" तनिक आँखें चढ़ाकर उजागरमलजी बोले।

"लीजिए आज ये दोनों कुर्सियाँ फिर भर गईं।" कहकर अमरनाथजी बोले, "और कहो भाई काम-काज कैसा चल रहा है?"

"आपकी जाने बला।" फिर ताने के साथ करमसिंहजी बोले।

"आज कुछ सरदारजी का पारा अधिक ऊपर मालूम देता है। क्या पत्र बन्द हो गया आपका? मैंने उड़ती-सी खबर सुनी थी। मैं पहले ही कहा करता था आपसे कि केवल विज्ञापन के बल पर पत्र चलाना मूर्खता है और उस समय तुम मेरे कहने को मजाक समझते थे। फिर अब क्या सिलसिला किया हुआ है?" सहानुभूति के साथ अमरनाथजी ने पूछा।

"किया क्या हुआ है, बेकार हैं। पत्र बन्द हो गया। प्रेस वालों का बिल रुक गया। एक बार उसने उधार छापा, दो बार छापा, आखिर बेचारा वह कहाँ तक छापता जाता? उसने भी मना कर दिया। पास में कागज के लिए भी पैसा नहीं रहा। विज्ञापन दाताओं ने आँय-बाँय-शाँय बतलानी प्रारम्भ कर दी। पहले तो विज्ञापन मिलना ही बन्द हो गया और फिर यदि किसी ने कृपा करके दे भी दिया तो उसके पास पेमेण्ट के लिए पैसा नहीं निकला! दो-चार महीने तक तो वह यों ही टालता रहा और फिर अन्त में जब चार-पाँच महीने पीछे वहाँ गए तो डब्बा गोल निकला; पाटिया ही उलट दिया। वहाँ देखा कि पहले डिस्ट्रीब्यूटर के बजाए दूसरे डिस्ट्रीब्यूटर का बोर्ड लटका हुआ था।" करमसिंह बोले।

"तो यह दशा खराब हुई सिनेमा के पत्रों की?" फिर उजागरमलजी की तरफ मुँह करके बोले, "आपका पत्र तो बन्द नहीं हो सकता, यह मैं जानता हूँ? हिन्दुस्तान में जब तक एक भी पत्र चलेगा उस समय तक उजागरमलजी का पत्र अवश्य चलेगा।" यह बात अमरनाथजी ने इतनी गम्भीरतापूर्वक कही कि उजागर-मलजी का दिल बाग-बाग हो गया। अपनी सफलता और बड़ाई उनसे सँभाले नहीं सँभली।

"यह सब आपका आशीर्वाद है अमरनाथजी !" कृतज्ञतापूर्वक उजागरमलजी कह तो गए परन्तु साथ-ही-साथ उन्हें दिल में बहुत खटका कि उन्होंने उस नई छोकरी के सामने अपने को कितना हल्का कर लिया।

करमसिंह और उजागरमलजी बातें तो अमरनाथजी से कर रहे थे परन्तु उनकी कनखियाँ टिकी हुई थीं रशीदा के मुख पर—क्या लाजवाब गुलाब-सा मुख था, कटीली आँखें, ऊँचा मस्तक, सादा परन्तु कैसा सौन्दर्य फूटा पड़ रहा था उस सादगी से—दोनों अपना-अपना दिल मसोस कर रह गए। साथ-साथ दिल में सोचते थे कि कितना बदमाश है यह अमरनाथ भी। व्यर्थ इधर-उधर की बकवास कर रहा है, मत-लब की बात एक नहीं करता। इतनी देर हो गई और अभी तक इस लड़की से हमारा परिचय कराने की आवश्यकता ही इसने नहीं समझी।

रशीदा यह सब देखकर मन-ही-मन मुस्कुरा रही थी। करमसिंह और उजागर-मलजी की झपटें दो तीतरों के समान हो रही थीं, जिन्हें देखकर वह यह पूरी तरह से अनुमान लगा चुकी थी कि ये क्या हैं और उनसे किस प्रकार की बातें करनी उचित हैं। रशीदा ने उन्हें उपहास की सामग्री समझा और निश्चय कर लिया कि यदि अमरनाथजी ने उनसे उनका परिचय करा भी दिया तो उनसे कोई भी गम्भीर बात करने की आवश्यकता नहीं।

इतने में कॉफी आ गई और रशीदा ने चार कप तैयार किए। लड़की के हाथ से बनाई हुई कॉफी अथवा कॉफी में क्या आनन्द आता है यह पीने वाला ही जान सकता है। करमसिंह और उजागरमलजी को ऐसे अवसर जीवन में कब मिलते थे जब कि किसी सुन्दर नारी के करों से उनकी प्याली तैयार की जाए। कॉफी पीने से पूर्व अमरनाथजी बोले, "कॉफी पीने से पूर्व परिचय होना मैं आवश्यक समझता हूँ। आप दोनों ही मेरे पुराने मित्रों में से हैं और साथ-ही-साथ साथी पत्रकार भी हैं। सिनेमा-क्षेत्र से ही आप लोगों का विशेष सम्बन्ध है। करमसिंह की अपेक्षा उजागरमलजी अपने कार्य में अधिक निपुण हैं, इसलिए आपका पत्र खूब बढ़िया आर्ट पेपर पर छपता है, यह दूसरी बात है कि वह छपता थोड़ा ही है। करमसिंहजी के विज्ञापन लाने के मार्ग में जहाँ तक मैं समझता हूँ इनकी वेषभूषा आ जाती है। मैंने एक बार इनसे कहा था......"

"आपने एक बार कहा था और मैं अभी-अभी कह रहा था।" जरा जोर से पेट पर हाथ फेर कर उजागरमलजी कह उठे। "मैं कहता हूँ कि आपका फेस ही केनवैसिंग के योग्य नहीं है। यह तो अकाली दल में भर्ती होने के काबिल है। चले हैं पत्रकार बनने और लगते हैं पूरे खालसा सिपाही से। पत्रकार का क्या मजहब, क्या धर्म ? भाई ! वह धर्म-कर्म का युग चला गया। पत्रकार स्वतन्त्र है। फिर वह भला

इस प्रकार व्यर्थ के बन्धन में क्यों फँसे ? क्यों देवीजी ! बिला परिचय के ही मैं आपकी राय लेना चाहता हूँ।" उजागरमलजी बोले।

"आपका कथन सोलह आने सत्य है।" रशीदा ने बहुत गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

रशीदा का उत्तर पाकर उजागरमलजी में जान पड़ गई। वह बैठे-बैठे ही उछल पड़े।

"जरा धीरे से उछलिए, कहीं कॉफी हाउस वालों की कुर्सी न टूट जाए" अमरनाथजी बोले।

"आपने मेरे मुँह की बात ले ली अमरनाथजी ? मैं अभी-अभी आपके आने से पहले इन्हें यही समझा रहा था। बात यह है कि इनका इस प्रकार का बेरोजगार रहना मुझे अखरता है। मैं सहन नहीं कर सकता इनकी कठिनाइयों को।" उजागर-मलजी बोले।

"राय तो आपकी भी नेक है।" रशीदा ने कहा, "एक सच्चे मित्र को जैसी राय देनी चाहिए वही आपने दी है और एक मित्र ही इस प्रकार की राय देने का साहस भी कर सकता है।" रशीदा ने कहा।

इसके पश्चात् अमरनाथजी ने रशीदा का परिचय दिया। "आप 'इन्सान' कार्यालय के संस्थापक श्री रमेश बाबू की बहन हैं और इस प्रकार मेरी मालकिन हुईं।" 'मालकिन' शब्द सुनकर रशीदा मुस्कुरा दी और इस मुस्कुराहट का आनन्द अमरनाथजी की अपेक्षा सरदार करमसिंह और उजागरमलजी ने अधिक लिया।

कॉफी पीकर चारों व्यक्ति विदा हुए। रशीदा तथा अमरनाथजी अपने कार्यालय को चले गए। दूसरे दिन प्रातःकाल जब अमरनाथजी और रशीदा चाय पर बैठे तो चपरासी ने आकर सूचना दी कि कोई करमसिंह सरदारजी आए हैं। करमसिंह अमरनाथजी का कक्षा का साथी था इसलिए उसके प्रति उनके दिल में सहानुभूति भी थी।

चपरासी से कहा, "उन्हें अन्दर ले आओ।"

एक ही क्षण बाद उन्होंने क्या देखा कि एक अपटुडेट नौजवान करमसिंह उनके सामने खड़ा था। पहले तो उन्हें भ्रम हुआ, परन्तु अमरनाथजी की आँखें अधिक देर तक धोखा न खा सकीं। उन्होंने करमसिंह को बचपन से देखा था।

"तुम तो एकदम अपटुडेट हो गए !" अमरनाथजी कह उठे और रशीदा करम-सिंह के मुख पर देखकर मुस्कुराई। वह बोली, "बहुत ठीक किया आपने। अब आप की शक्ल एक मनुष्य जैसी लगती है।"

कुछ ठहरकर रशीदा ने पूछा, "अमरनाथजी क्या कभी आपने यह भी सोचा

है कि जानवर और इन्सान में क्या अन्तर है ? मैं समझती हूँ कि शायद आपको कभी यह विचार करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। अन्तर केवल यही है कि जानवर को प्रकृति जैसा बनाती है वह वैसा ही रहता है। वह अपनी वेषभूषा में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं कर सकता और इन्सान कर सकता है। यदि कोई इन्सान भी ऐसा ही हो जाए कि अपनी वेषभूषा में परिवर्तन न कर सके या न करना चाहे तो उसे आप क्या कहेंगे ?"

अमरनाथजी मुस्कुरा दिए और करमसिंह ने उन शब्दों को अमृत-वर्षा समझा। करमसिंहजी अभी तक उसी प्रकार खड़े थे। रशीदा बोली, "आप खड़े क्यों हैं करम-सिंहजी ! बैठिए ना ! मैंने आपके लिए एक कार्य सोच निकाला है। मैं जानती हूँ कि आजकल आप आर्थिक संकट में हैं, सो उसकी चिन्ता आप न करें। आज का युग सह-योग का युग है। अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग अब नहीं चलेगा। मैंने रात अमरनाथजी से भी आपके विषय में बातचीत की थी। आपको मैं विज्ञापन-विभाग सौंप सकती हूँ यदि आप चाहें और वेतन आपको दो सौ रुपया मासिक मिलेगा।

"दो सौ रुपया ?" आश्चर्य से करमसिंह ने कहा; क्योंकि दो सौ तो कभी उन्हें अपने पत्र में भी नहीं बच पाए थे। करमसिंह चिन्तामुक्त हो गए और उन्होंने मन में सोच लिया कि वह अब 'इन्सान' के लिए अपनी जी-जान लड़ा देंगे।

"कहिए स्वीकार है आपको ? यदि स्वीकार हो तो मैं अभी आपके लिए एपाइण्टमेण्ट-लैटर टाइप कराए देती हूँ।" रशीदा बोली।

"स्वीकार है।" कृतज्ञतापूर्वक करमसिंह ने कहा और अमरनाथजी की तरफ बहुत ही दीन दृष्टि से देखा। यह सब दया जो उनके ऊपर हो रही थी वह जानते थे कि अमरनाथजी के ही कारण थी।

"भाई करमसिंहजी मुझे बदनामी न आए, इतना ध्यान रखना और हर प्रकार की सुविधा यहाँ आपको रहेगी। कार तुम्हारे पास रहेगी विज्ञापन दाताओं के पास जाने के लिए। साथ ही मैं तुम्हें एक सूचना और दे दूँ कि कार्यालय की बिल्डिंग अपनी तैयार हो रही है और वहीं हमने कार्यकर्त्ताओं के लिए मकान बनवाए हैं। वहाँ आप लोगों को मकान भी सस्ते किराए पर मिल सकेंगे। यह कार्यालय कार्यकर्त्ताओं का अपना कार्यालय है। किसी को यदि किसी समय कोई शिकायत हो तो उसे चाहिए कि वह उसे मन में न रखे और सीधा आकर हम से कह डाले जिससे उसका प्रबन्ध किया जा सके।"

"आप विश्वास रखिए यही होगा।" दृढ़तापूर्वक करमसिंह ने कहा।

रशीदा ने टाइपिस्ट को एक नियुक्ति-पत्र टाइप करने का आदेश दिया। थोड़ी देर में नियुक्ति-पत्र टाइप होकर आ गया और करमसिंह के देखते-देखते ही अमरनाथजी

ने उस पर हस्ताक्षर करके करमसिंहजी के सुपुर्द कर दिया।

"दाढ़ी और केश कटवाने का यह इनाम है।" मजाक में अमरनाथजी ने चलते समय कहा, "और हाँ याद रखना कि इस कार्यालय का राज उजागरमलजी के भी पास न जाने पाए। मैंने तुम्हें अपना परम मित्र और विश्वासपात्र आदमी समझकर इस उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर नियुक्त किया है।" अमरनाथजी बोले।

"आप विश्वास रखिए, यही होगा।" करमसिंहजी ने फिर पुराना वाक्य दुहराया और वह चाय पीकर दफ्तर में अपनी कुर्सी पर जा बैठे।

× × ×

चीन कम्यूनिस्ट पार्टी के हाथों में क्या आया कि दुनिया भर के कम्यूनिस्ट नामधारियों के मन में अपने-अपने देशों की राज्य सत्ताएँ हड़पने के लड्डू फूटने लगे। भारत पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना न रह सका और बंगाल, हैदराबाद, मद्रास इत्यादि प्रदेशों में इसका प्रभाव बहुत अधिक हुआ।

दिल्ली भारत की राजधानी ठहरी। यहाँ पर भी सिर उठाया गया परन्तु यहाँ सरकार की पैनी दृष्टि ने चुन-चुनकर कुछ ऐसे व्यक्तियों को नजरबन्द करना प्रारम्भ कर दिया कि जिससे पार्टी खिलाफ कानून भी न ठहराई जाए और ये उपद्रवकारी कार्यवाहियाँ भी बन्द हो जाएँ।

'इन्सान' के मुख-पृष्ठ पर एक लेख छपा "देशद्रोही कम्यूनिस्टों की भारत में असफलता।" लेख बहुत कटु था और उसमें कम्यूनिस्टों को काफी जोर से लताड़ा गया था। रमेश बाबू की लोह लेखनी द्वारा लिखा हुआ लेख एक बार तो कम्यूनिस्टों को तड़पा देता था। श्री रमेश बाबू क्षमा कांग्रेस-सरकार को भी नहीं करते थे, परन्तु कम्यूनिस्टों के पीछे इन दिनों हाथ धोकर पड़े थे। लेख की हर पंक्ति चूम लेने योग्य थी। अमरनाथजी उस लेख को बड़े झूम-झूमकर पढ़ रहे थे, "चन्द स्कूलों के नादान बच्चों को फुसलाकर या ट्राम की सड़कों पर साधारण पटाखे रखकर कांग्रेस-सरकार को समाप्त नहीं किया जा सकता। खिसियाई बिल्ली की भाँति अपने ही बालों को नोंचने से काम नहीं चलेगा। काम चलेगा कर्तव्य-क्षेत्र में उतरने से। कर्तव्य-क्षेत्र में बलिदान देना होगा गांधीजी की भाँति। यह राज्य खड़ा है शहीदों की वेदी पर, गांधी के बलिदान पर। इसकी नींव काफी सुदृढ़ है। इस विशाल भवन को गिराने के लिए ये पटाखे काम नहीं देंगे, इसके लिए न मशीनगनें चाहिएँ, न तोपें चाहिएँ, ये सब सफल नहीं हो सकेंगी। ये अस्त्र-शस्त्र सफल हो सकते हैं उस राज्य को उखाड़ फेंकने में जो इनकी सहायता से स्थापित किया गया हो। यह राज्य तोपों से नहीं बना, यह बना है सत्य और अहिंसा से। इसे मिटाने के लिए सत्य और अहिंसा

का ही आश्रय लेना होगा। झूठ और फरेब का नहीं, मक्कारी और लूटमार का नहीं; हिंसा और बरबादी का नहीं। हमें बरबाद होकर आबाद होने की आवश्यकता नहीं है। हम आबाद हैं और आबाद ही रहेंगे। हम संसार के संघर्ष में मरहम बनना चाहते हैं, आग बुझाने वाले बनना चाहते हैं, घाव बनना नहीं चाहते, आग लगाने वाले बनना नहीं चाहते।

"आज देश को जो पार्टी संघर्ष का सबक सिखलाती है वह स्वार्थी है, धोखेबाज है, मक्कार है। उन लोगों में विदेशी जासूस मिले हुए हैं जो अपनी मातृभूमि को आतंक और अशान्ति के पैरों में कुचलवाने के लिए कटिबद्ध हैं। हमें उन दुश्मनों का सीना तानकर सामना करना है और ऐसे विदेशी जासूसों को खोज-खोजकर जनता के सम्मुख रखना है कि ये हैं वे नीच विदेशी जासूस जो मजदूर के नाम पर, गरीबों के नाम पर जनता को धोखे में डालते हैं। उनसे पूछा जाएगा कि यदि तुम्हें भूख की चिन्ता है तो क्यों नहीं तुम अधिक अन्न उपजाने की योजनाओं में काम करते, यदि तुम्हें मजदूरों का ध्यान है तो तुम उनसे हड़ताल करके भूखों मर जाने के लिए और देश में अधिक व्यापक गरीबी फैलाने के लिए क्यों कहते हो? हावड़ा हवाई जहाज के अड्डे पर बम डालने से मजदूर का क्या भला होगा, गरीब का कैसे पेट भरेगा?"

"खूब लिखा है रशीदा! खूब लिखा है। कमाल कर दिया है। आज के इस लेख से कम्यूनिस्टों में काफी चहल-पहल रहेगी। आज कोई भी कॉमरेड ऐसा न होगा जो 'इन्सान' के इस लेख को न पढ़े।" अमरनाथजी बोले।

"मेरा भी यही मत है। भैया की कलम में वाकई जादू है।"

फिर कितनी ही देर तक रशीदा और अमरनाथजी में इस लेख के विषय में बातचीत होती रही। सन्ध्या समय छः बजे कार्यालय बन्द कर दिया गया और दोनों घूमने के लिए निकल पड़े। अमरनाथजी ने एक पत्र लिखकर रमेश बाबू से कार्यालय के लिए एक कार खरीदने की अनुमति ले ली थी। अब अमरनाथजी और रशीदा दोनों ही कार में घूमने जाया करते थे। कार चलाना अमरनाथजी को आता था और अब रशीदा ने भी सीख लिया था।

२४

" 'इन्सान' पत्र का नया अंक देखा आपने?" कमला बोली।

"नहीं, अभी नहीं देखा।" आजाद ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"उसमें हमारी पार्टी के खिलाफ जहर उगला गया है। पाजी कहीं के। पहले मुझे इसी पत्र को देखना है। मैंने आज एक व्यक्ति भी खोज निकाला है इस कार्य के लिए।" कमला बड़े विश्वास के साथ कह रही थी, "मैंने सुना है सरदार करमसिंह वहाँ के एडवरटाइजमेण्ट के इन्चार्ज हो गए हैं।"

"तब फिर क्या हुआ?" आश्चर्य से आजाद ने कमला के मुख पर ताका और बड़ी ही गूढ़ दृष्टि से देखा कि मानो उन सरदार करमसिंह के अन्दर कोई गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है।

"आज मैं आपको एक पुरानी कहानी सुनाने लगी हूँ आजाद बाबू! उसका सम्बन्ध मेरे गत जीवन से है।" कमला मुस्कुराकर बोली।

यह सुनकर आजाद भी दिलचस्पी के साथ सुनने के लिए बैठ गया। कमला कहने लगी, "मैं, मिस्टर अमरनाथ, सरदार करमसिंह और लाला उजागरमलजी एक क्लास में पढ़ते थे। चारों को ही पत्रकार बनने का शौक था, परन्तु मेरी रुचि इस ओर से कुछ कम हो गई थी। पत्र को साधन रूप में अपने हाथ में तो अवश्य रखना चाहती थी परन्तु अपनी राजनीतिक एक्टीविटीज से मुझे इतना अवकाश न मिलता था कि मैं कुछ लिखने-पढ़ने की ओर भी ध्यान दे सकूँ।

अब बात के उस पहलू को जाने दीजिए और दूसरे पहलू पर आईए। मैं अमरनाथजी को प्रेम करती थी और उनका रुझान भी मेरी ओर कम नहीं था। वह मुझसे मिलने आया करते थे और मैं उनसे मिलने जाया करती थी। अपनी धुन के वह भी पक्के थे और अपनी धुन की मैं भी पक्की थी। इसी समय एक उपहास का क्रीड़ा-कलाप भी हमारे साथ-साथ चल रहा था और वह यह था कि सरदार करमसिंहजी तथा उजागरमलजी भी मुझे प्रेम करते थे और दोनों अमरनाथजी से चिढ़ा करते थे।

यह अब पुरानी बात हो गई। जीवन ने करवट बदली, विचार-धाराओं में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया और मिले हुए दिल बिछुड़ गए तथा अनजाने दिल न जाने कितनी दूर से आकर मिल गए?" कहकर कमला मुस्कुरा दी और कमला का हाथ अपने हाथ में प्यार से लेकर सहलाते हुए आजाद भी।

"करमसिंह को यह पता है कि मैं आजकल अमरनाथजी से नहीं मिलती और उसे यह भी मालूम है कि आजकल अमरनाथजी का रशीदा नाम की लड़की के साथ प्रेम चल रहा है। इसलिए इस समय यदि मैंने थोड़ी भी प्रेम की कृपा-कोर से करमसिंह को देख लिया तो बस जानलो कि कार्यालय का पूरा राज मेरे पास आ जाएगा।" आँखें मटकाकर कमला बोली।

"चाल तो अच्छी है यदि यह सफल हो जाए।" आजाद ने कहा।

"सफल सोलह आने होगी। मुझे पूर्ण विश्वास है और मैं जानती हूँ कि करम-

सिंह कितना मूर्ख है। उस पर संसार का चाहे और कोई जादू असर न करे परन्तु मेरा जादू अवश्य असर करेगा। मैं उसे पालतू कुत्ते की तरह नचाकर दिखाऊँगी।" कमला बोली।

"मेरी इच्छा शक्ति तुम्हारी सहायक हो।" आजाद ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

कमला के हृदय में ज्वाला दहक रही थी। जब से 'इन्सान' का लेख पढ़ा था उसका दिल चाहता था कि उसी समय जाकर अमरनाथजी को गोली से उड़वा दे और उस कार्यालय में मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दे, परन्तु पिंजरे में फँसा हुआ पंछी जिस प्रकार पर खूब फड़फड़ाने पर भी बाहर नहीं निकल पाता वही दशा इस समय कमला की थी। आज इस मकान से निकले कई दिन हो गए थे।

बैठे-बैठे अचानक उस दिन पुलिस के चक्कर से बचने का प्रसंग छिड़ गया। किस प्रकार वह बच सकी, बोली, "बस मैंने घर के अन्दर प्रवेश किया कि पुलिस आ गई। परन्तु क्या कहूँ आपसे कि शान्ता बहन ने भी इतनी खूबी के साथ पुलिस से बातें कीं कि कोई ताड़ नहीं सका।"

"तो क्या बातें करने में तुम्हारी शान्ता बहन तुमसे भी अधिक चतुर है?" आजाद ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"हाँ," कमला बोली, "उनकी बातों में बहुत गाम्भीर्य होता है। उस दिन उन्होंने मुझे केवल इसलिए बचा लिया कि वह मुझसे स्नेह करती हैं; परन्तु वास्तव में उनके मन को बड़ा भारी खेद हुआ होगा।" कमला ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"वह क्यों?" आश्चर्य के साथ आजाद ने पूछा।

"वह इसलिए कि वह सैद्धान्तिक रूप से मेरे विरुद्ध हैं।"

"अर्थात् कम्यूनिस्ट नहीं हैं?" आजाद ने पूछा।

"हाँ, यही कहना चाहिए। परन्तु मुझे कम्यूनिस्ट न बनने के लिए भी उन्होंने कभी नहीं कहा। वह विचारों की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त पर विश्वास रखती हैं। गहन-गम्भीर एक ठोस पत्थर की भाँति उस मकान में इस प्रकार पड़ी रहती हैं कि मानो उनकी कोई अमूल्य वस्तु खो गई है और अब उसे पाने की आशा उन्हें इस जीवन में नहीं रही है।" कमला गम्भीर होकर बोली।

"तब तो तुम्हारी शान्ता बहुत ऊँचे विचारों की मालूम देती हैं। हमारी भी एक शान्ता बहन थी कमला!" आँखों में आँसू भरकर आजाद ने कहा।

"सच!" उत्सुकतापूर्वक कमला बोली।

"हाँ! वह शान्ता भी एक अमूल्य रत्न थी। मैंने उसे गुण्डों के बीच से अपनी जान हथेली पर रखकर रिवाल्वर की गोलियों के सहारे निकाला था और इस प्रकार उसे बचाकर भारत भेजा था। उसी को बचाने के लिए मुझे दो मुसलमानों को मौत

के घाट उतारना पड़ा और इसी अपराध ने मुझे अन्त में जेलखाने की हवा खिलाई। वह शान्ता भी कहीं दिल्ली में ही होगी। मैं उससे मिलना चाहता हूँ कमला!" आजाद बोला।

कमला कुछ देर शान्त रही, मुख से एक शब्द भी न बोली, परन्तु उसे अचानक उस दिन का शान्ता का आजाद के नाम पर चौंकना याद आ गया और तुरन्त उसका मन कह उठा कि हो न हो अवश्य कुछ रहस्य है इसमें।

"मैं तुम्हारी शान्ता बहन से मिलना चाहता हूँ कमला! यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो हम दोनों वहाँ चलें?" बहुत उत्सुकतापूर्वक आजाद ने कहा।

कमला मुस्कुराकर बोली, "इसका अर्थ यह है कि जिस शान्ता को आप खोज रहे हैं वह वही हैं जो मेरी बहन हैं?"

"खुदा करे वही हो।" आजाद ने सरल भाव से कहा।

"नौनसैंस खुदा! खुदा क्या? आजाद साहब आपके अन्दर से भी यह दकियानूसीपन न जाने कब जाएगा? जहाँ कोई तनिक भावुकता की बात आई कि बस खुदा और अल्लाह का आश्रय खोजने लगते हो। मैं कहती हूँ कि यह सब गधापन है, जहालत है। कैसा खुदा, किसका खुदा, खुदा आखिर है क्या बला? सब व्यर्थ की बकवास है इन मुल्लों की। खाने-कमाने का धन्धा है। दुनिया को लूटने-खसोटने और उसकी आँखों में मिर्चें झोंकने का जाल है। हम लोगों का कर्तव्य है कि हमसे इन बदमाशों का जितना भी भण्डा फोड़ किया जाए उतना करें।" कमला गर्म होकर बोली।

आजाद अब इस प्रकार के व्याख्यान सुनने का आदि हो गया था, इसलिए वह इस बात पर ध्यान न देकर कि कमला क्या कर रही है, इस बात पर अधिक ध्यान दिया करता था कि कमला के इस सुन्दर छोटे से मुख से इतनी बड़ी-बड़ी बातें निकल कर कितनी सुन्दर प्रतीत होती हैं? जिस प्रकार पिचकारी के छोटे से मुँह में से पानी निकलकर चारों ओर को फैल जाता है वही दशा कमला के मुख की भी थी। वह प्यारा मुखड़ा आजाद पर बस देखते ही बनता था।

"तुम अभी तक खड़ी नहीं हुई कमला!" आजाद ने तैयार होकर कहा।

"तो चलना अवश्य है?" कमला ने उसी तरह मुँह बनाकर पूछा। "पुलिस बुरी तरह से हम लोगों की खोज में है, फिर उस दिन उन्होंने मुझे बचा लिया था और यदि आज उन्होंने हम लोगों को पुलिस के हवाले कर दिया तब?"

"ऐसा नहीं होगा।" आजाद ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"इतना विश्वास है?" कमला मुस्कुराकर बोली।

"हाँ" कहने में कुछ सोचकर आजाद वोला, "तुमने एक दिन मुझ से कहा भी

तो था कि वह लाहौर से आई हैं।"

"यह तो मैं अब भी कहती हूँ, परन्तु लाहौर से तो कई शान्ता आ सकती हैं। उदाहरण के लिए दूर न जाइए। उन्हीं के पास उनकी एक छोटी बहन है और उसका नाम भी शान्ता ही है और उसे वह छोटी शान्ता कहकर पुकारती हैं।"

"छोटी शान्ता !" कहकर आजाद उछल पड़ा। "मिल गई, शान्ता मिल गई, बिला खोज किए ही मिल गई। कमला जल्दी करो, कहीं ऐसा न हो कि हमारे वहाँ पहुँचने से पहले ही वह वहाँ से कहीं चली जाए !" आजाद बोला।

"क्या बचपन की बातें करने लगे आजाद बाबू ! वह कोई मेहमान नहीं हैं, वह किसी होटल में नहीं ठहरी हुई हैं, उनका अपना घर है। वह कन्या विद्यालय बंगाली मार्केट में हैडमिस्ट्रेस हैं।" कमला बोली।

"कुछ भी सही" उत्सुकतापूर्वक आजाद ने कहा ! "मेरा मन न जाने क्यों उतावला हो रहा है ? तुम शीघ्रता करो कमला !" कुछ शीघ्रता की ध्वनि में आजाद ने कहा।

कमला ने भी समझा कि हो सकता है बात सत्य हो जाए। यदि सत्य हो गई तो क्या ही कहने हैं ? 'इन्सान' कार्यालय की ईंट-से-ईंट भिड़ाकर ही छोड़ूँगी। बच्चू अमरनाथ बाबू का शान्ता के द्वारा वह उल्लू बनवाऊँ कि दिमाग ठिकाने पर आ जाए। कमला के मन में भी प्रसन्नता के लड्डू फूट रहे थे और उसे अपने कार्य की पूर्णता में अब कोई भी किसी प्रकार का सन्देह शेष नहीं रह गया था।

दोनों एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् होकर घर से निकले और बसस्टैण्ड पर, जहाँ पाँच नम्बर बस खड़ी होती है, मिलने का निश्चय किया। यह तै हो गया कि दोनों अपने-अपने पृथक् टिकट लेकर बैठ जाएँगे और माता सुन्दरी रोड़ पर उतर कर सीधे रेलवे लाइन पार करके बंगाली मार्केट में पहुँच जाएँगे। कमला पहले आगे जाकर यह पता लाएगी कि शान्ता अपने मकान पर अकेली ही है अथवा नहीं। तब वह फिर लौट कर आएगी और रेल के खम्बे के पास से आकर आजाद को आने या जाने का संकेत करेगी।

लालकिले के सामने से बस में दोनों सवार हुए जब बस चलने लगी तो हथकड़ी लिए हुए दो सिपाही दौड़कर बस का डंडा पकड़ते हुए ऊपर चढ़ गए और बस-कंडक्टर ने भी उनके आने में कोई बाधा नहीं डाली। गाड़ी को दस कदम आगे चलकर फिर रोका गया और तमाम बस की तलाशी ली जाने लगी। यहाँ पर पुलिस की एक टुकड़ी खड़ी यह तालाशी ले रही थी।

कमला और आजाद सन्न रह गए। दोनों का दिल एक दो बार धड़का, परन्तु फिर दोनों ने मजबूत कर लिया कि क्या भय है ? अधिक-से-अधिक पकड़े ही तो जाएँगे।

उन्हें उसकी चिंता नहीं। तालाशी लेकर दोनों सिपाही नीचे उतर गए और गाड़ी को आगे बढ़ने का संकेत किया। गाड़ी चलने पर पता चला कि कचहरी में से एक कम्यूनिस्ट कैदी पुलिस वालों को झाँसा देकर भाग निकला था। उसी की तालाश में पुलिस परेशान थी और उसी के लिए यह तलाशी ली जा रही थी।

माता सुन्दरी रोड पर दोनों बस से उतर गए और सड़क के दोनों किनारों पर दोनों ने चलना प्रारम्भ किया। थोड़ी ही देर में रेलवे लाइन पार करके वे अपने इच्छित लक्ष्य पर पहुँच गए। कमला ने दूर से देखा कि शान्ता बहन के मकान से अमरनाथजी किसी स्त्री का हाथ अपने हाथ में लिए झूमते हुए निकल रहे थे। तीनों के मुख-मंडल प्रसन्न थे और ऐसा प्रतीत होता था कि मानो तीनों कुछ समय बहुत आनन्दपूर्ण बिताकर घर से बाहर निकले थे। कमला उस स्त्री को देखकर समझ गई कि हो न हो वह वही रशीदा है जिस पर अमरनाथजी डोरे डाल रहे हैं। कमला को रशीदा का रूप-सौन्दर्य देखकर एक बार मन में बड़ी डाह हुई और जी चाहा कि जाकर उसकी छाती में अपना सिर दे मारे और कहे कि, "डायन! तूने यह क्या किया? जिस घर को मैंने इतने प्रेम से बनाया था तूने उस पर अधिकार जमा लिया। तुझे क्या अधिकार था कि तू ऐसा करती?"

कमला की आँखें लाल हो गईं, परन्तु तुरन्त ही उसका उफान उतर गया और उसने आजाद और अमरनाथ दोनों को अपनी दृष्टि की तराजू पर रखकर तोला तो आजाद उसे किसी प्रकार भी अमरनाथजी से हल्का नहीं प्रतीत हुआ। आजाद हर प्रकार भारी था—इस विचार से कमला का सीना कई अंगुल चौड़ा हो गया और उसने गर्व की एक आशापूर्ण श्वाँस ली। अमरनाथजी उसे एक खुदगर्ज, धोखेबाज, डरपोक, फिसड्डी किस्म के आदमी प्रतीत हुए और उनके प्रति कमला के हृदय में न श्रद्धा रही न दया, बल्कि द्वेष और घृणा—नहीं, घृणा उसे अभी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि घृणा हो जाती तो डाह न होती।

कमला को याद आया कि आज शान्ता के स्कूल की छुट्टी थी, इस लिए बातें करने का खूब अवकाश मिलेगा और अपनी बातों के बीच में जिसका आना वह नहीं चाहती थी वह इस समय उसकी दृष्टि के सामने ही आकर जा रहा था। कमला आशा की श्वाँस लेकर मकानों के सहारे-सहारे नीची गर्दन किए आगे बढ़ी और कुछ ही देर पश्चात् शान्ता के दरवाजे पर पहुँच गई। आज कमला ने शान्ता में आश्चर्य-जनक परिवर्तन पाया और वह यह कि वह बहुत ही मधुर कंठ से गुनगुना रही थी। यह गुनगुनाना कमला ने शान्ता के मुख से प्रथम बार सुना था। शान्ता इस प्रकार झूमती कमला को लगी कि मानो उसमें यौवन नये सिरे से फूटा था और उसके आनन्द की सूखी हुई कलियाँ मलयानिल का झोंका खाकर फिर से विकसित हो उठीं।

कमला ने अनुभव किया कि शान्ता के चरणों की प्रत्येक थिरकन में मादकता और मस्ती का संदेश था।

"शान्ता जीजी !" पीछे से जाकर कमला ने कहा और शान्ता के कन्धों पर अपने दोनों हाथ बड़े स्नेह से टिका दिए।

"अरे कमला ! पगली ! तू उस दिन इतनी जल्दी रफूचक्कर हो गई कि मैं तुझे देखती ही रह गई। तेरा पता-ठिकाना कुछ मालूम नहीं था। तेरे 'होम' पर गई तो वहाँ पुलिस का पहरा लगा था, सो कान दबाकर वापस चला आना पड़ा।" शान्ता ने मुस्कुराते हुए कहा।

"खैर तो है ?" कमला मुस्कुराकर बोली, "मैं तो बहन की ताबेदार हूँ, जब जिस काम के लिए आज्ञा करो आधी रात तैयार हूँ।"

"यह तुमसे मुझे आशा है कमला ! परन्तु तुम्हारा मार्ग.........खैर जाने दो इस बात को इस समय।" शान्ता कहते-कहते रुक कर फिर बोली, "तुमने उस दिन आजाद का नाम लिया था। क्या तुम मुझे आजाद से मिला सकती हो ? मैं जानती हूँ कि उनसे मिलने के लिए कहना यह तुम्हारे मार्ग में परेशानी पैदा करेगा, परन्तु सच बात यह है कमला ! कि लाहौर में मेरा एक आजाद भैया था।" और फिर शान्ता चुप हो गई।

यह सुनकर कमला को निश्चय हो गया कि यह वही शान्ता और वह वही आजाद हैं जिनकी एक-दूसरे को तालाश थी। कुछ देर तक तो कमला चुपचाप सुनती रही और फिर एकदम कह उठी, "अच्छा बहन ! यदि मैं तुम दोनों भाई-बहनों को मिला दूँ तो कहो तुम मुझे क्या दोगी ?" मुस्कुराकर कमला तनिक एड़ी उचकाकर बोली।

"देने को तो केवल आशीर्वाद ही है मेरे पास कमला ! परन्तु जब तुम लेना ही चाहती हो तो मैं तुम्हें अपना भैया ही दे दूँगी। आजाद जैसा साथी तुम्हें इस जीवन में प्राप्त नहीं हो सकता। वह एक अमूल्य रत्न है जो न जाने तुमने कहाँ से पा लिया ?" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"मुझे क्या तुम पारखी नहीं समझतीं बहन ? रत्न परखना मैं खूब जानती हूँ।"

"अवश्य जानती हो कमला ! मैं तुम्हारी इस बात पर अविश्वास नहीं कर सकती। तुम्हारी योग्यता के विषय में मैं जब कभी विचारने लगती हूँ तो घंटों बैठी सोचा करती हूँ कि क्या ही विलक्षण बुद्धि दी है भगवान् ने, परन्तु तुम्हारी जिद और सनक भी कुछ कम भयानक नहीं हैं। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे जीवन में कहीं तुम्हारी इन दो आदतों की टक्कर न हो जाए। बड़ा भारी अनर्थ हो जाने की सम्भावना है।" शान्ता गम्भीरतापूर्वक कह रही थी। शान्ता की बातों का कमला पर बड़ा भारी असर

होता था और उसके सामने वह बोल भी नहीं सकती थी। यदि ऊपर वाली बात उसे किसी अन्य व्यक्ति ने कही होती तो उस पर अब तक अनेकों प्रकार के अपशब्दों की बौछार होने लगती। यहाँ तक कि इस बौछार से बचने की शक्ति आजाद बाबू में भी नहीं थी। भगवान् का नाम कमला अपने बीच में आने दे, यह सम्भव नहीं था। 'क्या भगवान्? कैसा भगवान्? किसने देखा है भगवान्? सब बकवास है।' कमला ने कहा होता।

कमला ने इसके पश्चात् मकान के बाहर निकलकर हाथ का संकेत किया और आजाद ने समझ लिया कि संकेत उसे बुलाने के लिए था। आजाद धीरे-धीरे आगे बढ़ा और मकान के पास आकर देखा शान्ता सामने खड़ी थी। आजाद ने शान्ता के सिर पर हाथ रख दिया। शान्ता की आँखों से अश्रु धारा बह रही थी। तीनों व्यक्ति शान्त थे। एक शब्द भी तीनों में से किसी के मुख से नहीं निकला। शान्ता आजाद को घर के अन्दर ले गई। कमला साथ थी।

"छोटी शान्ता कहाँ है?" आजाद ने इधर-उधर झाँकते हुए पूछा।

"वह स्कूल गई है। उसका स्कूल खुला है।" शान्ता ने उत्तर दिया।

"इतना निकट होते हुए भी, एक वर्ष मुझे यहाँ आए हो गया, आज भेंट हो सकी है कमला की कृपा से।" कृतज्ञतापूर्वक आजाद बोला।

"मैं कमला की इस कृपा के लिए आजीवन आभारी रहूँगी।" शान्ता बोली।

फिर इसके पश्चात् आगे पीछे की अनेकों बातें हुईं। किस प्रकार वह लाहौर से दारोगाजी की सहायता से अपने प्राण बचाकर आया—वह सब गाथा आजाद ने सुनाई।

शान्ता बोली, "वहाँ की जेल से पिंड छुड़ाकर आए तो यहाँ आकर तुमने क्या किया? जेल की फाँसी यहाँ भी गले में डाल ली। कमला के मेहमान बनने से इसके साथ ही लटकना पड़ा। चमगादड़ के मेहमान बन गए।" कहकर शान्ता मुस्कुरा दी और कमला भी मुस्कुराए बिना न रह सकी। अपने को चमगादड़ कहलाने वाला मजाक वह और किसी का सहन नहीं कर सकती थी। वह जानती थी कि शान्ता उसे कितना चाहती थी, इसलिए उसका यह उपहास नहीं, स्नेह की पुकार थी, जो अपने प्रियजनों को किसी भी आपत्ति में फँसते देखकर पुकारे बिना नहीं रह सकती। शान्ता जानती थी कि स्वतन्त्र भारत में प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र विचार रखने का अधिकार है। विचारों की अभिन्नता के कारण कोई व्यक्ति किसी का स्नेह-पात्र न बन सके, यह कोई बात नहीं थी। यह ठीक है कि एक ही विचार के व्यक्ति एक जगह एकत्रित होते हैं, परन्तु उसका क्षेत्र पृथक् था। एक का क्षेत्र केवल गृहस्थ है, दूसरे का क्षेत्र बाहर की दुनिया।

शान्ता के विचार कमला के विचारों के सर्वथा प्रतिकूल थे, परन्तु इससे कभी उनके स्नेह में बाधा नहीं पड़ी। शान्ता कमला को उतना ही स्नेह करती थी जितना वह अमरनाथजी को। आजाद और रमेश बाबू के स्थान पृथक्-पृथक् थे।

आज किसी भी राजनीतिक विषय पर बातचीत नहीं हुई, व्यक्तिगत बातें ही इतनी थीं कि उनका ही निपटारा होना कठिन था। बातों-बातों में दो बज गए, यानी पाँच घंटे वहाँ पर आए हुए हो गए। दो बिछुड़े भाई-बहन इतने दिन पश्चात् मिले थे। दोनों का ही मन यह चाहता था कि दोनों आप बीती सब बातें सुना डालें। दोनों ने खूब जी भरकर दुःख-दर्द की कहानियाँ कहीं। कमला जानती थी कि आज इस प्रकार की बातें होंगी, तो वह पहले ही पलंग पर जा लेटी थी। कभी-कभी इन लोगों की बातों के बीच में हाँ हूँ कर देती थी, जिससे ये लोग यह न समझें कि कमला सो रही है। कभी-कभी बीच-बीच में कह बैठती थी, "कमला सो नहीं रही है। सब कुछ सुन रही है जो तुम भाई-बहन मिलकर कमला की बुराई करने पर तुले हो।" इस पर शान्ता मुस्कुराकर कहती, "कमला तुम सो जाओ, तुम्हें बहुत नींद लगी है। मुझे पता है कि तुम कई दिन से सो नहीं सकी हो।"

कमला यह सुनकर दंग रह गई।

"जीजी यह बात तुमने कैसे जानी ?" कमला ने आश्चर्य से पूछा।

"क्यों कमला रानी ! क्या तुम यह समझती हो कि हमें तुम्हारा ध्यान केवल उसी समय तक रहता है जब तक तुम इस कमरे में रहती हो ?" शान्ता बोली।

"यह तो मैं नहीं कहती जीजी ?" कुछ दबे स्वर में कमला बोली।

"कल रात तुम बारह बजकर पच्चीस मिनट पर एडवर्ड पार्क में स्टैचू के सामने जब पेंसिल लेकर हाथ में हिला रही थीं और एक लम्बे से व्यक्ति का इन्तजार कर रही थीं तो मैं तुम्हारी खोज के लिए विशेष रूप से गई हुई थी। एक इन्सपैक्टर को मैं अपने साथ बातें करते-करते बाग के बाहर ले आई थी। वह इन्सपेक्टर यहीं मेरे मकान के पास रहता है। फिर परसों सुबह दस बजे तुम कुदसिया घाट पर बैठी किसी की राह देख रही थीं, तो मैंने मेडेन्स होटल से उधर की ओर जाती हुई पुलिस की टुकड़ी को रोका था।" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

कमला सुनकर अवाक् रह गई। उसे ज्ञान नहीं था कि स्नेह की देवी संसार में और कोई नहीं, शान्ता ही है। किस तरह छाया के समान उसके साथ लगी रहकर उसने कितने अवसरों पर कमला की रक्षा की ? उन्हें यह भी पता था कि कमला दो-तीन दिन से रात को सो नहीं सकी थी। कमला संकोच छोड़कर एक तरफ सो गई और इधर रमेश बाबू के विषय में शान्ता तथा आजाद के बीच बातें छिड़ गईं।

२५

रमेश बाबू के शुष्क जीवन में फिर से कुछ हरियाली-सी आती प्रतीत होने लगी। उनका एकान्तपन तो एकदम समाप्त ही हो गया परन्तु जमघट उन्हें जीवन में पसन्द नहीं था और न ही वह बहुत बातें करने के आदी थे। व्यर्थ बातें करने वाला व्यक्ति उन्हें अरुचिकर था। क्रोध में धैर्य खो देना रमेश बाबू ने नहीं सीखा था। कभी किसी पर झुँझलाते नहीं थे, कभी किसी पर क्रोध नहीं करते थे। सिद्धान्तों पर प्राण तक देने को सर्वदा उद्धत रहते थे। जीवन का पहला लक्ष्य था सिद्धान्त और उनकी मर्यादा के लिए सर्वस्व अर्पण कर देना।

रमेश बाबू की इस अटल चट्टान में प्रेम का स्रोत फूट निकला। जीवन और अधिक नीरस न रह सका परन्तु एक ज्वाला थी रमेश बाबू के हृदय में, वह इतनी भयंकर थी कि जहाँ कभी क्षण भर के लिए भी जीवन में हरियाली आई कि किसी की स्मृति ने सब आशा-चित्रों पर पानी फेर दिया। प्रेम का जो स्वरूप खड़ा होने जा रहा था उसमें अनेकों प्रकार के आकर्षण आ-आकर भी फिर एक गहरा खिचाव पैदा कर देते थे। रमेश बाबू तिलमिला उठे और व्यग्र होकर बाहर बरामदे में घूमने लगे। बरसात का मौसम था, ठण्डी-ठण्डी फुआरें आ रही थीं, खिड़कियों से रमेश बाबू बार-बार अपने माथे और सिर पर पड़ने वाली पानी की बूंदों को पोंछ डालते थे, परन्तु वहाँ की फुहारों से बचकर अन्दर आने को मन नहीं होता था।

"अरे ! राम ! रे ! राम ! मैं तो सब भीग ही गई।" कहते हुए इसी समय रमा ने कमरे में प्रवेश किया, परन्तु रमेश बाबू न जाने किस चिन्ता में फँसे थे कि उन्हें रमा के आने का पता ही न चला।

रमा सीधी जाकर बरामदे में पहुँच गई और बोली, "मैं पूछती हूँ कि आप हैं किस दुनिया में ? इस दुनिया में तो हैं ही नहीं आप ?"

"तुम आ गईं रमा ! चलो अच्छा हुआ। अच्छा बैठो तुम अन्दर और हाँ चाय बनवाओ, मैं अभी आता हूँ। मैं कुछ विचार रहा था कि इतने में तुम आ गईं। प्रश्न मेरे सामने था और मैं हल निकालने में लगा था।"

रमा अधिक कुछ न कह सकी। कभी-कभी मसखरापन रमा भी कर डालती थी, परन्तु हर समय नहीं। वह रमेश बाबू के स्वभाव से खूब परिचित हो गई थी। वह रमेश बाबू को यों ही घूमता छोड़कर चाय बनवाने के लिए चली गई।

"चाय बन चुकी, आपकी मेज पर लग गई—चलकर चाय पी लीलिए।" कुछ देर बाद रमा ने उसी प्रकार बराँडे में घूमते हुए रमेश बाबू के पीछे से जाकर कहा।

रमेश बाबू ने रमा का हाथ धीरे से दबा दिया और मुस्कुराते हुए उसके साथ

शान्ता के विचार कमला के विचारों के सर्वथा प्रतिकूल थे, परन्तु इससे कभी उनके स्नेह में बाधा नहीं पड़ी। शान्ता कमला को उतना ही स्नेह करती थी जितना वह अमरनाथजी को। आजाद और रमेश बाबू के स्थान पृथक्-पृथक् थे।

आज किसी भी राजनीतिक विषय पर बातचीत नहीं हुई, व्यक्तिगत बातें ही इतनी थीं कि उनका ही निपटारा होना कठिन था। बातों-बातों में दो बज गए, यानी पाँच घंटे वहाँ पर आए हुए हो गए। दो बिछुड़े भाई-बहन इतने दिन पश्चात् मिले थे। दोनों का ही मन यह चाहता था कि दोनों आप बीती सब बातें सुना डालें। दोनों ने खूब जी भरकर दुःख-दर्द की कहानियाँ कहीं। कमला जानती थी कि आज इस प्रकार की बातें होंगी, तो वह पहले ही पलंग पर जा लेटी थी। कभी-कभी इन लोगों की बातों के बीच में हाँ हूँ कर देती थी, जिससे ये लोग यह न समझें कि कमला सो रही है। कभी-कभी बीच-बीच में कह बैठती थी, "कमला सो नहीं रही है। सब कुछ सुन रही है जो तुम भाई-बहन मिलकर कमला की बुराई करने पर तुले हो।" इस पर शान्ता मुस्कुराकर कहती, "कमला तुम सो जाओ, तुम्हें बहुत नींद लगी है। मुझे पता है कि तुम कई दिन से सो नहीं सकी हो।"

कमला यह सुनकर दंग रह गई।

"जीजी यह बात तुमने कैसे जानी ?" कमला ने आश्चर्य से पूछा।

"क्यों कमला रानी ! क्या तुम यह समझती हो कि हमें तुम्हारा ध्यान केवल उसी समय तक रहता है जब तक तुम इस कमरे में रहती हो ?" शान्ता बोली।

"यह तो मैं नहीं कहती जीजी ?" कुछ दबे स्वर में कमला बोली।

"कल रात तुम बारह बजकर पच्चीस मिनट पर एडवर्ड पार्क में स्टैचू के सामने जब पेंसिल लेकर हाथ में हिला रही थीं और एक लम्बे से व्यक्ति का इन्तजार कर रही थीं तो मैं तुम्हारी खोज के लिए विशेष रूप से गई हुई थी। एक इन्सपैक्टर को मैं अपने साथ बातें करते-करते बाग के बाहर ले आई थी। वह इन्सपेक्टर यहीं मेरे मकान के पास रहता है। फिर परसों सुबह दस बजे तुम कुदसिया घाट पर बैठी किसी की राह देख रही थीं, तो मैंने मेडेन्स होटल से उधर की ओर जाती हुई पुलिस की टुकड़ी को रोका था।" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

कमला सुनकर अवाक् रह गई। उसे ज्ञान नहीं था कि स्नेह की देवी संसार में और कोई नहीं, शान्ता ही है। किस तरह छाया के समान उसके साथ लगी रहकर उसने कितने अवसरों पर कमला की रक्षा की ? उन्हें यह भी पता था कि कमला दो-तीन दिन से रात को सो नहीं सकी थी। कमला संकोच छोड़कर एक तरफ सो गई और इधर रमेश बाबू के विषय में शान्ता तथा आजाद के बीच बातें छिड़ गईं।

२५

रमेश बाबू के शुष्क जीवन में फिर से कुछ हरियाली-सी आती प्रतीत होने लगी। उनका एकान्तपन तो एकदम समाप्त ही हो गया परन्तु जमघट उन्हें जीवन में पसन्द नहीं था और न ही वह बहुत बातें करने के आदी थे। व्यर्थ बातें करने वाला व्यक्ति उन्हें अरुचिकर था। क्रोध में धैर्य खो देना रमेश बाबू ने नहीं सीखा था। कभी किसी पर भुँझलाते नहीं थे, कभी किसी पर क्रोध नहीं करते थे। सिद्धान्तों पर प्राण तक देने को सर्वदा उद्यत रहते थे। जीवन का पहला लक्ष्य था सिद्धान्त और उनकी मर्यादा के लिए सर्वस्व अर्पण कर देना।

रमेश बाबू की इस अटल चट्टान में प्रेम का स्रोत फूट निकला। जीवन और अधिक नीरस न रह सका परन्तु एक ज्वाला थी रमेश बाबू के हृदय में, वह इतनी भयंकर थी कि जहाँ कभी क्षण भर के लिए भी जीवन में हरियाली आई कि किसी की स्मृति ने सब आशा-चित्रों पर पानी फेर दिया। प्रेम का जो स्वरूप खड़ा होने जा रहा था उसमें अनेकों प्रकार के आकर्षण आ-आकर भी फिर एक गहरा खिचाव पैदा कर देते थे। रमेश बाबू तिलमिला उठे और व्यग्र होकर बाहर बरामदे में घूमने लगे। बरसात का मौसम था, ठण्डी-ठण्डी फुआरें आ रही थीं, खिड़कियों से रमेश बाबू बार-बार अपने माथे और सिर पर पड़ने वाली पानी की बूंदों को पोंछ डालते थे, परन्तु वहाँ की फुहारों से बचकर अन्दर आने को मन नहीं होता था।

"अरे! राम! रे! राम! मैं तो सब भीग ही गई।" कहते हुए इसी समय रमा ने कमरे में प्रवेश किया, परन्तु रमेश बाबू न जाने किस चिन्ता में फँसे थे कि उन्हें रमा के आने का पता ही न चला।

रमा सीधी जाकर बरामदे में पहुँच गई और बोली, "मैं पूछती हूँ कि आप हैं किस दुनिया में? इस दुनिया में तो हैं ही नहीं आप?"

"तुम आ गईं रमा! चलो अच्छा हुआ। अच्छा बैठो तुम अन्दर और हाँ चाय बनवाओ, मैं अभी आता हूँ। मैं कुछ विचार रहा था कि इतने में तुम आ गईं। प्रश्न मेरे सामने था और मैं हल निकालने में लगा था।"

रमा अधिक कुछ न कह सकी। कभी-कभी मसखरापन रमा भी कर डालती थी, परन्तु हर समय नहीं। वह रमेश बाबू के स्वभाव से खूब परिचित हो गई थी। वह रमेश बाबू को यों ही घूमता छोड़कर चाय बनवाने के लिए चली गई।

"चाय बन चुकी, आपकी मेज पर लग गई—चलकर चाय पी लीलिए।" कुछ देर बाद रमा ने उसी प्रकार बराँडे में घूमते हुए रमेश बाबू के पीछे से जाकर कहा।

रमेश बाबू ने रमा का हाथ धीरे से दबा दिया और मुस्कुराते हुए उसके साथ

आकर चाय की टेबिल पर बैठ गए। टेबिल पर दो व्यक्ति साथ-साथ बैठे चाय पी रहे थे, ऐसा वह नित्य ही करते थे। रमेश बाबू पीछे को खिसकते थे और रमा आगे बढ़ने का प्रयत्न करती थी। इस प्रकार यह खिंचाव और तनाव होते हुए भी कई मास व्यतीत हो गए थे। अन्त में जब खींचने के लिए डोरा न रहा तो दोनों का मिल जाना अनिवार्य हो गया और खिंचाव एक-दूसरे का एक-दूसरे के प्रति इतना प्रबल हो गया कि प्रत्यक्ष का मुकाबिला स्वप्निल विचार न कर सके।

रमेश बाबू पर प्रभाव पड़े बिला न रहा। वह जितना भी रमा से बचने का प्रयत्न करते थे रमा उतनी ही उनकी ओर आकर्षित होती जाती थी। रमेश बाबू में इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह किसी का अपमान कर सकें या उससे मिलने में कोई किसी प्रकार की अरुचि दिखला सकें। कभी-कभी रमेश बाबू का स्वभाव नारी के हृदय में भ्रम पैदा कर देता था परन्तु रमा इस स्वभाव के क्षेत्र से भी बाहर निकल चुकी थी। रमा का रमेश बाबू के जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ने लगा था। कहाँ रमेश बाबू एक पूर्णरूप से अव्यवस्थित व्यक्ति और कहाँ उन्हें अब अंग्रेज बना दिया था रमा ने ? उनका हर सामान अपने स्थान पर रहता था। उनका हर कार्य उनके समय पर होता था।

"रमा तुम तो सोच रही होगी कि मैं बराँडे में घूमकर शायद हिसाब का सवाल हल कर रहा था। यह बात नहीं थी। मुझे आज मन्सूरी को छोड़ना है और दिल्ली जाकर कार्यालय की दशा सँभालनी है। तार आया है कि कल से कार्यालय में हड़ताल हो रही है और मेरा वहाँ पहुँचना बहुत आवश्यक है। मेरी बहन परेशान हो उठी है।

"तुम बड़े छलिया हो जी !" इधर-उधर की बातें छेड़कर रमा ने रमेश बाबू के नेत्रों में नेत्र गढ़ा दिए। "आपने आज तक यह भी नहीं बतलाया कि आपके कोई बहन भी है।"

"इसमें छल की क्या बात है रमा ? आज तक कभी ऐसा अवसर ही नहीं आया जब इस गम्भीर सूचना को देना मेरे लिए आवश्यक हुआ हो। तुम जानती ही हो कि मैं व्यर्थ एक शब्द भी बोलना मूर्खता समझता हूँ। बोलने से भी मनुष्य की शक्ति का ह्रास होता है।" रमेश बाबू ने कहा।

"खैर ! आप जाएँगे, तो जाएँगे ही। मेरे रोकने से रुक नहीं सकते। मुझे आपको मना करने का भी कोई अधिकार नहीं, अधिकार सब आपके हैं, आप दें, या न दें। हमें तो यहीं रहना है। भाग्यवश यदि हमारा भी कोई पत्र निकलता होता तो शायद हमें भी आपके साथ चलना नसीब हो जाता।" गहरी साँस भरकर रमा ने कहा।

"रमा ! तुम रमेश को बिलकुल नहीं समझ पाईं। तुम्हें समझने में शायद

धोखा हुआ है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ विवाह करने के लिए नहीं, बल्कि तुम एक योग्य लड़की हो इसलिए। तुमने मुझे व्यवस्थापक का पाठ पढ़ाया है, उसके लिए मैं तुम्हारा जीवन भर आभारी रहूँगा। प्यार मैं तुम्हें करता हूँ, करता रहूँगा, परन्तु यह नहीं कह सकता कि हम लोग जीवन-साथी भी कभी बन सकेंगे।

मेरा जीवन बड़ा अनिश्चित है, अपूर्ण है। मैं अपूर्ण को पूरा करने का प्रयत्न जब करूँगा तो तुम्हारे लिए कुछ न कर सकूँगा। उस समय तुम्हें ही सब कुछ करना होगा। आदान-प्रदान दुनिया में निभता देखा है, परन्तु केवल आदान ही आदान या प्रदान ही प्रदान भला कहाँ निभा है? मैं यह नहीं कहता कि कोई नहीं निभाता, परन्तु कठिन अवश्य है इसे निभाना।

मैं तुमसे यह नहीं पूछूँगा कि तुम मेरे साथ जीवन में चल भी सकोगी या नहीं, मैं तुम्हें साथ रखने को उद्यत हूँ। भली प्रकार विचार करलो। कुछ करने से पूर्व विचार कर लेना अधिक उत्तम होता है। यदि इस समय चूक गईं तो फिर जीवन में शायद कभी यह गलती ठीक न हो सकेगी। मैं अपने स्थान पर स्थिर हूँ, विचार तुम्हें करना है।" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू ने कहा।

रमा मौन पत्थर के पुतले की तरह खड़ी रह गई। उसके नेत्र अभी तक उसी प्रकार रमेश बाबू के नेत्रों में गड़े हुए थे। रमेश बाबू का बिलकुल नया रूप रमा ने आज देखा। रमा स्तम्भित-सी रह गई, जड़ पदार्थ के समान और जीवन के जिन स्वप्नों का किला उसने बनाया था वह एक बार उसे ऐसा लगा कि मानो समाप्त हो गया।

"आज आपकी बातों को समझ नहीं पा रही हूँ रमेश बाबू!" रमा ने कहा।

"कोई गूढ़ बात मैंने नहीं कही रमा! तुम चाय पीओ। तुमने चाय पीनी क्यों छोड़ दी? मैंने विवाह के लिए जो मना कर दिया, यह नाराज होने की बात नहीं है रमा? मैं शादी के योग्य अपने को नहीं समझता और तुम इस योग्य हो......अच्छा पहले चाय पीओ फिर बातें करेंगे।" रमेश बाबू बोले।

"नहीं, मैं चाय नहीं पीऊँगी रमेश बाबू! मेरी इच्छा नहीं हो रही।" रमा ने कहा।

"तुम चाय नहीं पीओगी तो रमा मैं जीवन भर के लिए चाय पीना छोड़ दूंगा। मैं चाय फिर कभी नहीं पीऊँगा।" सरलतापूर्वक रमेश बाबू ने कहा।

रमा ने झट प्याली उठा ली और बिना एक शब्द भी मुँह से निकाले चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। दोनों साथ-साथ पलंग पर बैठे हुए थे। रमा का मन उदास था और आँखों में अश्रु झलक रहे थे। रमेश बाबू ने रमा को अपने पास सिमटाकर बाहुपाश में भर लिया। फिर तो मानो रमा के नेत्रों का बाँध ही टूट गया। कुछ देर

आकर चाय की टेबिल पर बैठ गए। टेविल पर दो व्यक्ति साथ-साथ बैठे चाय पी रहे थे, ऐसा वह नित्य ही करते थे। रमेश बाबू पीछे को खिसकते थे और रमा आगे बढ़ने का प्रयत्न करती थी। इस प्रकार यह खिंचाव और तनाव होते हुए भी कई मास व्यतीत हो गए थे। अन्त में जब खींचने के लिए डोरा न रहा तो दोनों का मिल जाना अनिवार्य हो गया और खिंचाव एक-दूसरे का एक-दूसरे के प्रति इतना प्रबल हो गया कि प्रत्यक्ष का मुकाबिला स्वप्निल विचार न कर सके।

रमेश बाबू पर प्रभाव पड़े बिला न रहा। वह जितना भी रमा से बचने का प्रयत्न करते थे रमा उतनी ही उनकी ओर आर्कषित होती जाती थी। रमेश बाबू में इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह किसी का अपमान कर सकें या उससे मिलने में कोई किसी प्रकार की अरुचि दिखला सकें। कभी-कभी रमेश बाबू का स्वभाव नारी के हृदय में भ्रम पैदा कर देता था परन्तु रमा इस स्वभाव के क्षेत्र से भी बाहर निकल चुकी थी। रमा का रमेश बाबू के जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ने लगा था। कहाँ रमेश बाबू एक पूर्णरूप से अव्यवस्थित व्यक्ति और कहाँ उन्हें अब अंग्रेज बना दिया था रमा ने ? उनका हर सामान अपने स्थान पर रहता था। उनका हर कार्य उनके समय पर होता था।

"रमा तुम तो सोच रही होगी कि मैं बरांडे में घूमकर शायद हिसाब का सवाल हल कर रहा था। यह बात नहीं थी। मुझे आज मन्सूरी को छोड़ना है और दिल्ली जाकर कार्यालय की दशा सँभालनी है। तार आया है कि कल से कार्यालय में हड़ताल हो रही है और मेरा वहाँ पहुँचना बहुत आवश्यक है। मेरी बहन परेशान हो उठी है।

"तुम बड़े छलिया हो जी !" इधर-उधर की बातें छेड़कर रमा ने रमेश बाबू के नेत्रों में नेत्र गढ़ा दिए। "आपने आज तक यह भी नहीं बतलाया कि आपके कोई बहन भी है।"

"इसमें छल की क्या बात है रमा ? आज तक कभी ऐसा अवसर ही नहीं आया जब इस गम्भीर सूचना को देना मेरे लिए आवश्यक हुआ हो। तुम जानती ही हो कि मैं व्यर्थ एक शब्द भी बोलना मूर्खता समझता हूँ। बोलने से भी मनुष्य की शक्ति का ह्रास होता है।" रमेश बाबू ने कहा।

"खैर ! आप जाएँगे, तो जाएँगे ही। मेरे रोकने से रुक नहीं सकते। मुझे आपको मना करने का भी कोई अधिकार नहीं, अधिकार सब आपके हैं, आप दें, या न दें। हमें तो यहीं रहना है। भाग्यवश यदि हमारा भी कोई पत्र निकलता होता तो शायद हमें भी आपके साथ चलना नसीब हो जाता।" गहरी साँस भरकर रमा ने कहा।

"रमा ! तुम रमेश को बिलकुल नहीं समझ पाईं। तुम्हें समझने में शायद

धोखा हुआ है। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ विवाह करने के लिए नहीं, बल्कि तुम एक योग्य लड़की हो इसलिए। तुमने मुझे व्यवस्थापक का पाठ पढ़ाया है, उसके लिए मैं तुम्हारा जीवन भर आभारी रहूँगा। प्यार मैं तुम्हें करता हूँ, करता रहूँगा, परन्तु यह नहीं कह सकता कि हम लोग जीवन-साथी भी कभी बन सकेंगे।

मेरा जीवन बड़ा अनिश्चित है, अपूर्ण है। मैं अपूर्ण को पूरा करने का प्रयत्न जब करूँगा तो तुम्हारे लिए कुछ न कर सकूँगा। उस समय तुम्हें ही सब कुछ करना होगा। आदान-प्रदान दुनिया में निभता देखा है, परन्तु केवल आदान ही आदान या प्रदान ही प्रदान भला कहाँ निभा है ? मैं यह नहीं कहता कि कोई नहीं निभाता, परन्तु कठिन अवश्य है इसे निभाना।

मैं तुमसे यह नहीं पूछूँगा कि तुम मेरे साथ जीवन में चल भी सकोगी या नहीं, मैं तुम्हें साथ रखने को उद्यत हूँ। भली प्रकार विचार करलो। कुछ करने से पूर्व विचार कर लेना अधिक उत्तम होता है। यदि इस समय चूक गईं तो फिर जीवन में शायद कभी यह गलती ठीक न हो सकेगी। मैं अपने स्थान पर स्थिर हूँ, विचार तुम्हें करना है।" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू ने कहा।

रमा मौन पत्थर के पुतले की तरह खड़ी रह गई। उसके नेत्र अभी तक उसी प्रकार रमेश बाबू के नेत्रों में गड़े हुए थे। रमेश बाबू का बिलकुल नया रूप रमा ने आज देखा। रमा स्तम्भित-सी रह गई, जड़ पदार्थ के समान और जीवन के जिन स्वप्नों का किला उसने बनाया था वह एक बार उसे ऐसा लगा कि मानो समाप्त हो गया।

"आज आपकी बातों को समझ नहीं पा रही हूँ रमेश बाबू !" रमा ने कहा।

"कोई गूढ़ बात मैंने नहीं कही रमा ! तुम चाय पीओ। तुमने चाय पीनी क्यों छोड़ दी ? मैंने विवाह के लिए जो मना कर दिया, यह नाराज होने की बात नहीं है रमा ? मैं शादी के योग्य अपने को नहीं समझता और तुम इस योग्य हो......अच्छा पहले चाय पीओ फिर बातें करेंगे।" रमेश बाबू बोले।

"नहीं, मैं चाय नहीं पीऊँगी रमेश बाबू ! मेरी इच्छा नहीं हो रही।" रमा ने कहा।

"तुम चाय नहीं पीओगी तो रमा मैं जीवन भर के लिए चाय पीना छोड़ दूंगा। मैं चाय फिर कभी नहीं पीऊँगा।" सरलतापूर्वक रमेश बाबू ने कहा।

रमा ने झट प्याली उठा ली और बिला एक शब्द भी मुँह से निकाले चाय पीनी प्रारम्भ कर दी। दोनों साथ-साथ पलंग पर बैठे हुए थे। रमा का मन उदास था और आँखों में अश्रु झलक रहे थे। रमेश बाबू ने रमा को अपने पास सिमटाकर बाहुपाश में भर लिया। फिर तो मानो रमा के नेत्रों का बाँध ही टूट गया। कुछ देर

बिलकुल मौन दोनों व्यक्ति इसी प्रकार बैठे रहे और फिर रमेश बाबू ने अपनी जेब से रूमाल निकालकर रमा के नेत्र पोंछ दिए।

"विवाह को तुम क्या समझती हो रमा ? क्या प्रेम का अन्त विवाह है ? क्या विवाह करने के लिए ही प्रेम किया जाता है ?" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू ने प्रश्न किया।

"मैं आपके इन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हूँ रमेश बाबू !" उसी प्रकार गम्भीरता के साथ रमा ने उत्तर दिया।

"तुम मेरे साथ दिल्ली चलना चाहती हो ?" फिर उसी गम्भीरता के साथ रमेश बाबू ने पूछा, "यदि हाँ; तो सुनो मैं तुम्हें अपने जीवन के कुछ रहस्य संक्षेप में बतला दूँ, जिससे तुम फिर जीवन में यह कहने और समझने का साहस न करो कि रमेश ने रमा को धोखा दिया।" रमेश बाबू बोले।

रमा रमेश बाबू के मुख पर इस प्रकार देख रही थी कि मानो वह सामने फैले हुए आकाश पर देख रही हो। कितना विस्तृत, कितना महान्, जिसके अन्दर रमा जैसी अनेक तारिकाएँ समा सकती हैं।

"मेरे पास न धन है, न जायदाद। मैं जो कुछ भी हूँ तुम्हारे सामने बैठा हूँ। पत्र मेरा अवश्य है, परन्तु इसमें जो पैसा लगा हुआ है वह मेरा नहीं है। यदि कभी जीवन में ऐसा अवसर आने लगा कि मुझे पत्र से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा तो मैं बिला एक पैसा लिए जिस प्रकार यहाँ बैठा हूँ इसी प्रकार विच्छेद कर दूँगा।" रमेश बाबू कह रहे थे।

"आपने मुझे यह बात क्यों बतलाई ? मेरा तो आपकी इस व्यक्तिगत बात से कोई सम्बन्ध नहीं।" रमा ने निस्संकोच भाव से कहा।

"यह मैं जानता हूँ कि तुम इतने संकुचित विचारों की लड़की नहीं हो, किन्तु फिर भी इस बात को स्पष्ट कर देना, एक दुनियादार के नाते मेरा कर्तव्य था। मेरा जीवन तुमने एक व्यवस्था के ढाँचे में ढालने का प्रयत्न अवश्य किया है, परन्तु फिर भी उसमें स्वयँ व्यवस्थित रहने की शक्ति नहीं है। वहाँ मुझे भाग्य से ऐसी बहन मिल गई है कि जिसने मुझे सँभाला हुआ है, और यहाँ पर आया तो भगवान् ने तुम्हें भेज दिया मेरा जीवन सुचारु रूप से चलाने के लिए। मैं तुम्हारा आभारी हूँ, तुम्हें जीवन भर साथ रखने के लिए तैयार हूँ। मेरे जीवन में तुम्हारा स्थान बन चुका, क्योंकि मेरा जीवन अपूर्ण है और उसे पूर्ण करने के लिए किसी की आवश्यकता है। यदि तुम मना कर दोगी तो मैं तुमसे जिद नहीं कर सकूँगा क्योंकि यह मेरे स्वभाव के प्रतिकूल होगा, परन्तु हाँ यह तुम अवश्य समझ रखना कि मेरी आत्मा को दुःख होगा और मैं अपने मन से कहूँगा कि यदि यह सम्पर्क मेरे जीवन में न हुआ होता तो अच्छा होता।"

रमा नहीं समझ पाई कि आखिर रमेश बाबू का इन सब बातों के कहने का क्या अर्थ था ? वह रमा को जीवन-साथी बना भी नहीं सकते और बनाना भी चाहते थे, विवाह नहीं करना चाहते परन्तु जीवन भर साथ रखने के लिए उद्यत हैं। वह उसे प्रेम करते हैं यह रहस्य की बात नहीं, स्पष्ट है क्योंकि रमेश बाबू राजनीति में कदम रखते हुए भी बहुत सरल और सत्य हैं। झूठ बोलना वह बिलकुल पसन्द नहीं करते। उनका अक्षर-अक्षर सत्य होता है। रमा यदि उनके साथ न गई तो उन्हें क्लेश होगा और रमा यदि उनके साथ जाए तो किस रूप में ?

"रमा, और स्पष्ट सुनो।" कहकर रमेश बाबू ने अपनी सम्पूर्ण कहानी रमा को सुना डाली और स्पष्ट रूप से बतला दिया कि वह शान्ता को प्रेम करते हैं और शान्ता तथा उनके बीच में शुभ विवाह के वचन हुए थे और वह उन वचनों को प्राण रहते निभाएँगे, जीवन भर कुँआरे रहकर।

अब प्रश्न आ गया एक कुँआरे व्यक्ति के साथ जीवन भर कुँआरा रहने का। रमा इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ थी और रमेश बाबू की दिल्ली जाने की तिथि आ गई। वह दिल्ली के लिए रवाना हो गए। रमा रमेश बाबू को बस स्टैंड पर छोड़ने आई। दोनों की आँखें डबडबा रही थीं। रमा ने वचन दिया कि रमेश बाबू जीवन में जब कभी भी, जहाँ भी रमा को याद करेंगे रमा उन्हें उसी समय वहीं मिलेगी।

यह विश्वास लेकर रमेश बाबू शान्ति के साथ अपनी सीट पर बैठ गए। कुछ देर रमा भी पास में बैठी रही। मोटर छूटने का समय हो गया और कंडक्टर ने घण्टी बजा दी। रमा उठ खड़ी हुई और चलते समय केवल इतना ही कहा, "कोई त्रुटि हुई हो व्यवहार में तो क्षमा करना रमेश बाबू !"

रमेश बाबू ने अपनी अँगुली से एक अँगूठी निकालकर रमा की अँगुली में पहनाते हुए कहा, "यह मेरी अमानत है, मेरी नहीं, तुम्हारी बहन की, सुरक्षित रखने के लिए तुम्हें दे रहा हूँ, क्योंकि तुम यह कर सकोगी।"

अँगूठी पर लिखा था 'शान्ता'।

रमा ने आँख मींचकर अँगूठी को सीने से लगा लिया। उसके हृदय में एक प्रकाश हुआ कि वास्तव में वह अँगूठी उसकी बहन की ही है; वह उसे अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान समझेगी।

"आप जिस कार्य के लिए जा रहे हैं उसमें सफल हों।" अन्त में रमा ने कहा। मोटर चल दी। दो प्रेमियों का जोड़ा बिछुड़ गया। जहाँ तक दिखलाई देते रहे एक-दूसरे को देखने का प्रयत्न करते रहे और फिर थककर अपनी-अपनी राह पर हो लिए।

बिलकुल मौन दोनों व्यक्ति इसी प्रकार बैठे रहे और फिर रमेश बाबू ने अपनी जेब से रूमाल निकालकर रमा के नेत्र पोंछ दिए।

"विवाह को तुम क्या समझती हो रमा ? क्या प्रेम का अन्त विवाह है ? क्या विवाह करने के लिए ही प्रेम किया जाता है ?" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू ने प्रश्न किया।

"मैं आपके इन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हूँ रमेश बाबू !" उसी प्रकार गम्भीरता के साथ रमा ने उत्तर दिया।

"तुम मेरे साथ दिल्ली चलना चाहती हो ?" फिर उसी गम्भीरता के साथ रमेश बाबू ने पूछा, "यदि हाँ; तो सुनो मैं तुम्हें अपने जीवन के कुछ रहस्य संक्षेप में बतला दूँ, जिससे तुम फिर जीवन में यह कहने और समझने का साहस न करो कि रमेश ने रमा को धोखा दिया।" रमेश बाबू बोले।

रमा रमेश बाबू के मुख पर इस प्रकार देख रही थी कि मानो वह सामने फैले हुए आकाश पर देख रही हो। कितना विस्तृत, कितना महान्, जिसके अन्दर रमा जैसी अनेक तारिकाएँ समा सकती हैं।

"मेरे पास न धन है, न जायदाद। मैं जो कुछ भी हूँ तुम्हारे सामने बैठा हूँ। पत्र मेरा अवश्य है, परन्तु इसमें जो पैसा लगा हुआ है वह मेरा नहीं है। यदि कभी जीवन में ऐसा अवसर आने लगा कि मुझे पत्र से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा तो मैं बिला एक पैसा लिए जिस प्रकार यहाँ बैठा हूँ इसी प्रकार विच्छेद कर दूँगा।" रमेश बाबू कह रहे थे।

"आपने मुझे यह बात क्यों बतलाई ? मेरा तो आपकी इस व्यक्तिगत बात से कोई सम्बन्ध नहीं।" रमा ने निस्संकोच भाव से कहा।

"यह मैं जानता हूँ कि तुम इतने संकुचित विचारों की लड़की नहीं हो, किन्तु फिर भी इस बात को स्पष्ट कर देना, एक दुनियादार के नाते मेरा कर्तव्य था। मेरा जीवन तुमने एक व्यवस्था के ढाँचे में ढालने का प्रयत्न अवश्य किया है, परन्तु फिर भी उसमें स्वयँ व्यवस्थित रहने की शक्ति नहीं है। वहाँ मुझे भाग्य से ऐसी बहन मिल गई है कि जिसने मुझे सँभाला हुआ है, और यहाँ पर आया तो भगवान् ने तुम्हें भेज दिया मेरा जीवन सुचारु रूप से चलाने के लिए। मैं तुम्हारा आभारी हूँ, तुम्हें जीवन भर साथ रखने के लिए तैयार हूँ। मेरे जीवन में तुम्हारा स्थान बन चुका, क्योंकि मेरा जीवन अपूर्ण है और उसे पूर्ण करने के लिए किसी की आवश्यकता है। यदि तुम मना कर दोगी तो मैं तुमसे जिद नहीं कर सकूँगा क्योंकि यह मेरे स्वभाव के प्रतिकूल होगा, परन्तु हाँ यह तुम अवश्य समझ रखना कि मेरी आत्मा को दुःख होगा और मैं अपने मन से कहूँगा कि यदि यह सम्पर्क मेरे जीवन में न हुआ होता तो अच्छा होता।"

रमा नहीं समझ पाई कि आखिर रमेश बाबू का इन सब बातों के कहने का क्या अर्थ था ? वह रमा को जीवन-साथी बना भी नहीं सकते और बनाना भी चाहते थे, विवाह नहीं करना चाहते परन्तु जीवन भर साथ रखने के लिए उद्यत हैं। वह उसे प्रेम करते हैं यह रहस्य की बात नहीं, स्पष्ट है क्योंकि रमेश बाबू राजनीति में कदम रखते हुए भी बहुत सरल और सत्य हैं। झूठ बोलना वह बिलकुल पसन्द नहीं करते। उनका अक्षर-अक्षर सत्य होता है। रमा यदि उनके साथ न गई तो उन्हें क्लेश होगा और रमा यदि उनके साथ जाए तो किस रूप में ?

"रमा, और स्पष्ट सुनो।" कहकर रमेश बाबू ने अपनी सम्पूर्ण कहानी रमा को सुना डाली और स्पष्ट रूप से बतला दिया कि वह शान्ता को प्रेम करते हैं और शान्ता तथा उनके बीच में शुभ विवाह के वचन हुए थे और वह उन वचनों को प्राण रहते निभाएँगे, जीवन भर कुँआरे रहकर।

अब प्रश्न आ गया एक कुँआरे व्यक्ति के साथ जीवन भर कुँआरा रहने का। रमा इस गम्भीर प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ थी और रमेश बाबू की दिल्ली जाने की तिथि आ गई। वह दिल्ली के लिए रवाना हो गए। रमा रमेश बाबू को बस स्टैंड पर छोड़ने आई। दोनों की आँखें डबडबा रही थीं। रमा ने वचन दिया कि रमेश बाबू जीवन में जब कभी भी, जहाँ भी रमा को याद करेंगे रमा उन्हें उसी समय वहीं मिलेगी।

यह विश्वास लेकर रमेश बाबू शान्ति के साथ अपनी सीट पर बैठ गए। कुछ देर रमा भी पास में बैठी रही। मोटर छूटने का समय हो गया और कंडक्टर ने घण्टी बजा दी। रमा उठ खड़ी हुई और चलते समय केवल इतना ही कहा, "कोई त्रुटि हुई हो व्यवहार में तो क्षमा करना रमेश बाबू !"

रमेश बाबू ने अपनी अँगुली से एक अँगूठी निकालकर रमा की अँगुली में पहनाते हुए कहा, "यह मेरी अमानत है, मेरी नहीं, तुम्हारी बहन की, सुरक्षित रखने के लिए तुम्हें दे रहा हूँ, क्योंकि तुम यह कर सकोगी।"

अँगूठी पर लिखा था 'शान्ता'।

रमा ने आँख मींचकर अँगूठी को सीने से लगा लिया। उसके हृदय में एक प्रकाश हुआ कि वास्तव में वह अँगूठी उसकी बहन की ही है; वह उसे अपने जीवन से भी अधिक मूल्यवान समझेगी।

"आप जिस कार्य के लिए जा रहे हैं उसमें सफल हों।" अन्त में रमा ने कहा। मोटर चल दी। दो प्रेमियों का जोड़ा बिछुड़ गया। जहाँ तक दिखलाई देते रहे एक-दूसरे को देखने का प्रयत्न करते रहे और फिर थककर अपनी-अपनी राह पर हो लिए।

२६

कमला ने शहर में तूफान मचाया हुआ था। शहर के हर व्यक्ति की जवान पर कमला और आजाद के नाम शैतानों की तरह चढ़े हुए थे। प्रत्येक व्यक्ति उन से भय मानता था। मूर्ख लोग तो यहाँ तक भी समझने में नहीं हिचकते कि पता नहीं उन दोनों की जेबों में रूस का भेजा हुआ कोई छोटा-मोटा राकेट ही न पड़ा हो जो समय पाकर जादू के जोर से दिल्ली को उलट डाले। लाला लोग अपनी दुकानों पर बैठकर उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाते थे, परन्तु डरते भी थे कि कहीं रात को उन्हीं की दुकानों को डाईनेमाइट लगाकर न उड़वा दिया जाए।

कालेज के लड़कों को कोई जोशीला काम चाहिए। एक बार को तो वे जोश में आकर अपने घर को भी आग लगा सकते हैं। कर्तव्य-ज्ञान से उनका सम्बन्ध कम होता है क्योंकि उनकी बुद्धि अभी परिपक्व अवस्था को प्राप्त की हुई नहीं होती। मजदूरों में उछृंखलता बढ़ाने के लिए केवल यह भर कह देना काफी होता है कि मोटे-मोटे सरमायेदार किसके पैसे पर पलते हैं? किसकी खून-पसीने की कमाई से ऐश करते हैं? किसका खून चूसकर ये मोटे होते हैं?—मजदूरों का। अब समय आ गया है सब मजदूरों का एकत्रित होकर इनसे शक्ति छीन लेने का। ये सब मिलें किसकी हैं—मजदूरों की। ये कारखाने किसके हैं—मजदूरों के।" बस मजदूर फिर जी-जान पर खेलने के लिए तैयार हैं। वे भूखे रहकर भी हड़ताल करेंगे। वह देखता है कि इस कठिन समय में उसकी कौन वर्ग सहायता करता है। जो वर्ग उसकी इस समय सहायता नहीं करेगा, उस वर्ग को भी एक दिन मिट जाना होगा। **शासन सत्ता मजदूर की है और वह एक दिन मजदूर के हाथों में आकर रहेगी।** कमला के ये शब्द हर मजदूर की जवान पर चढ़ गए।

पुलिस बड़ी सरगर्मी से कमला तथा आजाद का पता निकालने के लिए प्रयत्न कर रही थी, परन्तु अभी तक उसे सफलता नहीं मिली। ट्रामों की हड़ताल होगी, बसों की हड़ताल होगी, दिल्ली क्लाथ मिल और बिड़ला मिल की हड़ताल होगी, रेलवे की हड़ताल होगी, पोस्ट ऑफिस की हड़ताल होगी, प्रेसों की हड़ताल होगी—यहाँ तक कि सबकी हड़ताल होगी, ये अफवाहें शहर में बुरी तरह फैली हुई थीं। परन्तु दिल्ली पुलिस का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। कहीं कोई उपद्रव सुनने में नहीं आता था। कहीं पर यदि कुछ होने की संभावना होती थी तो वहाँ पहले से ही अच्छा प्रबन्ध कर दिया जाता था और उपद्रव कार्यरूप में परिणत होने से पूर्व ही समाप्त हो जाता था।

दो दिन से सफलतापूर्वक 'इन्सान' कार्यालय में हड़ताल चल रही थी। कम्यू-

निस्ट पार्टी हड़ताल करा रही थी। दिल्ली भर में यह सनसनी थी कि इस कार्यालय को जलाकर खाक कर दिया जाएगा। अमरनाथ बाबू तो बेचारे परेशानी की दशा में ऑफिस से बाहर ही नहीं निकलते थे। कभी-कभी रशीदा सामने आती थी तो 'सरमायेदार—मुर्दाबाद' के नारे सुनकर उसको वापस चला जाना पड़ता था। प्रेस-कम्पोजीटर, मैशीनमैन तथा ऑफिस के सभी क्लर्क हड़ताल में सम्मिलित थे, करमसिंह को छोड़कर।

करमसिंह एक दोगले व्यक्ति का काम कर रहा था जो इधर भी मिला हुआ था और कमला को भी जाकर सब राज की बातें बतलाता था। रशीदा और अमरनाथ बैठे आपस में बातें कर रहे थे।

"हम लोगों की सब राज की बातें हड़ताल कराने वालों के कानों तक कैसे पहुँच जाती हैं ?" रशीदा ने बड़े ही आश्चर्य से कहा, "मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि करमसिंह की ही यह सब कारस्तानी है।" गम्भीरतापूर्वक रशीदा बोली।

"करमसिंह की ?" कुछ सोचकर अमरनाथजी ने पूछा "यह तुमने कैसे जाना ?"

"जानने की इसमें क्या बात है ? इस समय कार्यालय में केवल तीन ही व्यक्ति हैं। मैं, आप और करमसिंह। फिर यहाँ की बातें हम तीनों के अतिरिक्त बाहर और कौन ले जा सकता है ? मैंने पहले भी एक बार इस व्यक्ति पर अविश्वास प्रकट किया था परन्तु क्योंकि यह आपका साथी रहा है इसलिए मैंने इसे क्षमा कर दिया था। मैं स्पष्ट रूप से कहे देती हूँ कि कमला से इसकी साँट-गाँठ है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं खुफिया तौर पर कमला को पकड़वा सकती हूँ।"

अमरनाथजी मुस्कुरा दिये। "कमला को पकड़वाना कोई बहादुरी नहीं है। किसी को बन्धन में डालकर परास्त करना नहीं कहा जाता। वह सामने रहे और देखे कि मैं परास्त हो गया और कुछ कर न सका—यह है परास्त करना। यह सिद्धान्त जो मैंने तुम्हारे सामने रखा, मेरा नहीं रमेश बाबू का है। मैं इसके विपरीत कार्य नहीं कर सकता। साथ ही इस सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति भी मुझमें नहीं है। इसलिए कल रमेश बाबू को तार करना पड़ा। इन सभी काम करने वालों का हिसाब चुकता करके मैं नए स्टाफ से काम चालू कर सकता था, परन्तु यह मेरी कमजोरी होती, कार्यालय की कमजोरी होती। अपने नाम पर मैं कमजोर होने का धब्बा लगा भी सकता था, परन्तु उस महान् व्यक्ति के नाम पर मैं यह सहन नहीं कर सकता।" गम्भीरतापूर्वक अमरनाथ जी ने कहा, "हाँ तुम्हारी करमसिंह वाली बात अवश्य ठीक हो सकती है क्योंकि करमसिंह पहले दर्जे का मूर्ख है और यह कमला पर लट्टू है। कमला अपने मतलब के लिए इसका प्रयोग कर रही होगी और यह मूर्ख

२६

कमला ने शहर में तूफान मचाया हुआ था। शहर के हर व्यक्ति की जबान पर कमला और आजाद के नाम शैतानों की तरह चढ़े हुए थे। प्रत्येक व्यक्ति उन से भय मानता था। मूर्ख लोग तो यहाँ तक भी समझने में नहीं हिचकते कि पता नहीं उन दोनों की जेबों में रूस का भेजा हुआ कोई छोटा-मोटा राकेट ही न पड़ा हो जो समय पाकर जादू के जोर से दिल्ली को उलट डाले। लाला लोग अपनी दुकानों पर बैठकर उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाते थे, परन्तु डरते भी थे कि कहीं रात को उन्हीं की दुकानों को डाईनेमाइट लगाकर न उड़वा दिया जाए।

कालेज के लड़कों को कोई जोशीला काम चाहिए। एक बार को तो वे जोश में आकर अपने घर को भी आग लगा सकते हैं। कर्तव्य-ज्ञान से उनका सम्बन्ध कम होता है क्योंकि उनकी बुद्धि अभी परिपक्व अवस्था को प्राप्त की हुई नहीं होती। मजदूरों में उच्छृंखलता बढ़ाने के लिए केवल यह भर कह देना काफी होता है कि मोटे-मोटे सरमायेदार किसके पैसे पर पलते हैं ? किसकी खून-पसीने की कमाई से ऐश करते हैं ? किसका खून चूसकर ये मोटे होते हैं ?—मजदूरों का। अब समय आ गया है सब मजदूरों का एकत्रित होकर इनसे शक्ति छीन लेने का। ये सब मिलें किसकी हैं—मजदूरों की। ये कारखाने किसके हैं—मजदूरों के।" बस मजदूर फिर जी-जान पर खेलने के लिए तैयार हैं। वे भूखे रहकर भी हड़ताल करेंगे। वह देखता है कि इस कठिन समय में उसकी कौन वर्ग सहायता करता है। जो वर्ग उसकी इस समय सहायता नहीं करेगा, उस वर्ग को भी एक दिन मिट जाना होगा। **शासन सत्ता मजदूर की है और वह एक दिन मजदूर के हाथों में आकर रहेगी।** कमला के ये शब्द हर मजदूर की जबान पर चढ़ गए।

पुलिस बड़ी सरगर्मी से कमला तथा आजाद का पता निकालने के लिए प्रयत्न कर रही थी, परन्तु अभी तक उसे सफलता नहीं मिली। ट्रामों की हड़ताल होगी, बसों की हड़ताल होगी, दिल्ली क्लाथ मिल और बिड़ला मिल की हड़ताल होगी, रेलवे की हड़ताल होगी, पोस्ट ऑफिस की हड़ताल होगी, प्रेसों की हड़ताल होगी—यहाँ तक कि सबकी हड़ताल होगी, ये अफवाहें शहर में बुरी तरह फैली हुई थीं। परन्तु दिल्ली पुलिस का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। कहीं कोई उपद्रव सुनने में नहीं आता था। कहीं पर यदि कुछ होने की संभावना होती थी तो वहाँ पहले से ही अच्छा प्रबन्ध कर दिया जाता था और उपद्रव कार्यरूप में परिणत होने से पूर्व ही समाप्त हो जाता था।

दो दिन से सफलतापूर्वक 'इन्सान' कार्यालय में हड़ताल चल रही थी। कम्यू-

निस्ट पार्टी हड़ताल करा रही थी। दिल्ली भर में यह सनसनी थी कि इस कार्यालय को जलाकर खाक कर दिया जाएगा। अमरनाथ बाबू तो बेचारे परेशानी की दशा में ऑफिस से बाहर ही नहीं निकलते थे। कभी-कभी रशीदा सामने आती थी तो 'सरमायेदार—मुर्दाबाद' के नारे सुनकर उसको वापस चला जाना पड़ता था। प्रेस-कम्पोजीटर, मैशीनमैन तथा ऑफिस के सभी क्लर्क हड़ताल में सम्मिलित थे, करमसिंह को छोड़कर।

करमसिंह एक दोगले व्यक्ति का काम कर रहा था जो इधर भी मिला हुआ था और कमला को भी जाकर सब राज की बातें बतलाता था। रशीदा और अमरनाथ बैठे आपस में बातें कर रहे थे।

"हम लोगों की सब राज की बातें हड़ताल कराने वालों के कानों तक कैसे पहुँच जाती हैं?" रशीदा ने बड़े ही आश्चर्य से कहा, "मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि करमसिंह की ही यह सब कारस्तानी है।" गम्भीरतापूर्वक रशीदा बोली।

"करमसिंह की?" कुछ सोचकर अमरनाथजी ने पूछा "यह तुमने कैसे जाना?"

"जानने की इसमें क्या बात है? इस समय कार्यालय में केवल तीन ही व्यक्ति हैं। मैं, आप और करमसिंह। फिर यहाँ की बातें हम तीनों के अतिरिक्त बाहर और कौन ले जा सकता है? मैंने पहले भी एक बार इस व्यक्ति पर अविश्वास प्रकट किया था परन्तु क्योंकि यह आपका साथी रहा है इसलिए मैंने इसे क्षमा कर दिया था। मैं स्पष्ट रूप से कहे देती हूँ कि कमला से इसकी साँट-गाँठ है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं खुफिया तौर पर कमला को पकड़वा सकती हूँ।"

अमरनाथजी मुस्कुरा दिये। "कमला को पकड़वाना कोई बहादुरी नहीं है। किसी को बन्धन में डालकर परास्त करना नहीं कहा जाता। वह सामने रहे और देखे कि मैं परास्त हो गया और कुछ कर न सका—यह है परास्त करना। यह सिद्धान्त जो मैंने तुम्हारे सामने रखा, मेरा नहीं रमेश बाबू का है। मैं इसके विपरीत कार्य नहीं कर सकता। साथ ही इस सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत करने की शक्ति भी मुझमें नहीं है। इसलिए कल रमेश बाबू को तार करना पड़ा। इन सभी काम करने वालों का हिसाब चुकता करके मैं नए स्टाफ से काम चालू कर सकता था, परन्तु यह मेरी कमजोरी होती, कार्यालय की कमजोरी होती। अपने नाम पर मैं कमजोर होने का धब्बा लगा भी सकता था, परन्तु उस महान् व्यक्ति के नाम पर मैं यह सहन नहीं कर सकता।" गम्भीरतापूर्वक अमरनाथ जी ने कहा, "हाँ तुम्हारी करमसिंह वाली बात अवश्य ठीक हो सकती है क्योंकि करमसिंह पहले दर्जे का मूर्ख है और यह कमला पर लट्टू है। कमला अपने मतलब के लिए इसका प्रयोग कर रही होगी और यह मूर्ख

समझ रहा होगा कि वह इसे प्यार कर रही है।" अमरनाथजी ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

रशीदा यह सुनकर मुस्कुरा दी, परन्तु साथ ही बोली, "तो फिर हमें इसके विषय में क्या करना चाहिए ?"

"करना क्या चाहिए ? करमसिंह को जवाब दे देना चाहिए। तुम करमसिंह से कहना कि कमलादेवी यहाँ आई थीं। आप जानते ही हैं कि वह अमरनाथजी को प्रेम करती हैं। इसलिए वह उनसे कह गईं कि उन्हें कमला के सिर की कसम जो करमसिंह को वह तुरन्त नौकरी से न हटा दें, क्योंकि वही हड़ताल को खराब कर रहा है। इस मुहब्बत के जाल में फँसकर आपको इस नौकरी से इस्तीफा मिल रहा है। अमरनाथजी को भैया इंचार्ज बना गए हैं, सो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना मेरी शक्ति से भी बाहर है।" अमरनाथजी मुस्कुरा कर बोले।

"फिर क्या होगा ?" रशीदा ने कहा।

"फिर क्या होगा ? करमसिंह जाकर कमला से टकराएगा और जब कमला को यह पता चलेगा कि इसे वहाँ से इस्तीफा हो गया है तो वह भी इससे बातें करना बन्द कर देगी। इसके पश्चात् यह फिर यहीं पर आएगा और अपनी गलती की क्षमा माँगेगा। उस समय यह तुमको अधिकार होगा कि तुम इसे चाहो तो दुबारा रखना या न रखना।" अमरनाथजी ने कहा।

इसी प्रकार बातें हो रही थीं कि सामने से सरदार करमसिंह अन्दर आए। वह यह सोचता हुआ आ रहा था कि आते ही चाय मिलेगी और फिर···परन्तु वहाँ पहुँचते ही रशीदा उसे दूसरे कमरे में ले गई और मासिक वेतन का रजिस्टर नकालकर उसका चुकता हिसाब देकर हस्ताक्षर ले लिए। यह सब कार्य बिला एक शब्द भी बोले हो गया और फिर रशीदा ने ऊपर वाले वाक्य जो अमरनाथजी ने कहे थे दुहरा दिए।

"आप मुझे बिला अपराध जवाब दे रही हैं रशीदा बहन !" करमसिंह ने गिड़-गिड़ा कर कहा।

"मेरे तो अधिकार में ही कुछ छोड़ कर नहीं गए रमेश भैया ! सब अधिकार अमरनाथजी को ही है। मैं नहीं समझती कि कमला ने तुमसे न जाने कब के ये काँटे निकाले हैं।" गम्भीरतापूर्वक रशीदा ने कहा।

सरदार करमसिंह का साहस अब अमरनाथजी से बातें करने का न हुआ क्योंकि उनके मन में चोर था। सरदारजी के कमजोर मस्तिष्क में यह बात न आ सकी कि कमला ऐसी परिस्थिति में भला अमरनाथजी के पास कैसे आ सकती थी ? कमला और अमरनाथजी का अकेले-अकेले बागों में घूमना, सैर के लिए जाना, सिनेमा देखना, होटलों में चाय पीना, काफी हाउस में गप्पें लगाना, सरदार करमसिंह और

उजागरमल का उल्लू बनाना, ये सब ऐसी बातें थीं कि जिन्हें करमसिंह भुला नहीं सकता था। उसे विश्वास हो गया और कमला के प्रति इतना क्रोध आया कि जाकर उस गिरगिट जैसी नन्हीं-सी छोकरी को नोच-नोच कर खसोट डाले। उसे क्रोध आ रहा था कि क्यों उसने करमसिंह की लगी लगाई अच्छी खासी नौकरी छुड़वा दी? सरदारजी अपने वेतन के रुपए लेकर सिर झुकाये हुए जब कार्यालय से बाहर निकले तो फिर उन पर 'करमसिंह मुर्दाबाद' की फटकारें पड़ीं, परन्तु हिसाब लेने के पश्चात् उनसे ये बौछारें सहन नहीं हुईं। आखिर वह कह ही उठे, "भाई तुम लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हो? यह देखो मैं तो अपना हिसाब भी ले आया।"

"हिसाब ले आया या निकाल दिया।" एक मन-चले कम्पोजीटर ने कहा। "साथियों के साथ दगा करने वाले व्यक्ति की यही सजा होनी चाहिए।"

सरदार करमसिंह ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाता हुआ आगे निकल गया। सब मजदूरों ने मिलकर उसके पीछे हथेलियाँ पीट दीं, और सब ने 'करमसिंह मुर्दाबाद' का नारा लगाया।

रशीदा यह दृश्य खिड़की के अन्दर से देख रही थी और देख कर प्रसन्न हो रही थी। पत्र छपने का प्रबन्ध रशीदा ने नई दिल्ली के एक बड़े प्रेस में कर लिया था। इसलिए पत्र ठीक समय पर ही निकला। उसकी व्यवस्था में कोई बाधा नहीं आई। कई-कई विभागों का कार्य रशीदा और अमरनाथजी दोनों मिलकर कर रहे थे, इसलिए दो रोज दोनों को बिला सोए हो गए थे। मेज पर बैठे-बैठे कई बार आँखें मिच जाती थीं। चाय के सहारे दिन कट रहा था। रमेश बाबू का सम्पादकीय नहीं आया, इसी चिंता में अमरनाथजी बैठे थे।

उधर कमला के पास भी हर समय हड़ताल की सूचना जाती थी। आजाद का विचार था कि कमला एक छोटे से प्रेस पर अपनी शक्ति का अपव्यय कर रही है, परन्तु फिर भी कमला के प्रत्येक कार्य को बल देना उसका धर्म था। आजाद करना जानता था, विचारने की आवश्यकता न समझते हुए।

शान्ता ने कमला को कितना समझाया कि वह व्यर्थ के लिए आपस के आदमियों से टक्कर न ले, परन्तु कमला के सामने पार्टी के प्रोग्राम का प्रश्न था। वह अपने और पराए आदमियों को क्या जाने? 'इन्सान' कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध आवाज उठाता है, इसलिए इस पत्र को नहीं चलने दिया जाएगा, नहीं चलने दिया जाएगा; यह कमला ने दृढ़तापूर्वक कह दिया। कमला अपने विचार पर अटल थी, वह हिलना नहीं जानती थी।

"आज मैं अन्तिम बार तुम्हें समझाने के लिए आई हूँ कमला!" शान्ता ने प्यार से कमला के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

समझ रहा होगा कि वह इसे प्यार कर रही है।" अमरनाथजी ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

रशीदा यह सुनकर मुस्कुरा दी, परन्तु साथ ही बोली, "तो फिर हमें इसके विषय में क्या करना चाहिए ?"

"करना क्या चाहिए ? करमसिंह को जवाब दे देना चाहिए। तुम करमसिंह से कहना कि कमलादेवी यहाँ आई थीं। आप जानते ही हैं कि वह अमरनाथजी को प्रेम करती हैं। इसलिए वह उनसे कह गई कि उन्हें कमला के सिर की कसम जो करमसिंह को वह तुरन्त नौकरी से न हटा दें, क्योंकि वही हड़ताल को खराब कर रहा है। इस मुहब्बत के जाल में फँसकर आपको इस नौकरी से इस्तीफा मिल रहा है। अमरनाथजी को भैया इंचार्ज बना गए हैं, सो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना मेरी शक्ति से भी बाहर है।" अमरनाथजी मुस्कुरा कर बोले।

"फिर क्या होगा ?" रशीदा ने कहा।

"फिर क्या होगा ? करमसिंह जाकर कमला से टकराएगा और जब कमला को यह पता चलेगा कि इसे वहाँ से इस्तीफा हो गया है तो वह भी इससे बातें करना बन्द कर देगी। इसके पश्चात् यह फिर यहीं पर आएगा और अपनी गलती की क्षमा माँगेगा। उस समय यह तुमको अधिकार होगा कि तुम इसे चाहो तो दुबारा रखना या न रखना।" अमरनाथजी ने कहा।

इसी प्रकार बातें हो रही थीं कि सामने से सरदार करमसिंह अन्दर आए। वह यह सोचता हुआ आ रहा था कि आते ही चाय मिलेगी और फिर...परन्तु वहाँ पहुँचते ही रशीदा उसे दूसरे कमरे में ले गई और मासिक वेतन का रजिस्टर नकालकर उसका चुकता हिसाब देकर हस्ताक्षर ले लिए। यह सब कार्य बिला एक शब्द भी बोले हो गया और फिर रशीदा ने ऊपर वाले वाक्य जो अमरनाथजी ने कहे थे दुहरा दिए।

"आप मुझे बिला अपराध जवाब दे रही हैं रशीदा बहन !" करमसिंह ने गिड़-गिड़ा कर कहा।

"मेरे तो अधिकार में ही कुछ छोड़ कर नहीं गए रमेश भैया ! सब अधिकार अमरनाथजी को ही है। मैं नहीं समझती कि कमला ने तुमसे न जाने कब के ये काँटे निकाले हैं।" गम्भीरतापूर्वक रशीदा ने कहा।

सरदार करमसिंह का साहस अब अमरनाथजी से बातें करने का न हुआ क्योंकि उनके मन में चोर था। सरदारजी के कमजोर मस्तिष्क में यह बात न आ सकी कि कमला ऐसी परिस्थिति में भला अमरनाथजी के पास कैसे आ सकती थी ? कमला और अमरनाथजी का अकेले-अकेले बागों में घूमना, सैर के लिए जाना, सिनेमा देखना, होटलों में चाय पीना, काफी हाउस में गप्पें लगाना, सरदार करमसिंह और

उजागरमल का उल्लू बनाना, ये सब ऐसी बातें थीं कि जिन्हें करमसिंह भुला नहीं सकता था। उसे विश्वास हो गया और कमला के प्रति इतना क्रोध आया कि जाकर उस गिरगिट जैसी नन्हीं-सी छोकरी को नोच-नोच कर खसोट डाले। उसे क्रोध आ रहा था कि क्यों उसने करमसिंह की लगी लगाई अच्छी खासी नौकरी छुड़वा दी ? सरदारजी अपने वेतन के रुपए लेकर सिर झुकाये हुए जब कार्यालय से बाहर निकले तो फिर उन पर 'करमसिंह मुर्दाबाद' की फटकारें पड़ीं, परन्तु हिसाब लेने के पश्चात् उनसे ये बौछारें सहन नहीं हुईं। आखिर वह कह ही उठे, "भाई तुम लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हो ? यह देखो मैं तो अपना हिसाब भी ले आया।"

"हिसाब ले आया या निकाल दिया।" एक मन-चले कम्पोजीटर ने कहा। "साथियों के साथ दगा करने वाले व्यक्ति की यही सजा होनी चाहिए।"

सरदार करमसिंह ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाता हुआ आगे निकल गया। सब मजदूरों ने मिलकर उसके पीछे हथेलियाँ पीट दीं, और सब ने 'करमसिंह मुर्दाबाद' का नारा लगाया।

रशीदा यह दृश्य खिड़की के अन्दर से देख रही थी और देख कर प्रसन्न हो रही थी। पत्र छपने का प्रबन्ध रशीदा ने नई दिल्ली के एक बड़े प्रेस में कर लिया था। इसलिए पत्र ठीक समय पर ही निकला। उसकी व्यवस्था में कोई बाधा नहीं आई। कई-कई विभागों का कार्य रशीदा और अमरनाथजी दोनों मिलकर कर रहे थे, इसलिए दो रोज दोनों को बिना सोए हो गए थे। मेज पर बैठे-बैठे कई बार आँखें मिच जाती थीं। चाय के सहारे दिन कट रहा था। रमेश बाबू का सम्पादकीय नहीं आया, इसी चिंता में अमरनाथजी बैठे थे।

उधर कमला के पास भी हर समय हड़ताल की सूचना जाती थी। आजाद का विचार था कि कमला एक छोटे से प्रेस पर अपनी शक्ति का अपव्यय कर रही है, परन्तु फिर भी कमला के प्रत्येक कार्य को बल देना उसका धर्म था। आजाद करना जानता था, विचारने की आवश्यकता न समझते हुए।

शान्ता ने कमला को कितना समझाया कि वह व्यर्थ के लिए आपस के आदमियों से टक्कर न ले, परन्तु कमला के सामने पार्टी के प्रोग्राम का प्रश्न था। वह अपने और पराए आदमियों को क्या जाने ? 'इन्सान' कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध आवाज उठाता है, इसलिए इस पत्र को नहीं चलने दिया जाएगा, नहीं चलने दिया जाएगा; यह कमला ने दृढ़तापूर्वक कह दिया। कमला अपने विचार पर अटल थी, वह हिलना नहीं जानती थी।

"आज मैं अन्तिम बार तुम्हें समझाने के लिए आई हूँ कमला !" शान्ता ने प्यार से कमला के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"मुझे क्षमा कर दो जीजी ! मैं अपने निश्चय से पीछे नहीं हट सकती। यह पत्र जीवित नहीं रह सकता। दिल्ली में कोई भी पत्र कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध आवाज उठाकर जीवित नहीं रह सकता। हम इन्हें समाप्त कर देंगे, यह हमारा दृढ़ निश्चय है।" कमला ने बहुत गम्भीरतापूर्वक कहा।

"और तुम्हारा क्या निश्चय है आजाद भैया ?" शान्ता ने कहा।

"मेरा कोई निश्चय नहीं है बहन ! मैं एक पार्टी को अपना चुका। वह पार्टी जो आज्ञा मुझे देगी मैं वही करूँगा। सही या गलत निश्चय करना मेरा काम नहीं। मेरा काम है काम करना और उसे करूँगा। तुम मेरी आदत से अपरिचित नहीं हो, इसलिए अधिक कहना व्यर्थ ही है बहन ! मुझे दुःख है कि मैं तुम्हारा कहना मानने में असमर्थ हूँ।" दृढ़तापूर्वक आजाद ने कहा।

शान्ता निराश होकर चली गई, परन्तु वह अब एक-एक क्षण की सूचना रखती थी। कैसा कुसमय आ गया कि अपने ही आपस में लड़ने लगे ?

"शान्ता बहन को आज बहुत दुःख हुआ हमारे व्यवहार से।" आजाद ने शान्ता के चले जाने पर कमला से कहा।

"हाँ ! परन्तु किया भी क्या जा सकता था ? हमारे सामने व्यक्तिगत कोई प्रश्न नहीं है। यह हमारा संघर्ष व्यक्ति के लिए नहीं, किसी विशेष समाज के लिए नहीं, यह तो देश के उन सभी व्यक्तियों के लिए है जिनके पास खाने के लिए अन्न नहीं और पहनने के लिए कपड़ा नहीं। कांग्रेस-सरकार ने सिवाय झूठे वायदे करने के और आज तक क्या किया है ? केवल अधिकारी-वर्ग की चांदी है और बेचारे कांग्रेस के सत्याग्रही जिनके घर बरबाद हो गए पिछले आन्दोलन में, आज भी उसी दीन दशा में पड़े हैं, क्योंकि न तो वे कोई अधिकार ही पा सके और न पैसा ही। उन्हें अभी एक और सत्याग्रह करना होगा और वह सत्याग्रह कांग्रेस के झंडे के नीचे नहीं होगा, वह होगा हमारे झंडे के नीचे। हमारा सत्याग्रह केवल दांत गिड़-गिड़ा कर माँगने के लिए नहीं होगा, बल्कि वह होगा दांत पैनाकर अपना खून चूसने वाले की छाती पर चढ़कर उसका रक्त पी जाने के लिए। हम मानव का और आर्थिक शोषण सहन नहीं कर सकते। इसे रुकना होगा हमारी अथाह शक्ति के सामने।" कमला ने गम्भीरतापूर्वक त्योरी चढ़ाकर कहा।

आजाद का कमला के मत से किसी भी रूप से मतभेद नहीं था और वह पार्टी के कार्य के लिए हर प्रकार का बलिदान देने को उद्यत था। कमला उसका मस्तिष्क थी और वह था कार्य करने की मैशीन। एक मैशीन से गलती हो सकती थी, परन्तु आजाद से नहीं। बन्दूक चाहे समय पर गोली न छोड़ सके, परन्तु आजाद समय पर चूकने वाला नहीं था। एक महान् शक्ति थी यह, जिसे सन् ब्यालीस के आन्दोलन में

रमेश वाबू ने तैयार किया था, परन्तु अब वह थी कमला के हाथ में।

कमला का अपना पृथक् मार्ग था। उसमें कोई स्वार्थ नहीं था, आपसी वैर-भाव नहीं था, वहाँ था सिद्धान्त। और उस सिद्धान्त के लिए कमला कटिबद्ध थी हर प्रकार का बलिदान देने को। आजाद और कमला फिर हड़ताल के विषय में बातें करने लगे। हड़ताल सफल थी, आज तीन दिन हो गए। इसी बीच में कुछ बड़बड़ाते हुए सरदार करमसिंहजी आ टपके। करमसिंह कमला पर बहुत झल्लाये, परन्तु कमला अभी तक उस झल्लाने का रहस्य न समझ पाई। अन्त में करमसिंह ने वह सब कुछ कह सुनाया जो रशीदा ने उससे कहा था। वह सुनकर आजाद और कवला दोनों ही खिल खिला कर हँस पड़े और करमसिंह उल्लू की तरह उनका मुंह देखता रह गया।

"वाह सरदार करमसिंहजी! तुम्हारी अक्ल को भी कीड़े चुग गए। रहे आप भी कोरे-के-कोरे ही। मैंने कई बार आपसे कहा है कि कभी-कभी जरा दिमाग पर भी जोर दे लिया करो, परन्तु आप हैं कि अपने दिमाग से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखना चाहते।" मुस्कुराकर कमला बोली।

"क्यों? किस तरह?" उसी प्रकार क्रोध में लाल होकर करमसिंह ने कहा। सच बात तो यह थी कि करमसिंह को इस समय कमला पर इतना क्रोध आ रहा था कि वह न जाने क्या कर देता परन्तु आजाद के डील डौल को देखकर उनका साहस नहीं हो रहा था कुछ करने का।

"वह इस तरह कि एक तो आपके दिमाग में यह किस तरह आया कि मैं वहाँ जा सकती हूँ और दूसरे यह कि जिनका सर्वस्व नाश करने पर मैं तुली हूँ वह मेरा कहना मान कर तुम्हें निकाल भी सकते हैं। वे लोग मूर्ख नहीं हैं। उन्होंने ताड़ लिया होगा कि जब कार्यालय के सब आदमी बाहर हैं और फिर भी हमारे राज खुल जाते हैं तो राज खोलने वाला सरदार करमसिंह के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। समझे आप!" कमला एक ऐसी मुस्कुराहट के साथ यह सब कह रही थी कि मानो कुछ हुआ ही नहीं।

"समझा क्या? नौकरी से हाथ धो बैठा और जीवन में अमरनाथजी को मुँह दिखलाने योग्य न रहा।" मन को मार कर करमसिंह ने कहा।

"तो यार क्या हुआ? क्या जिन्दगी-भर नौकरी ही करते रहते? हमारे साथ जेल चलो ना! वहाँ बहुत ऐश की छनती है।" आजाद ने हँसकर कहा।

"जेल!" करमसिंह को सुनकर चक्कर आ गया और वह कितनी ही देर तक सिर पकड़े बैठा रहा। "ना बाबा! ना! अपने बस का यह रोग नहीं है। हम तो कमलादेवी आपकी खातिर यहाँ आते-जाते थे कि जो कुछ सेवा हमसे बन पड़े कर दें, परन्तु आपने तो हमारा बेड़ा ही गर्क कर दिया।" दुःखी भाव से करमसिंह ने कहा

"मुझे क्षमा कर दो जीजी ! मैं अपने निश्चय से पीछे नहीं हट सकती। यह पत्र जीवित नहीं रह सकता। दिल्ली में कोई भी पत्र कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध आवाज उठाकर जीवित नहीं रह सकता। हम इन्हें समाप्त कर देंगे, यह हमारा दृढ़ निश्चय है।" कमला ने बहुत गम्भीरतापूर्वक कहा।

"और तुम्हारा क्या निश्चय है आजाद भैया ?" शान्ता ने कहा।

"मेरा कोई निश्चय नहीं है बहन ! मैं एक पार्टी को अपना चुका। वह पार्टी जो आज्ञा मुझे देगी मैं वही करूँगा। सही या गलत निश्चय करना मेरा काम नहीं। मेरा काम है काम करना और उसे करूँगा। तुम मेरी आदत से अपरिचित नहीं हो, इसलिए अधिक कहना व्यर्थ ही है बहन ! मुझे दुःख है कि मैं तुम्हारा कहना मानने में असमर्थ हूँ।" दृढ़तापूर्वक आजाद ने कहा।

शान्ता निराश होकर चली गई, परन्तु वह अब एक-एक क्षण की सूचना रखती थी। कैसा कुसमय आ गया कि अपने ही आपस में लड़ने लगे ?

"शान्ता बहन को आज बहुत दुःख हुआ हमारे व्यवहार से।" आजाद ने शान्ता के चले जाने पर कमला से कहा।

"हाँ ! परन्तु किया भी क्या जा सकता था ? हमारे सामने व्यक्तिगत कोई प्रश्न नहीं है। यह हमारा संघर्ष व्यक्ति के लिए नहीं, किसी विशेष समाज के लिए नहीं, यह तो देश के उन सभी व्यक्तियों के लिए है जिनके पास खाने के लिए अन्न नहीं और पहनने के लिए कपड़ा नहीं। कांग्रेस-सरकार ने सिवाय झूठे वायदे करने के और आज तक क्या किया है ? केवल अधिकारी-वर्ग की चांदी है और बेचारे कांग्रेस के सत्याग्रही जिनके घर बरबाद हो गए पिछले आन्दोलन में, आज भी उसी दीन दशा में पड़े हैं, क्योंकि न तो वे कोई अधिकार ही पा सके और न पैसा ही। उन्हें अभी एक और सत्याग्रह करना होगा और वह सत्याग्रह कांग्रेस के झंडे के नीचे नहीं होगा, वह होगा हमारे झंडे के नीचे। हमारा सत्याग्रह केवल दांत गिड़-गिड़ा कर माँगने के लिए नहीं होगा, बल्कि वह होगा दांत पैनाकर अपना खून चूसने वाले की छाती पर चढ़कर उसका रक्त पी जाने के लिए। हम मानव का और आर्थिक शोषण सहन नहीं कर सकते। इसे रुकना होगा हमारी अथाह शक्ति के सामने।" कमला ने गम्भीरतापूर्वक त्योरी चढ़ाकर कहा।

आजाद का कमला के मत से किसी भी रूप से मतभेद नहीं था और वह पार्टी के कार्य के लिए हर प्रकार का बलिदान देने को उद्यत था। कमला उसका मस्तिष्क थी और वह था कार्य करने की मैशीन। एक मैशीन से गलती हो सकती थी, परन्तु आजाद से नहीं। बन्दूक चाहे समय पर गोली न छोड़ सके, परन्तु आजाद समय पर चूकने वाला नहीं था। एक महान् शक्ति थी यह, जिसे सन् ब्यालीस के आन्दोलन में

रमेश बाबू ने तैयार किया था, परन्तु अब वह थी कमला के हाथ में।

कमला का अपना पृथक् मार्ग था। उसमें कोई स्वार्थ नहीं था, आपसी वैर-भाव नहीं था, वहाँ था सिद्धान्त। और उस सिद्धान्त के लिए कमला कटिबद्ध थी हर प्रकार का बलिदान देने को। आजाद और कमला फिर हड़ताल के विषय में बातें करने लगे। हड़ताल सफल थी, आज तीन दिन हो गए। इसी बीच में कुछ बड़बड़ाते हुए सरदार करमसिंहजी आ टपके। करमसिंह कमला पर बहुत झल्लाये, परन्तु कमला अभी तक उस झल्लाने का रहस्य न समझ पाई। अन्त में करमसिंह ने वह सब कुछ कह सुनाया जो रशीदा ने उससे कहा था। वह सुनकर आजाद और कवला दोनों ही खिल खिला कर हँस पड़े और करमसिंह उल्लू की तरह उनका मुंह देखता रह गया।

"वाह सरदार करमसिंहजी ! तुम्हारी अक्ल को भी कीड़े चुग गए। रहे आप भी कोरे-के-कोरे ही। मैंने कई बार आपसे कहा है कि कभी-कभी जरा दिमाग पर भी जोर दे लिया करो, परन्तु आप हैं कि अपने दिमाग से कोई सम्बन्ध ही नहीं रखना चाहते।" मुस्कुराकर कमला बोली।

"क्यों ? किस तरह ?" उसी प्रकार क्रोध में लाल होकर करमसिंह ने कहा। सच बात तो यह थी कि करमसिंह को इस समय कमला पर इतना क्रोध आ रहा था कि वह न जाने क्या कर देता परन्तु आजाद के डील डौल को देखकर उनका साहस नहीं हो रहा था कुछ करने का।

"वह इस तरह कि एक तो आपके दिमाग में यह किस तरह आया कि मैं वहाँ जा सकती हूँ और दूसरे यह कि जिनका सर्वस्व नाश करने पर मैं तुली हूँ वह मेरा कहना मान कर तुम्हें निकाल भी सकते हैं। वे लोग मूर्ख नहीं हैं। उन्होंने ताड़ लिया होगा कि जब कार्यालय के सब आदमी बाहर हैं और फिर भी हमारे राज खुल जाते हैं तो राज खोलने वाला सरदार करमसिंह के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। समझे आप !" कमला एक ऐसी मुस्कुराहट के साथ यह सब कह रही थी कि मानो कुछ हुआ ही नहीं।

"समझा क्या ? नौकरी से हाथ धो बैठा और जीवन में अमरनाथजी को मुँह दिखलाने योग्य न रहा।" मन को मार कर करमसिंह ने कहा।

"तो यार क्या हुआ ? क्या जिन्दगी-भर नौकरी ही करते रहते ? हमारे साथ जेल चलो ना ! वहाँ बहुत ऐश की छनती है।" आजाद ने हँसकर कहा।

"जेल !" करमसिंह को सुनकर चक्कर आ गया और वह कितनी ही देर तक सिर पकड़े बैठा रहा। "ना बाबा ! ना ! अपने बस का यह रोग नहीं है। हम तो कमलादेवी आपकी खातिर यहाँ आते-जाते थे कि जो कुछ सेवा हमसे बन पड़े कर दें, परन्तु आपने तो हमारा बेड़ा ही गर्क कर दिया।" दुःखी भाव से करमसिंह ने कहा

और फिर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया।

"करमसिंह तुम दुखी न हो। मेरे काम के लिए तुम्हारी नौकरी गई है, इसलिए मैं तुम्हें दूसरी नौकरी इससे भी अच्छी दिला दूँगी। जो कार्य तुम वहाँ कर रहे थे वही कार्य तुमसे लिया जाएगा।" कमला ने बहुत ही गम्भीरतापूर्वक करमसिंह को आश्वासन देते हुए कहा।

"सच !" कह कर आशा भरे नेत्रों से करमसिंह ने कमला के मुख पर विश्वास के साथ देखा।

"सच ! कल से काम पर आ जाना। प्लाजा सिनेमा के ऊपर जो न्यूज ऐजेन्सी है, उसी में तुम काम करना।" कमला ने कहा।

"जो आज्ञा, परन्तु वेतन क्या होगा ?" करमसिंह ने पूछा।

"वही होगा जो तुम्हें वहाँ मिलता था।" कहकर कमला ने आजाद की ओर यह विचार कर मुँह कर लिया कि अब तो यह चला ही जाएगा।

उसके हृदय में जो जलन थी, जो क्रोध था कमला के प्रति वह सब काफूर हो गया; परन्तु वह जेल वाली जो बेतुकी बात आजाद ने कही थी वह कानों में से न निकल सकी। वह बराबर अभी तक कानों में गूंज रही थी। करमसिंह ने सोचा कि इनका क्या है ? ये तो मस्ताने जीव ठहरे, यहाँ बैठकर रोटियाँ न खाईं जेलखाने में बैठकर खालीं, परन्तु मैं यदि जेल चला गया तो मेरे बाला-बच्चों का क्या होगा ? सरदारनीजी का क्या होगा ? इसी उलझन में फँसा हुआ न जाने क्या सोचता करमसिंह वहाँ से चल दिया।

करमसिंह के वहाँ से चले जाने के पश्चात् कमला ने आजाद से कहा, "अब यह स्थान सुरक्षित नहीं रहा आजाद बाबू ! क्योंकि यह मूर्ख व्यक्ति पता नहीं अब जाकर क्या करे ? इसलिए यह स्थान छोड़ कर अब हमें किसी अन्य स्थान पर डेरा लगाना चाहिए और दूसरी बात यह भी हो सकती है कि इसे इस प्रकार निकालकर शायद इसका पीछा करने के लिए पुलिस में सूचना दे दी गई हो।"

"तुम्हारा विचार ठीक है।" आजाद ने अनुमति दे दी और दोनों अपने-अपने थैले लेकर चल पड़े। दोनों ने अपना वेश बदला हुआ था। कमला को कोई कमला और आजाद को कोई आजाद नहीं कह सकता था। कमला ने अपने बाल पीछे से कटवा लिए थे और साड़ी के स्थान पर पैंण्ट पहननी प्रारम्भ कर दी थी। देखने में अब वह बिलकुल एक ऐंग्लोइण्डियन लड़की मालूम पड़ती थी। एक छोटा-सा हैट वह लगाती थी। उसे देखकर बहुत से क्रिश्चियन तथा ऐंग्लोइण्डियन यह खोज करने का प्रयत्न करने लगे थे कि वह कहाँ से आती है, परन्तु किसी को कुछ पता नहीं चलता था उसके विषय में।

आजाद ने भी खद्दर के कुर्ते-धोती को तिलांजली दे दी थी और अब वह सूटेड-बूटेड रहते थे। बाजार में चलते समय सिगार मुँह में लगा रहता था और आँखों पर उन्होंने चश्मा लगाना प्रारम्भ कर दिया था, चश्मा लग जाने से शक्ल इतनी बदल जाती थी कि एक दिन तो कमला को भी पहचानने में धोखा हो गया और उस दिन उसने फतवा दे दिया कि दिल्ली का खुफिया पुलिस-विभाग तुम्हें नहीं पकड़ सकता, नहीं पकड़ सकता।

दोनों ने अपनी-अपनी साईकिलें लीं और एक ओर को चल दिए। साईकिलों पर तेजी से आगे पीछे चले जा रहे थे कि अचानक सामने से एक पुलिस का दस्ता आता मिला। पुलिस को देखकर दोनों में एक भी सकपकाया नहीं और सीधे चलते चले गए। इसके पश्चात् पुलिस की चौकी के सामने से दोनों व्यक्ति बड़े ठाठ से निकले।

२७

आज तीसरा दिन था हड़ताल का और प्रेस-कर्मचारी किसी प्रकार कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। इन कर्मचारियों में दो आदमियों को कमला ने तोड़ कर अपने हाथ में ले लिया था। वे कम्यूनिस्ट पार्टी के मैम्बर बन गए थे। इसलिए उन पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ना असम्भव था।

रशीदा ने कई बार कर्मचारियों को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वे दोनों व्यक्ति नेता बनकर सामने आए और कोई समझौते की बातचीत न हो सकी। रशीदा ने हरचन्द चाहा कि कर्मचारियों से मिलकर उनकी कठिनाइयों को दूर करने का आश्वासन दे परन्तु इन दो व्यक्तियों ने रशीदा को उनके निकट तक न पहुँचने दिया। अमरनाथजी यों अपने काम के धनी थे परन्तु वह मजदूरों की हुल्लड़बाजी से बहुत घबराते थे। उनकी किसी भी बात का जवाब देना उनकी सामर्थ्य से बाहर की बात थी। राजनीति के लेख लिखना और बात थी और युद्ध के मैदान में जाकर गोली चलाना और बात, पत्र और कार्यालय-संचालन करना और बात और हड़ताल के सताए हुए व्यक्तियों की नासमझ बातों का जवाब देना और बात; फिर उनके पास वह प्रभावशाली व्यक्तित्व भी नहीं था जो इस विध्वंसकारी शक्ति का सामना कर सके। अमरनाथजी को अपने कर्मचारियों पर रह-रह कर क्रोध आ रहा था कि ये कैसे मूर्ख

और फिर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया।

"करमसिंह तुम दुखी न हो। मेरे काम के लिए तुम्हारी नौकरी गई है, इसलिए मैं तुम्हें दूसरी नौकरी इससे भी अच्छी दिला दूँगी। जो कार्य तुम वहाँ कर रहे थे वही कार्य तुमसे लिया जाएगा।" कमला ने बहुत ही गम्भीरतापूर्वक करमसिंह को आश्वासन देते हुए कहा।

"सच!" कह कर आशा भरे नेत्रों से करमसिंह ने कमला के मुख पर विश्वास के साथ देखा।

"सच! कल से काम पर आ जाना। प्लाजा सिनेमा के ऊपर जो न्यूज ऐजेन्सी है, उसी में तुम काम करना।" कमला ने कहा।

"जो आज्ञा, परन्तु वेतन क्या होगा?" करमसिंह ने पूछा।

"वही होगा जो तुम्हें वहाँ मिलता था।" कहकर कमला ने आजाद की ओर यह विचार कर मुँह कर लिया कि अब तो यह चला ही जाएगा।

उसके हृदय में जो जलन थी, जो क्रोध था कमला के प्रति वह सब काफूर हो गया; परन्तु वह जेल वाली जो बेतुकी बात आजाद ने कही थी वह कानों में से न निकल सकी। वह बराबर अभी तक कानों में गूंज रही थी। करमसिंह ने सोचा कि इनका क्या है? ये तो मस्ताने जीव ठहरे, यहाँ बैठकर रोटियाँ न खाईं जेलखाने में बैठकर खालीं, परन्तु मैं यदि जेल चला गया तो मेरे बाला-बच्चों का क्या होगा? सरदारनीजी का क्या होगा? इसी उलझन में फँसा हुआ न जाने क्या सोचता करमसिंह वहाँ से चल दिया।

करमसिंह के वहाँ से चले जाने के पश्चात् कमला ने आजाद से कहा, "अब यह स्थान सुरक्षित नहीं रहा आजाद बाबू! क्योंकि यह मूर्ख व्यक्ति पता नहीं अब जाकर क्या करे? इसलिए यह स्थान छोड़ कर अब हमें किसी अन्य स्थान पर डेरा लगाना चाहिए और दूसरी बात यह भी हो सकती है कि इसे इस प्रकार निकालकर शायद इसका पीछा करने के लिए पुलिस में सूचना दे दी गई हो।"

"तुम्हारा विचार ठीक है।" आजाद ने अनुमति दे दी और दोनों अपने-अपने थैले लेकर चल पड़े। दोनों ने अपना वेश बदला हुआ था। कमला को कोई कमला और आजाद को कोई आजाद नहीं कह सकता था। कमला ने अपने बाल पीछे से कटवा लिए थे और साड़ी के स्थान पर पैण्ट पहननी प्रारम्भ कर दी थी। देखने में अब वह बिलकुल एक ऐंग्लोइण्डियन लड़की मालूम पड़ती थी। एक छोटा-सा हैट वह लगाती थी। उसे देखकर बहुत से क्रिश्चियन तथा ऐंग्लोइण्डियन यह खोज करने का प्रयत्न करने लगे थे कि वह कहाँ से आती है, परन्तु किसी को कुछ पता नहीं चलता था उसके विषय में।

आजाद ने भी खद्दर के कुर्ते-धोती को तिलांजली दे दी थी और अब वह सूटेड-बूटेड रहते थे। बाजार में चलते समय सिगार मुंह में लगा रहता था और आँखों पर उन्होंने चश्मा लगाना प्रारम्भ कर दिया था, चश्मा लग जाने से शक्ल इतनी बदल जाती थी कि एक दिन तो कमला को भी पहचानने में धोखा हो गया और उस दिन उसने फतवा दे दिया कि दिल्ली का खुफिया पुलिस-विभाग तुम्हें नहीं पकड़ सकता, नहीं पकड़ सकता।

दोनों ने अपनी-अपनी साईकिलें लीं और एक ओर को चल दिए। साईकिलों पर तेजी से आगे पीछे चले जा रहे थे कि अचानक सामने से एक पुलिस का दस्ता आता मिला। पुलिस को देखकर दोनों में एक भी सकपकाया नहीं और सीधे चलते चले गए। इसके पश्चात् पुलिस की चौकी के सामने से दोनों व्यक्ति बड़े ठाठ से निकले।

२७

आज तीसरा दिन था हड़ताल का और प्रेस-कर्मचारी किसी प्रकार कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। इन कर्मचारियों में दो आदमियों को कमला ने तोड़ कर अपने हाथ में ले लिया था। वे कम्यूनिस्ट पार्टी के मैम्बर बन गए थे। इसलिए उन पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ना असम्भव था।

रशीदा ने कई बार कर्मचारियों को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वे दोनों व्यक्ति नेता बनकर सामने आए और कोई समझौते की बातचीत न हो सकी। रशीदा ने हरचन्द चाहा कि कर्मचारियों से मिलकर उनकी कठिनाइयों को दूर करने का आश्वासन दे परन्तु इन दो व्यक्तियों ने रशीदा को उनके निकट तक न पहुँचने दिया। अमरनाथजी यों अपने काम के धनी थे परन्तु वह मजदूरों की हुल्लड़बाजी से बहुत घबराते थे। उनकी किसी भी बात का जवाब देना उनकी सामर्थ्य से बाहर की बात थी। राजनीति के लेख लिखना और बात थी और युद्ध के मैदान में जाकर गोली चलाना और बात, पत्र और कार्यालय-संचालन करना और बात और हड़ताल के सताए हुए व्यक्तियों की नासमझ बातों का जवाब देना और बात; फिर उनके पास वह प्रभावशाली व्यक्तित्व भी नहीं था जो इस विध्वंसकारी शक्ति का सामना कर सके। अमरनाथजी को अपने कर्मचारियों पर रह-रह कर क्रोध आ रहा था कि ये कैसे मूर्ख

और फिर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया।

"करमसिंह तुम दुखी न हो। मेरे काम के लिए तुम्हारी नौकरी गई है, इसलिए मैं तुम्हें दूसरी नौकरी इससे भी अच्छी दिला दूंगी। जो कार्य तुम वहाँ कर रहे थे वही कार्य तुमसे लिया जाएगा।" कमला ने बहुत ही गम्भीरतापूर्वक करमसिंह को आश्वासन देते हुए कहा।

"सच !" कह कर आशा भरे नेत्रों से करमसिंह ने कमला के मुख पर विश्वास के साथ देखा।

"सच ! कल से काम पर आ जाना। प्लाजा सिनेमा के ऊपर जो न्यूज ऐजेन्सी है, उसी में तुम काम करना।" कमला ने कहा।

"जो आज्ञा, परन्तु वेतन क्या होगा ?" करमसिंह ने पूछा।

"वही होगा जो तुम्हें वहाँ मिलता था।" कहकर कमला ने आजाद की ओर यह विचार कर मुँह कर लिया कि अब तो यह चला ही जाएगा।

उसके हृदय में जो जलन थी, जो क्रोध था कमला के प्रति वह सब काफूर हो गया; परन्तु वह जेल वाली जो वेतुकी बात आजाद ने कही थी वह कानों में से न निकल सकी। वह बराबर अभी तक कानों में गूंज रही थी। करमसिंह ने सोचा कि इनका क्या है ? ये तो मस्ताने जीव ठहरे, यहाँ बैठकर रोटियाँ न खाईं जेलखाने में बैठकर खालीं, परन्तु मैं यदि जेल चला गया तो मेरे बाला-बच्चों का क्या होगा ? सरदारनीजी का क्या होगा ? इसी उलझन में फँसा हुआ न जाने क्या सोचता करमसिंह वहाँ से चल दिया।

करमसिंह के वहाँ से चले जाने के पश्चात् कमला ने आजाद से कहा, "अब यह स्थान सुरक्षित नहीं रहा आजाद बाबू ! क्योंकि यह मूर्ख व्यक्ति पता नहीं अब जाकर क्या करे ? इसलिए यह स्थान छोड़ कर अब हमें किसी अन्य स्थान पर डेरा लगाना चाहिए और दूसरी बात यह भी हो सकती है कि इसे इस प्रकार निकालकर शायद इसका पीछा करने के लिए पुलिस में सूचना दे दी गई हो।"

"तुम्हारा विचार ठीक है।" आजाद ने अनुमति दे दी और दोनों अपने-अपने थैले लेकर चल पड़े। दोनों ने अपना वेश बदला हुआ था। कमला को कोई कमला और आजाद को कोई आजाद नहीं कह सकता था। कमला ने अपने बाल पीछे से कटवा लिए थे और साड़ी के स्थान पर पैण्ट पहननी प्रारम्भ कर दी थी। देखने में अब वह बिलकुल एक ऐंग्लोइण्डियन लड़की मालूम पड़ती थी। एक छोटा-सा हैट वह लगाती थी। उसे देखकर बहुत से क्रिश्चियन तथा ऐंग्लोइण्डियन यह खोज करने का प्रयत्न करने लगे थे कि वह कहाँ से आती है, परन्तु किसी को कुछ पता नहीं चलता था उसके विषय में।

आजाद ने भी खद्दर के कुर्ते-धोती को तिलांजली दे दी थी और अब वह सूटेड-बूटेड रहते थे। बाजार में चलते समय सिगार मुँह में लगा रहता था और आँखों पर उन्होंने चश्मा लगाना प्रारम्भ कर दिया था, चश्मा लग जाने से शक्ल इतनी बदल जाती थी कि एक दिन तो कमला को भी पहचानने में धोखा हो गया और उस दिन उसने फतवा दे दिया कि दिल्ली का खुफिया पुलिस-विभाग तुम्हें नहीं पकड़ सकता, नहीं पकड़ सकता।

दोनों ने अपनी-अपनी साईकिलें लीं और एक ओर को चल दिए। साईकिलों पर तेजी से आगे पीछे चले जा रहे थे कि अचानक सामने से एक पुलिस का दस्ता आता मिला। पुलिस को देखकर दोनों में एक भी सकपकाया नहीं और सीधे चलते चले गए। इसके पश्चात् पुलिस की चौकी के सामने से दोनों व्यक्ति बड़े ठाठ से निकले।

२७

आज तीसरा दिन था हड़ताल का और प्रेस-कर्मचारी किसी प्रकार कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। इन कर्मचारियों में दो आदमियों को कमला ने तोड़ कर अपने हाथ में ले लिया था। वे कम्यूनिस्ट पार्टी के मैम्बर बन गए थे। इसलिए उन पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ना असम्भव था।

रशीदा ने कई बार कर्मचारियों को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वे दोनों व्यक्ति नेता बनकर सामने आए और कोई समझौते की बातचीत न हो सकी। रशीदा ने हरचन्द चाहा कि कर्मचारियों से मिलकर उनकी कठिनाइयों को दूर करने का आश्वासन दे परन्तु इन दो व्यक्तियों ने रशीदा को उनके निकट तक न पहुँचने दिया। अमरनाथजी यों अपने काम के धनी थे परन्तु वह मजदूरों की हुल्लड़बाजी से बहुत घबराते थे। उनकी किसी भी बात का जवाब देना उनकी सामर्थ्य से बाहर की बात थी। राजनीति के लेख लिखना और बात थी और युद्ध के मैदान में जाकर गोली चलाना और बात, पत्र और कार्यालय-संचालन करना और बात और हड़ताल के सताए हुए व्यक्तियों की नासमझ बातों का जवाब देना और बात; फिर उनके पास वह प्रभावशाली व्यक्तित्व भी नहीं था जो इस विध्वंसकारी शक्ति का सामना कर सके। अमरनाथजी को अपने कर्मचारियों पर रह-रह कर क्रोध आ रहा था कि ये कैसे मूर्ख

और फिर चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया।

"करमसिंह तुम दुखी न हो। मेरे काम के लिए तुम्हारी नौकरी गई है, इसलिए मैं तुम्हें दूसरी नौकरी इससे भी अच्छी दिला दूंगी। जो कार्य तुम वहाँ कर रहे थे वही कार्य तुमसे लिया जाएगा।" कमला ने बहुत ही गम्भीरतापूर्वक करमसिंह को आश्वासन देते हुए कहा।

"सच !" कह कर आशा भरे नेत्रों से करमसिंह ने कमला के मुख पर विश्वास के साथ देखा।

"सच ! कल से काम पर आ जाना। प्लाजा सिनेमा के ऊपर जो न्यूज ऐजेन्सी है, उसी में तुम काम करना।" कमला ने कहा।

"जो आज्ञा, परन्तु वेतन क्या होगा ?" करमसिंह ने पूछा।

"वही होगा जो तुम्हें वहाँ मिलता था।" कहकर कमला ने आजाद की ओर यह विचार कर मुँह कर लिया कि अब तो यह चला ही जाएगा।

उसके हृदय में जो जलन थी, जो क्रोध था कमला के प्रति वह सब काफूर हो गया; परन्तु वह जेल वाली जो बेतुकी बात आजाद ने कही थी वह कानों में से न निकल सकी। वह बराबर अभी तक कानों में गूंज रही थी। करमसिंह ने सोचा कि इनका क्या है ? ये तो मस्ताने जीव ठहरे, यहाँ बैठकर रोटियाँ न खाई जेलखाने में बैठकर खालीं, परन्तु मैं यदि जेल चला गया तो मेरे बाला-बच्चों का क्या होगा ? सरदारनीजी का क्या होगा ? इसी उलझन में फँसा हुआ न जाने क्या सोचता करमसिंह वहाँ से चल दिया।

करमसिंह के वहाँ से चले जाने के पश्चात् कमला ने आजाद से कहा, "अब यह स्थान सुरक्षित नहीं रहा आजाद बाबू ! क्योंकि यह मूर्ख व्यक्ति पता नहीं अब जाकर क्या करे ? इसलिए यह स्थान छोड़ कर अब हमें किसी अन्य स्थान पर डेरा लगाना चाहिए और दूसरी बात यह भी हो सकती है कि इसे इस प्रकार निकालकर शायद इसका पीछा करने के लिए पुलिस में सूचना दे दी गई हो।"

"तुम्हारा विचार ठीक है।" आजाद ने अनुमति दे दी और दोनों अपने-अपने थैले लेकर चल पड़े। दोनों ने अपना वेश बदला हुआ था। कमला को कोई कमला और आजाद को कोई आजाद नहीं कह सकता था। कमला ने अपने बाल पीछे से कटवा लिए थे और साड़ी के स्थान पर पैण्ट पहननी प्रारम्भ कर दी थी। देखने में अब वह बिलकुल एक ऐंग्लोइण्डियन लड़की मालूम पड़ती थी। एक छोटा-सा हैट वह लगाती थी। उसे देखकर बहुत से क्रिश्चियन तथा ऐंग्लोइण्डियन यह खोज करने का प्रयत्न करने लगे थे कि वह कहाँ से आती है, परन्तु किसी को कुछ पता नहीं चलता था उसके विषय में।

आजाद ने भी खद्दर के कुर्ते-धोती को तिलांजली दे दी थी और अब वह सूटेड-बूटेड रहते थे। बाजार में चलते समय सिगार मुँह में लगा रहता था और आँखों पर उन्होंने चश्मा लगाना प्रारम्भ कर दिया था, चश्मा लग जाने से शक्ल इतनी बदल जाती थी कि एक दिन तो कमला को भी पहचानने में धोखा हो गया और उस दिन उसने फतवा दे दिया कि दिल्ली का खुफिया पुलिस-विभाग तुम्हें नहीं पकड़ सकता, नहीं पकड़ सकता।

दोनों ने अपनी-अपनी साईकिलें लीं और एक ओर को चल दिए। साईकिलों पर तेजी से आगे पीछे चले जा रहे थे कि अचानक सामने से एक पुलिस का दस्ता आता मिला। पुलिस को देखकर दोनों में एक भी सकपकाया नहीं और सीधे चलते चले गए। इसके पश्चात् पुलिस की चौकी के सामने से दोनों व्यक्ति बड़े ठाठ से निकले।

२७

आज तीसरा दिन था हड़ताल का और प्रेस-कर्मचारी किसी प्रकार कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। इन कर्मचारियों में दो आदमियों को कमला ने तोड़ कर अपने हाथ में ले लिया था। वे कम्यूनिस्ट पार्टी के मैम्बर बन गए थे। इसलिए उन पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ना असम्भव था।

रशीदा ने कई बार कर्मचारियों को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वे दोनों व्यक्ति नेता बनकर सामने आए और कोई समझौते की बातचीत न हो सकी। रशीदा ने हरचन्द चाहा कि कर्मचारियों से मिलकर उनकी कठिनाइयों को दूर करने का आश्वासन दे परन्तु इन दो व्यक्तियों ने रशीदा को उनके निकट तक न पहुँचने दिया। अमरनाथजी यों अपने काम के धनी थे परन्तु वह मजदूरों की हुल्लड़बाजी से बहुत घबराते थे। उनकी किसी भी बात का जवाब देना उनकी सामर्थ्य से बाहर की बात थी। राजनीति के लेख लिखना और बात थी और युद्ध के मैदान में जाकर गोली चलाना और बात, पत्र और कार्यालय-संचालन करना और बात और हड़ताल के सताए हुए व्यक्तियों की नासमझ बातों का जवाब देना और बात; फिर उनके पास वह प्रभावशाली व्यक्तित्व भी नहीं था जो इस विध्वंसकारी शक्ति का सामना कर सके। अमरनाथजी को अपने कर्मचारियों पर रह-रह कर क्रोध आ रहा था कि ये कैसे मूर्ख

हैं जो अपनी कठिनाई को मुझसे आकर नहीं कहते और व्यर्थ के लिए सड़क पर खड़े-खड़े हुल्लड़ मचा रहे हैं।

"भैया आज अवश्य आजाएँगे, जहाँ तक मेरा विचार है।" रशीदा ने कहा।

"आशा तो यही है।" अमरनाथजी सिर हिला कर बोले।

"अभी आपको नई दिल्ली भी जाना है।" रशीदा ने कहा।

"हाँ जाना तो अवश्य है परन्तु मैं सोच रहा था कि तुम्हें भी साथ लेता चलता। ऐसा न हो कि मेरे पश्चात् यहाँ ये लोग नया उपद्रव खड़ा कर दें।" भय-भीत-सी ध्वनि में अमरनाथजी ने कहा।

आप मेरी चिन्ता न करें। आपत्ति में अपना बचाव किस प्रकार किया जाता है यह भैया ने मुझे सिखला दिया है।" एक विश्वास के साथ रशीदा मुस्कुरा कर बोली।

अमरनाथजी की आदत से सब परिचित थे। इसलिए जब वह कार्यालय से निकलते या उसमें घुसते थे तो कोई चूँ नहीं करता था। कम्यूनिस्ट नेता बराबर कर्मचारियों को उनके प्रति अपमान सूचक शब्द प्रयोग करने को उकसाते थे परन्तु किसी में साहस नहीं होता था। अमरनाथजी बहुत भले आदमी हैं यह सब जानते थे। इस लिए उनके साथ किसी भी प्रकार की शरारत वे नहीं करना चाहते थे और न करने का साहस ही उनमें था।

कुछ मसखरे लोग रशीदा पर ताने कसकर आनन्द अवश्य लेना चाहते थे, परन्तु वे यह भी जानते थे कि रशीदा कुछ कच्ची गोलियों की खेली हुई नहीं थी। रशीदा उनकी मूर्खता के उपरान्त भी उन्हें अपना समझती थी और कभी-कभी उसे झुँझलाहट भी आती थी उनकी मूर्खता पर कि वे क्यों अपनी ही हानि कर रहे हैं? इस प्रेस तथा पत्र को आज तक कभी रशीदा ने अपना नहीं समझा, वहाँ जो कुछ भी था उसके कार्यालय के कर्मचारियों का था। पूंजीपति बनने की इच्छा से उसकी स्थापना नहीं की गई। फिर क्यों ये लोग उसे पूंजीपति कहकर चिढ़ाते हैं? यदि वह भी उन लोगों को पूंजी के लोभी कह कर चिढ़ाने लगे तो क्या हो? इस प्रकार की न जाने कितनी बातें उसके मस्तिष्क में आतीं और आ-आ कर चली जाती थीं।

अमरनाथजी नई दिल्ली चले गए क्योंकि वहीं किसी प्रेस में 'इन्सान' पत्र छप रहा था। यह कार्य गुप्त रूप से हो रहा था। आज पत्र-वितरण का दिन था और सब कर्मचारी देख रहे थे कि देखें आज पत्र का क्या बनता है? पत्र ठीक समय पर बँटने के लिए कार्यालय के सामने आ गया। कर्मचारियों ने कुछ हुल्लड़बाजी करने का प्रयत्न किया तो अखबार के हॉकरों ने उन्हें लगते हाथों लिया, "तुम लोग स्वयं बेरोजगार हुए बैठे हो और हम लोगों को भी बेरोजगार बनाना चाहते हो। आप लोग

अपना कार्य करें, हमारे बीच में न आएँ।" दृढ़तापूर्वक हॉकरों ने कहा।

कर्मचारी लोग कई दिन के बिगड़े बैठे थे; फिर यह बात वे किस प्रकार सहन कर सकते थे? क्रोध से उनके तन-बदन में आग लग गई और वे पागल की तरह अखबार वाली गाड़ी पर टूट पड़े। गाड़ी को ताला लगा था इसलिए विशेष हानि न पहुँचा सके। परन्तु पत्र बाँटना कठिन हो गया। ऐसी परिस्थिति में रशीदा बेधड़क बाहर निकल आई और उसने मर्दाना आवाज में कहा, "आप लोग क्या चाहते हैं?"

"हम लोग चाहते हैं कि इस अखबार में यहीं पर रखकर आग लगा दी जाए।" कर्मचारियों के उन दो कम्यूनिस्ट नेताओं ने कहा।

"क्यों?" उसी प्रकार कड़क कर रशीदा ने पूछा।

"क्योंकि मजदूरों की माँग पूरी किए बिना यह पत्र वितरित नहीं हो सकता।" उसी प्रकार उबल कर उन दो व्यक्तियों ने उत्तर दिया।

"आप लोग प्रेस के कर्मचारी हैं। प्रेस हमने उस समय तक के लिए बन्द कर दिया है जब तक आप लोगों की माँगों का निर्णय न हो जाए। पत्र का आप लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप लोग अलग हट जाएँ और पत्र को सुचारू रूप से बँट जाने दें।" रशीदा ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"नहीं, नहीं, यह कभी नहीं होगा, यह एक से लाख तक नहीं होगा। यह पत्र हमारी लाशों के ऊपर बँट सकता है, उसके अतिरिक्त नहीं। हम अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए अपने प्राण गँवा देंगे।" उन नेताओं ने कड़क कर कहा।

"आप लोग भ्रम में हैं। मैं कहती हूँ कि आप लोग धोखा खा रहे हैं और स्वार्थ के लिए अपनी और अपने कार्यालय की हानि कर रहे हैं। आपको चाहिए कि समझ-बूझ से काम लें। पत्र को वितरित हो जाने दें और जो कुछ भी विचारणीय प्रश्न हैं उन्हें गम्भीरतापूर्वक बैठकर सोचें। मेरे विचार से आप लोग पाँच आदमी अपने में से चुन लें, जो मिल-बैठकर किसी निश्चय पर पहुँच सकें।" रशीदा ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"हम इनके नेता हैं, चुने हुए हैं, आप हमसे कहिए क्या कहना है आपको? बिना अन्तिम निर्णय हुए पत्र नहीं बँट सकता।" कम्यूनिस्ट नेताओं ने कहा।

"नहीं बँट सकता, नहीं बँट सकता" कर्मचारियों में से भी आवाजें आईं।

परिस्थिति गम्भीर हो चली। कर्मचारियों ने मोटर को घेर लिया और पत्र का बँटना असम्भव हो गया। कुछ हॉकर भी जिद के कारण जबरदस्ती अखबार लेने पर तुल गए और एक अजीब संग्राम का रूप उपस्थित हो गया। रशीदा परेशान थी कि क्या करे? अमरनाथजी अभी तक नहीं आए थे। उनकी अनुपस्थिति में उसको क्या कदम उठाना चाहिए? शान्ति भंग होने की उसे पूर्ण आशा हो गई, इसलिए वह

सीधी दौड़ कर अन्दर गई और पास के थाने को उसने फोन कर दिया 'इन्सान-कार्यालय' में, जहाँ कई दिन से हड़ताल चल रही है, उपद्रव होने का भय है। कर्मचारी हॉकरों को पत्र तकसीम करने में बाधा उपस्थित कर रहे हैं। आप शीघ्र आकर परि-स्थिति को सँभालें। हो सकता है कि कर्मचारियों तथा हॉकरों के बीच उपद्रव हो जाए।"

रशीदा ने फोन हाथ से रखकर ज्यों ही बाहर देखा तो वहाँ पर सन्नाटा था। बिलकुल शान्त वातावरण। किसी प्रकार का शब्द नहीं था। कारण समझ में नहीं आया। बाहर की ओर लपकी तो धोती कुर्ता और चप्पल पहने रमेश बाबू हॉकरों तथा कर्मचारियों के बीच खड़े दिखलाई दिए। रशीदा की जान-में-जान आ गई और उसने समझ लिया कि अब कार्य अवश्य ठीक हो जाएगा, कोई उपद्रव नहीं होगा।

"आप लोगों ने आज तक 'इन्सान-कार्यालय' में काम किया है। कुछ आप लोगों में ऐसे हैं जिन्हें मैंने उस दिन जुटाया था जिस दिन इस कार्यालय का केवल नाम और अभिलाषा ही वर्तमान थी। यह आप लोगों का घर है, होटल नहीं। होटल को छोड़ा जा सकता है, घर नहीं छोड़ा जा सकता। याद रखो कि घर के रहने वालों के चले जाने पर घर वीरान हो जाता है, परन्तु बेघर लोगों की भी दुनिया में कहीं कद्र नहीं होती, उन्हें भी आवारों के नाम से पुकारा जाता है। वे किसी के सम्मान के पात्र नहीं बन सकते।

आप लोगों में से वे लोग सामने आएँ जो अपना घर उजाड़ने के लिए तैयार बैठे हैं। मैं इस पत्र को उन्हीं के सामने डालता हूँ। वे इसमें आग लगा दें, इस प्रेस में आग लगा दें, इस बिल्डिंग में आग लगा दें।" यह कहते हुए रमेश बाबू ने लारी वाले को कहा कि मोटर का फाटक खोलकर अखबार की गड्डियाँ जमीन पर कर्मचारियों के सामने पटक दें। एक-एक करके सब गड्डियाँ कर्म-चारियों के सामने पटक दी गईं। इसके पश्चात् रमेश बाबू उन नेताओं की तरफ मुड़े और बोले, "क्यों खड़े हैं अब आप? अन्दर से जाकर दियासलाई ले आओ और लगाओ आग इन अखबारों की गड्डियों में।"

सब शान्त थे। किसी के होठों पर एक शब्द भी न आया। फिर भी कम्यू-निस्ट नेता किसी प्रकार साहस बटोरकर लड़खड़ाती जबान से बोले, "पहले हमारी माँगें पूरी होनी चाहिएँ, तब अखबार बँटेगा।"

"और यदि न हुईं।" कड़क कर रमेश बाबू ने कहा, "तो तुम इस कार्यालय में आग लगा दोगे, यही बात है ना।" रमेश बाबू मुस्कुरा दिए और फिर गम्भीर स्वर में एक-एक का नाम लेकर बोले, "क्यों भाई उस्ताद करीमखाँ, तुम्हारी क्या माँग है?" मैशीन मैन से पूछा।

"बाबू जी हमें तो मालूम नहीं। जैसा सब ने कहा वैसा हम कर बैठे।" सचाई के साथ सीधेपन से उस्ताद ने कहा।

"और भाई रामधन, मनोहरा, शान्तिस्वरूप, अमीचन्द, मीरचन्द, तुम लोगों की क्या माँगें हैं?" रमेश बाबू ने फिर उसी गम्भीरतापूर्वक कहा।

"बाबू जी हमसे तो रामू और माँगे ने कहा था कि अगर तुम लोग भी हड़ताल करोगे तो तरक्की हो जाएगी।" सब एक स्वर में बोले।

भेद पता चल गया कि सब बीमारी की जड़ रामू और माँगे ही हैं। अब रमेश बाबू ने रामू और माँगे को ही लिया। "क्यों भाई रामू और माँगे आप लोगों की क्या माँगे हैं?"

"हमें तरक्की चाहिए।" दोनों बोले।

"आपने कभी पहले तरक्की के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा?" रमेश बाबू ने पूछा।

"नहीं।" दोनों ने उत्तर दिया।

रमेश बाबू ने सब कर्मचारियों की तरफ मुँह करके कहा, "देखिए, आप लोग सब देखिए, कि इन दोनों व्यक्तियों ने पहले कभी तरक्की के लिए प्रार्थना-पत्र नहीं भेजा और एकदम हड़ताल करने के लिए तुल गए। खैर मैं आज से अपने सब कर्मचारियों के मासिक वेतन में दस-दस रुपए की वृद्धि करता हूँ और इन दोनों व्यक्तियों को यह आज्ञा दी जाती है कि ये इसी समय कार्यालय से अपना चुकता हिसाब लेकर बाहर निकल जाएँ। मैं अपने कार्यालय में ऐसे व्यक्ति नहीं चाहता जो कार्यालय को अपना न समझें और फिर उस्ताद को आगे बुलाकर कहा, "उस्ताद हॉकरो को अखबार तकसीम करो।"

कुछ देर तक कुछ लोगों में कानाफूँसी हुई और फिर सब एकदम प्रसन्न से दिखलाई देने लगे। उस्ताद ने आगे बढ़कर अखबार बाँटना प्रारम्भ कर दिया। अन्य सभी कर्मचारी अपने-अपने काम पर जा लगे।

कुछ ही क्षण में हॉकर 'इन्सान-आ गया' की आवाज लगाते हुए बाजारों में दिखलाई देने लगे और कार्यालय की मशीनें खटाखट चल पड़ी। रामू और माँगे को हिसाब मिल गया और उन्हें यह देख कर बड़ा खेद हुआ कि उनके साथियों ने, जिनको उनके बलिदान स्वरूप दस-दस रुपए तरक्की मिली, उनका कुछ भी साथ नहीं दिया। वे सब जाकर अपने काम पर जुट गए।

थोड़ी देर पश्चात् जब पुलिस आई तो हॉकर लोग जा रहे थे। कार्यालय का कार्य सुचारु रूप से चलना प्रारम्भ हो गया था। पुलिस को कार्यालय की सीढ़ियों पर से रामू और माँगे उतरते हुए मिले। उन्हीं से इन्सपेक्टर साहब से पूछा, "क्या यहाँ कोई उपद्रव का भय है?"

"जी हाँ था, परन्तु अब तो वह समाप्त हो गया।" दोनों ने लम्बी आह भर कर कहा और फिर सिर झुकाए हुए यह सोच कर कि कमला ने उन्हें मरवा दिया, अपनी राह पर चल दिए। पुलिस इन्सपेक्टर अन्दर जाकर रमेश बाबू से मिला और यह जान कर बहुत प्रसन्न हुआ कि उन्होंने स्वयं ही व्यवस्था सँभाल ली।

२८

शान्ता एकान्त में बैठी सोच रही थी कि कैसी स्थिति आ गई? आजाद भैया यहाँ आए भी और आकर ऐसे चक्कर में फँस गए कि मानो वह शान्ता को जानते ही नहीं थे। एक दिन के बाद फिर यहाँ आना भी उन्होंने उचित नहीं समझा। यह समय का ही तो फेर है।

फिर ध्यान कमला की ओर गया और उसके विचारों की दशा तथा कर्मठता पर सोचा तो देखा कि वह एक पत्थर की भाँति अडिग चट्टान है, जो कोई भी आकर उससे अटक गया, बस उसका हो गया। आजाद पर उसका वह जादू हुआ है कि वह मदारी के बन्दर की तरह उसके संकेत पर नाचता है। मन में भय हुआ कि कहीं कमला कभी अपने किसी कार्य की सिद्धि के लिए आजाद को खतरे में न डाल दे। कमला के सामने प्रेम कोई वस्तु नहीं, मोह का कोई अस्तित्व नहीं। वह जो कुछ सोचती है उसे करने में और तो क्या यदि अपने प्राणों तक की बाजी लगाने का भी समय आए तो पीछे हटने वाली नहीं। कमला व्यर्थ की बातें नहीं जानती। एक मनुष्य के जीवन का उसके सामने कोई मूल्य नहीं, क्योंकि वह सोचती है समस्त संसार की बातें। कभी-कभी शान्ता को कमला के इस छोटे से कलेवर में छुपी हुई समस्त संसार कम्यूनिस्ट सत्ता स्थापित करने की भावना को स्मरण करके हँसी भी आ जाती थी, परन्तु जब वह कमला के दृढ़ संकल्प पर दृष्टि डालती थी तो उसका वह छोटा-सा स्वरूप न जाने कितने रूपों में आकर उसके सामने उपस्थित हो जाता था। कमला को समझना शान्ता के लिए कठिन नहीं था क्योंकि उसके जीवन में कई प्रकार की प्रगतियों का सम्मिश्रण नहीं था। वह बिलकुल स्पष्ट, सीधी और तीखी थी। कमला चाहती थी अपने विपक्ष को चीर कर सामने बढ़ना और इस लिए उसने अपना प्रोग्राम बनाया था कि वह पहले अपने विरुद्ध आवाज उठाने वाले पत्रों और पत्रकारों का मुँह बन्द करदे।

इन्सान कार्यालय की हड़ताल के टूट जाने से शान्ता को हार्दिक प्रसन्नता हुई, परन्तु इसका जो प्रभाव कमला तथा आजाद पर पड़ा उसे देखकर उसके भय का अन्त न रहा। उसने देखा कि अब उन दोनों में मानवी प्रवृत्तियों के स्थान पर दानवी प्रवृत्तियों ने जन्म लेना प्रारम्भ कर दिया था।

रमेश बाबू की योग्यता, यश और गाम्भीर्य के विषय में शान्ता ने रशीदा से जो कुछ सुना था उसकी पुष्टि इससे हो गई कि उन्होंने आते ही एक क्षण में हड़ताल को समाप्त कर दिया और कार्यालय का कार्य फिर सुचारू रूप से प्रारम्भ हो गया। रमेश बाबू को देखने की प्रबल आकांक्षा शान्ता के हृदय में पैदा हो रही थी, परन्तु वह वहाँ जाए किस बहाने से, यह वह नहीं सोच पा रही थी। कितना समय हो चुका था उसे रमेश बाबू से पृथक् हुए? कौन जाने आजाद की ही भाँति रमेश बाबू भी शान्ता को वह पिछले दिनों का सम्मान अर्पित न कर सकें—फिर ऐसी दशा में उसका क्या होगा? उसका शेष जीवन नर्क बन जाएगा। वह काँप उठी।

यह विचार कर शान्ता को अपने मन की भावुकता पर लज्जा आई कि वह कितनी मूर्ख है जो उसने केवल रमेश बाबू उनका नाम होने से ही यह धारणा निश्चित कर ली कि यह वही उसके अपने रमेश बाबू हैं, कोई अन्य नहीं। फिर भी कुछ रहस्य अवश्य है इसमें, शान्ता का मन अनायास ही उस ओर को खिंच रहा था।

संध्या समय शान्ता बैठी छोटी शान्ता की राह देख रही थी कि इतने में सामने से उसे रशीदा और अमरनाथजी आते दिखलाई दिए। दोनों का हाथ एक दूसरे के हाथ में था और धीरे-धीरे मुस्करा कर आपस में बातें करते हुए इधर को चले आ रहे थे। उनकी गति में आज एक प्रकार की प्रसन्नता थी। शान्ता का हृदय भी उनके स्वागत के लिए उत्सुक हो उठा था। वह उत्सुक हो उठी रमेश बाबू के विषय में बातें करने के लिए।

रशीदा का भोलापन भी शान्ता के हृदय में घर कर गया था और वह उसे एक होनहार लड़की के रूप में प्यार करने लगी थी। रशीदा का सौन्दर्य भी कम नहीं था परन्तु शान्ता की बात ही निराली थी। एक गुलाब के फूल के चारों ओर जिस प्रकार चमेली के फूल दिखलाई देते हैं वही दशा शान्ता के निकट रशीदा और कमला की होती थी। परन्तु चमेली के फूलों में भी अपने गुण होते हैं और कुछ ऐसे भी गुण हैं जो गुलाब में नहीं होते। शान्ता उन्हें प्यार करती थी परन्तु दुर्भाग्यवश वह अपना एक लम्बा चौड़ा परिवार बनाकर पारिवारिक सुख का आनन्द-लाभ करना चाहती थी। यही उसे प्राप्त नहीं हो पा रहा था और इसके लिए जो विशेष दुःख की बात थी वह यह थी कि उसके परिवार में इन राजनैतिक वादों ने एक ऐसी उथल-पुथल मचा रखी थी कि उसके मस्तिष्क की समस्त शान्ति खतरे में पड़ गई थी। कभी-कभी शान्ता का

हृदय काँप उठता था इन वादों के वाद-विवाद में पड़कर और वह कह उठती थी कि ये सब व्यर्थ की बकवासें हैं—परन्तु बकवास कैसी ? यही तो आजकल संसार की प्रगति के मूल में थे। यदि वाद-विवाद न हो तो जीवन जीवन न रहे। यदि संघर्ष न हो तो लोग-शान्ति के महत्व को भूल जाएँ; यदि निर्दयता कहीं पर दिखलाई न दे तो दया को कोई जीवन में याद भी न रखे। मन फिर कह उठता, 'चलने दो; सब ठीक है जो हो रहा है। यदि कोई मूर्खता से अधिक आगे बढ़ जाएगा तो टक्कर खाकर उसे फिर लौटना होगा। समय की गति को मैं नहीं रोक सकती। उसकी शक्ति ससीम थी असीम नहीं। वह तो अपने को भी पाने में समर्थ न हो सकी।''

जब अमरनाथजी और रशीदा ने दरवाजे के सामने वाले वराँडे की छोटी-सी तीन पग वाली सीढ़ी पर पग रखे तो शान्ता खड़ी हो गई और सस्मित स्वर में बोली "आज कैसे इस जोड़ी ने भूल कर इस गरीब की कुटिया का मार्ग पकड़ा ?''

"आप जीजी ! इस प्रकार की बातें न किया करें। मुझे शर्म आने लगती है और आपके भैया तो बेजबान हो जाते हैं। अब मैं सच कहती हूँ कि आपके इतना कहने का इन पर यह प्रभाव पड़ा होगा कि यह जो कुछ भी वहाँ से सोच कर आए होंगे। उसे भूल ही गए होंगे। वे बातें मुझे याद दिलानी होंगी और जो बातें मेरे दिमाग से निकल गई होंगी वे रह ही जाएँगी।'' रशीदा मुस्कुरा कर बोली।

"तब तो बहुत बड़ा अपराध किया है मैंने।'' शान्ता ने कहा।

"अपराध किया नहीं जीजी ! करने जा रही हो। मैं कहती हूँ कि यह जो आप इस प्रकार की बातें कह रही हैं बस यही अपराध है।'' कहकर दोनों मीठी हँसी हँस दिए और शान्ता के घर में एक उल्लास का वातावरण छा गया। दो कमरे पार करके आँगन में शान्ता बहन की एक छोटी-सी मेज पड़ी थी। उस पर फूल कड़ा एक सुन्दर-सा मेजपोश बिछा था। चारों ओर बेंत की चार कुर्सियाँ पड़ी थीं। तीन कुर्सियों पर तीनों व्यक्ति बैठ गए। दिन गर्मी का था इसलिए शान्ता बहन ने पहाड़ी नौकर को तीन गिलास शर्बत लाने के लिए कहा।

मेज पर एक पत्र पड़ा था। अमरनाथजी ने उसे उठा कर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और ये दोनों आपस में इधर-उधर की गप्पें छाँटने लगीं। आगे पीछे से जीवन की कथाएँ प्रारम्भ होने लगीं। शान्ता बड़ी चतुर थी इस मामले में। वह रशीदा से सब कुछ पूछ लेना चाहती थी, बिला अपना कुछ बतलाए और वह अपने इस कार्य में सफल भी हो गई। रशीदा ने उन्हें वह सब कहानी कह सुनाई कि किस प्रकार उसे उसके भैया रमेश बाबू ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर बचाया था। उसने यह भी बतला दिया कि रमेश भैया जिस दिन लाहौर से रवाना हुए थे तो उन्होंने कैसे वेश बदला था और फ़िर किस प्रकार उन्होंने भारतीय सीमा में आकर रशीदा के अब्बा

की जान बचाई थी।

"अब्बा की जान बचाई!" शान्ता ने आश्चर्य से कहा।

"हाँ तभी तो मुझसे उनका परिचय हुआ और मैंने उन्हें कर्तव्य-पथ पर देवताओं से अधिक दृढ़ पाया।" कहकर रशीदा का सीना गर्व से ऊपर को उठ गया। वह गर्व से अनुभव कर रही थी कि वह एक इतने बड़े व्यक्ति की बहन कहला सकी।

आज शान्ता के मन में और भी दृढ़ विश्वास हो गया कि यह रशीदा के रमेश भैया अवश्य वही रमेश बाबू हैं, जो उसके जीवन का सर्वस्व है। लाहौर से आने वाला व्यक्ति जो उस समय भी इतना दृढ़ था अपने विचारों में कि एक मुसलमान को बचाकर लाए और कोई अन्य रमेश बाबू नहीं हो सकता। अब शान्ता ने रमेश बाबू के विषय में अन्य बातें करनी आरम्भ कीं और रशीदा भी अपने भैया की कहानी शान्ता से दिल खोल कर सुनाने लगी।

"रशीदा बहन! यदि तुम बुरा न मानो तो तुम्हारे भैया के विषय में एक गुप्त बात पूछूँ।" शान्ता ने पूछा।

"इसमें बुरा मानने की क्या बात है जीजी? इस प्रकार की बातें कोई अपना ही व्यक्ति पूछ सकता है।" अपनत्व दिखलाते हुए रशीदा बोली।

"अच्छा तो बतलाओ क्या तुम्हारे भैया ने कभी किसी को प्यार किया है?" अचानक एक ऐसा प्रश्न शान्ता बहन ने कर दिया कि रशीदा को एक दम गम्भीर हो जाना पड़ा और उसने एक लम्बा साँस खींच कर कहा, "इस विषय में कुछ न पूछो बहन! मेरे भैया के जीवन का यह पहलू बहुत ही अभाव पूर्ण है और उनका यही अभाव ऐसा अभाव है कि वह जीवन में अपनी उच्चतम सीढ़ी पर नहीं पहुँच सकेंगे। उन्हें एक सहारे की आवश्यकता है और वह उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ। वह कहा करते हैं कि लाहौर में उन्होंने अपनी एक जीवन-साथिन चुनी थी, परन्तु समय ने उनसे उसे छीन लिया। लाहौर में एक दिन रात्रि को अचानक कुहराम मचना प्रारम्भ हो गया। वह अपने घर से उतरे और किसी प्रकार उस मार-काट में से होते हुए अपनी उस साथिन के घर पहुँचे। वहाँ उसके पिता, उसकी माता, और उसके नौकर तीनों मरे पड़े थे और उसका कहीं पता नहीं था। सोचा कि शायद उनकी साथिन को वहाँ के गुण्डे उठाकर ले गए होंगे और मार ड़ाला होगा, परन्तु उनका मन कहता है कि वह उनकी साथिन कहीं पर जीवित है। अपनी उस साथिन के विषय में कुछ जानने के लिए एक बार अपने एक पाकिस्तानी मित्र के नाम उन्होंने पत्र भी लिखा था, परन्तु कोई उत्तर नहीं आया।

अपनी उसी प्रेमिका से मिलने की आशा में भैया अभी तक जीवित हैं।

हृदय काँप उठता था इन वादों के वाद-विवाद में पड़कर और वह कह उठती थी कि ये सब व्यर्थ की बकवासें हैं—परन्तु बकवास कैसी ? यही तो आजकल संसार की प्रगति के मूल में थे। यदि वाद-विवाद न हो तो जीवन जीवन न रहे। यदि संघर्ष न हो तो लोग-शान्ति के महत्व को भूल जाएँ; यदि निर्दयता कहीं पर दिखलाई न दे तो दया को कोई जीवन में याद भी न रखे। मन फिर कह उठता, 'चलने दो; सब ठीक है जो हो रहा है। यदि कोई मूर्खता से अधिक आगे बढ़ जाएगा तो टक्कर खाकर उसे फिर लौटना होगा। समय की गति को मैं नहीं रोक सकती। उसकी शक्ति ससीम थी असीम नहीं। वह तो अपने को भी पाने में समर्थ न हो सकी।"

जब अमरनाथजी और रशीदा ने दरवाजे के सामने वाले बराँडे की छोटी-सी तीन पग वाली सीढ़ी पर पग रखे तो शान्ता खड़ी हो गई और सस्मित स्वर में बोली "आज कैसे इस जोड़ी ने भूल कर इस गरीब की कुटिया का मार्ग पकड़ा ?"

"आप जीजी ! इस प्रकार की बातें न किया करें। मुझे शर्म आने लगती है और आपके भैया तो बेजबान हो जाते हैं। अब मैं सच कहती हूँ कि आपके इतना कहने का इन पर यह प्रभाव पड़ा होगा कि यह जो कुछ भी वहाँ से सोच कर आए होंगे। उसे भूल ही गए होंगे। वे बातें मुझे याद दिलानी होंगी और जो बातें मेरे दिमाग से निकल गई होंगी वे रह ही जाएँगी।" रशीदा मुस्कुरा कर बोली।

"तब तो बहुत बड़ा अपराध किया है मैंने।" शान्ता ने कहा।

"अपराध किया नहीं जीजी ! करने जा रही हो। मैं कहती हूँ कि यह जो आप इस प्रकार की बातें कह रही हैं बस यही अपराध है।" कहकर दोनों मीठी हँसी हँस दिए और शान्ता के घर में एक उल्लास का वातावरण छा गया। दो कमरे पार करके आँगन में शान्ता बहन की एक छोटी-सी मेज पड़ी थी। उस पर फूल कड़ा एक सुन्दर-सा मेजपोश बिछा था। चारों ओर बेंत की चार कुर्सियाँ पड़ी थीं। तीन कुर्सियों पर तीनों व्यक्ति बैठ गए। दिन गर्मी का था इसलिए शान्ता बहन ने पहाड़ी नौकर को तीन गिलास शर्बत लाने के लिए कहा।

मेज पर एक पत्र पड़ा था। अमरनाथजी ने उसे उठा कर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और ये दोनों आपस में इधर-उधर की गप्पें छाँटने लगीं। आगे पीछे से जीवन की कथाएँ प्रारम्भ होने लगीं। शान्ता बड़ी चतुर थी इस मामले में। वह रशीदा से सब कुछ पूछ लेना चाहती थी, बिला अपना कुछ बतलाए और वह अपने इस कार्य में सफल भी हो गई। रशीदा ने उन्हें वह सब कहानी कह सुनाई कि किस प्रकार उसे उसके भैया रमेश बाबू ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर बचाया था। उसने यह भी बतला दिया कि रमेश भैया जिस दिन लाहौर से रवाना हुए थे तो उन्होंने कैसे वेश बदला था और फ़िर किस प्रकार उन्होंने भारतीय सीमा में आकर रशीदा के अब्बा

की जान बचाई थी।

"अब्बा की जान बचाई !" शान्ता ने आश्चर्य से कहा।

"हाँ तभी तो मुझसे उनका परिचय हुआ और मैंने उन्हें कर्तव्य-पथ पर देवताओं से अधिक दृढ़ पाया।" कहकर रशीदा का सीना गर्व से ऊपर को उठ गया। वह गर्व से अनुभव कर रही थी कि वह एक इतने बड़े व्यक्ति की बहन कहला सकी।

आज शान्ता के मन में और भी दृढ़ विश्वास हो गया कि यह रशीदा के रमेश भैया अवश्य वही रमेश बाबू हैं, जो उसके जीवन का सर्वस्व है। लाहौर से आने वाला व्यक्ति जो उस समय भी इतना दृढ़ था अपने विचारों में कि एक मुसलमान को बचाकर लाए और कोई अन्य रमेश बाबू नहीं हो सकता। अब शान्ता ने रमेश बाबू के विषय में अन्य बातें करनी आरम्भ कीं और रशीदा भी अपने भैया की कहानी शान्ता से दिल खोल कर सुनाने लगी।

"रशीदा बहन ! यदि तुम बुरा न मानो तो तुम्हारे भैया के विषय में एक गुप्त बात पूछूँ।" शान्ता ने पूछा।

"इसमें बुरा मानने की क्या बात है जीजी ? इस प्रकार की बातें कोई अपना ही व्यक्ति पूछ सकता है।" अपनत्व दिखलाते हुए रशीदा बोली।

"अच्छा तो बतलाओ क्या तुम्हारे भैया ने कभी किसी को प्यार किया है ?" अचानक एक ऐसा प्रश्न शान्ता बहन ने कर दिया कि रशीदा को एक दम गम्भीर हो जाना पड़ा और उसने एक लम्बा साँस खींच कर कहा, "इस विषय में कुछ न पूछो बहन ! मेरे भैया के जीवन का यह पहलू बहुत ही अभाव पूर्ण है और उनका यही अभाव ऐसा अभाव है कि वह जीवन में अपनी उच्चत्तम सीढ़ी पर नहीं पहुँच सकेंगे। उन्हें एक सहारे की आवश्यकता है और वह उन्हें उपलब्ध नहीं हुआ। वह कहा करते हैं कि लाहौर में उन्होंने अपनी एक जीवन-साथिन चुनी थी, परन्तु समय ने उनसे उसे छीन लिया। लाहौर में एक दिन रात्रि को अचानक कुहराम मचना प्रारम्भ हो गया। वह अपने घर से उतरे और किसी प्रकार उस मार-काट में से होते हुए अपनी उस साथिन के घर पहुँचे। वहाँ उसके पिता, उसकी माता, और उसके नौकर तीनों मरे पड़े थे और उसका कहीं पता नहीं था। सोचा कि शायद उनकी साथिन को वहाँ के गुण्डे उठाकर ले गए होंगे और मार डाला होगा, परन्तु उनका मन कहता है कि वह उनकी साथिन कहीं पर जीवित है। अपनी उस साथिन के विषय में कुछ जानने के लिए एक बार अपने एक पाकिस्तानी मित्र के नाम उन्होंने पत्र भी लिखा था, परन्तु कोई उत्तर नहीं आया।

अपनी उसी प्रेमिका से मिलने की आशा में भैया अभी तक जीवित हैं।

आप यह जान लीजिए शान्ता बहन कि उनका आधा समय अपनी उसी साथिन के विषय में विचारने में जाता है और आधा समय उनके अन्य कामों में लगता है ।" रशीदा धीरे-धीरे यह सब कह गई । उसकी आँखों में आँसू आ गए थे यह कहानी कहते-कहते ।

"क्या तुम बतला सकोगी रशीदा कि उनकी वह साथिन कौन थी ।" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक पूछा ।

"यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकती, क्योंकि यह पूछने का साहस आज तक मेरा नहीं हो सका, परन्तु हाँ अनुमान इतना अवश्य कर सकती हूँ कि वह कोई बहुत सुन्दर, बहुत गुणवती देवि रही होगी । आप जैसी ही होगी वह भी कोई !" इतना कह कर रशीदा मुस्कुरा दी मानो वह शान्ता को अपने भैया रमेश बाबू के लिए पसन्द कर रही थी ।

"तो तुम मुझे सुन्दर समझती हो रशीदा !" मुस्कुराकर शान्ता ने आज अपने जीवन में दस वर्ष बाद यौवन का अनुभव करते हुए कहा और शान्ता की आँखों के डोरों में एक सरल मस्ती का साम्राज्य छा गया ।

"इसमें भी क्या कोई संदेह की बात है बहन !" गर्व के साथ रशीदा ने उत्तर दिया और वह अपने शब्दों पर दृढ़ थी ।

बातों की दिशा फिर बदल गई । अमरनाथजी जो पत्र पढ़ रहे थे, उसके सम्बन्ध में उन्होंने रशीदा से कई प्रश्न कर डाले और फिर शान्ता को उन्होंने एक दिन सिनेमा चलने के लिए निमन्त्रण दे डाला । यह शान्ता को अधिक पसन्द नहीं आया । परन्तु यह भी नहीं विचार सकी कि उन्हें मना भी किस प्रकार करे । अन्त में बोली, "रशीदा मेरी तबियत आजकल खराब रहती है । इसलिए मुझे डॉक्टर ने बाहर जाने को मना किया हुआ है । तुम लोग दोनों सिनेमा हो आओ ।" इस प्रकार अपना पीछा छुड़ाया ।

इतने में शर्बत आ गया और पहाड़ी नौकर ने करीने से सजा कर मेज पर लगा दिया । तीनों ने धीरे-धीरे चुसकियाँ भरनी प्रारम्भ कर दीं ।

शान्ता को अब पूर्ण निश्चय हो चुका था कि यह रमेश बाबू हो-न-हो वही शान्ता के अपने रमेश बाबू हैं जिनका ध्यान वह स्वप्न में भी नहीं भूलती । शर्बत पीती-पीती शान्ता यकायक फिर रशीदा से पूछ बैठी, "रशीदा, तुम्हें एक बात और बतलानी होगी अपने रमेश भैया के विषय में ।"

"क्या ?" आश्चर्य से मुस्कुरा कर रशीदा ने पूछा और फिर मद भरी दृष्टि से शान्ता के मुख पर देखने लगी ।

"तुम्हारे रमेश भैया के गाल पर एक काला तिल है, काफी मोटा, बाईं तरफ, बोलो है ना ।" शान्ता ने कहा और अमरनाथजी तथा रशीदा दोनों आश्चर्य के साथ

शान्ता का मुँह ताकते रह गए। एक शब्द भी उनके मुँह से न निकला। दोनों आश्चर्य चकित थे।

"आप लोग इतने विस्मय-ग्रस्त कैसे हो गए ? मैं आजकल ज्योतिष का अध्ययन कर रही हूँ। मेरा कथन ठीक निकला ना !" निश्चय करने के लिए शान्ता ने गम्भीर मुद्रा करके पूछा।

"हाँ।" रशीदा ने कह तो दिया परन्तु उसे शान्ता की ज्योतिष वाली बात पर विश्वास न हुआ और कुछ ऐसा शक हुआ कि वह मुख से एक शब्द भी न बोल सकी। अमरनाथजी उसी प्रकार अपना सिर झुकाए हुए बैठे रहे, परन्तु कुछ-कुछ विचित्र-सा उन्हें भी लगा।

शान्ता ने बातों की दिशा यहाँ से एक दम ऐसी बदली कि सब मामला ह बदल गया। एक दम नई चहल-पहल दिखलाई देने लगी। कमला का विषय छिड़ गया और रशीदा भी शान्ता बहन के साथ मिल कर अमरनाथजी से चुटकियाँ लेने लगी।

"कमला पर यह आज भी प्राण देते हैं शान्ता बहन ! शायद आप नहीं जानतीं।" एक तिरछी दृष्टि अमरनाथजी के मुख पर फेंक कर रशीदा बोली।

"जिसे एक बार जीवन में प्यार की दृष्टि से देखा हो रशीदा बहन ! उसे बिलकुल भुलाना असम्भव है। कमला को एक दिन अमरनाथ भैया के हृदय का सम्पूर्ण प्यार प्राप्त था।" गम्भीरतापूर्वक नयनों में उपहास की रेखा लेकर शान्ता ने कहा।

"तो शान्ता बहन तुम भी अब मेरे साथ......,"

"इसमें साथ की क्या बात है ?" बीच ही में अमरनाथजी की बात काट कर रशीदा ने कहा। "सच्ची बात तो कहनी ही पड़ती है। फिर आप भी तो मना नहीं कर सकते इस बात को।" रशीदा बोली।

"मेरी बात कुछ न पूछो रशीदा ! मेरे हृदय में आज भी कमला के लिए स्थान है। जो स्थान वह बना चुकी है वह ज्यों-का-त्यों रहेगा, उसे हिलाया नहीं जा सकता। मेरे और कमला के विचारों में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया, यही कारण है कि हम दोनों का इस जीवन में मेल होना कठिन है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मैं उसका सम्मान न करूँ या वह मेरा सम्मान न करती हो। जहाँ तक व्यक्तिगत सम्मान का सम्बन्ध है वह सर्वदा ज्यों-का-त्यों बना रहेगा, परन्तु व्यक्तिगत सम्बन्ध के लिए सिद्धान्तों का खून नहीं किया जा सकता। जीवन से सिद्धान्त का मूल्य कहीं अधिक है। सिद्धान्त एक बार बनता है और एक बार मिट कर फिर बन नहीं सकता परन्तु जीवन उस सिद्धान्त की दीवार को खड़ी करने के लिए एक ईंट के

आप यह जान लीजिए शान्ता बहन कि उनका आधा समय अपनी उसी साथिन के विषय में विचारने में जाता है और आधा समय उनके अन्य कामों में लगता है ।" रशीदा धीरे-धीरे यह सब कह गई। उसकी आँखों में आँसू आ गए थे यह कहानी कहते-कहते ।

"क्या तुम बतला सकोगी रशीदा कि उनकी वह साथिन कौन थी ।" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक पूछा ।

"यह मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकती, क्योंकि यह पूछने का साहस आज तक मेरा नहीं हो सका, परन्तु हाँ अनुमान इतना अवश्य कर सकती हूँ कि वह कोई बहुत सुन्दर, बहुत गुणवती देवि रही होगी । आप जैसी ही होगी वह भी कोई !" इतना कह कर रशीदा मुस्कुरा दी मानो वह शान्ता को अपने भैया रमेश बाबू के लिए पसन्द कर रही थी ।

"तो तुम मुझे सुन्दर समझती हो रशीदा !" मुस्कुराकर शान्ता ने आज अपने जीवन में दस वर्ष बाद यौवन का अनुभव करते हुए कहा और शान्ता की आँखों के डोरों में एक सरल मस्ती का साम्राज्य छा गया ।

"इसमें भी क्या कोई संदेह की बात है बहन !" गर्व के साथ रशीदा ने उत्तर दिया और वह अपने शब्दों पर दृढ़ थी ।

बातों की दिशा फिर बदल गई । अमरनाथजी जो पत्र पढ़ रहे थे, उसके सम्बन्ध में उन्होंने रशीदा से कई प्रश्न कर डाले और फिर शान्ता को उन्होंने एक दिन सिनेमा चलने के लिए निमन्त्रण दे डाला । यह शान्ता को अधिक पसन्द नहीं आया । परन्तु यह भी नहीं विचार सकी कि उन्हें मना भी किस प्रकार करे । अन्त में बोली, "रशीदा मेरी तबियत आजकल खराब रहती है। इसलिए मुझे डॉक्टर ने बाहर जाने को मना किया हुआ है । तुम लोग दोनों सिनेमा हो आओ ।" इस प्रकार अपना पीछा छुड़ाया ।

इतने में शर्बत आ गया और पहाड़ी नौकर ने करीने से सजा कर मेज पर लगा दिया । तीनों ने धीरे-धीरे चुसकियाँ भरनी प्रारम्भ कर दीं ।

शान्ता को अब पूर्ण निश्चय हो चुका था कि यह रमेश बाबू हो-न-हो वही शान्ता के अपने रमेश बाबू हैं जिनका ध्यान वह स्वप्न में भी नहीं भूलती । शर्बत पीती-पीती शान्ता यकायक फिर रशीदा से पूछ बैठी, "रशीदा, तुम्हें एक बात और बतलानी होगी अपने रमेश भैया के विषय में ।"

"क्या ?" आश्चर्य से मुस्कुरा कर रशीदा ने पूछा और फिर मद भरी दृष्टि से शान्ता के मुख पर देखने लगी ।

"तुम्हारे रमेश भैया के गाल पर एक काला तिल है, काफी मोटा, बाईं तरफ, बोलो है ना ।" शान्ता ने कहा और अमरनाथजी तथा रशीदा दोनों आश्चर्य के साथ

शान्ता का मुँह ताकते रह गए। एक शब्द भी उनके मुँह से न निकला। दोनों आश्चर्य चकित थे।

"आप लोग इतने विस्मय-ग्रस्त कैसे हो गए ? मैं आजकल ज्योतिष का अध्ययन कर रही हूँ। मेरा कथन ठीक निकला ना !" निश्चय करने के लिए शान्ता ने गम्भीर मुद्रा करके पूछा।

"हाँ।" रशीदा ने कह तो दिया परन्तु उसे शान्ता की ज्योतिष वाली बात पर विश्वास न हुआ और कुछ ऐसा शक हुआ कि वह मुख से एक शब्द भी न बोल सकी। अमरनाथजी उसी प्रकार अपना सिर झुकाए हुए बैठे रहे, परन्तु कुछ-कुछ विचित्र-सा उन्हें भी लगा।

शान्ता ने बातों की दिशा यहाँ से एक दम ऐसी बदली कि सब मामला ह बदल गया। एक दम नई चहल-पहल दिखलाई देने लगी। कमला का विषय छिड़ गया और रशीदा भी शान्ता बहन के साथ मिल कर अमरनाथजी से चुटकियाँ लेने लगी।

"कमला पर यह आज भी प्राण देते हैं शान्ता बहन ! शायद आप नहीं जानतीं।" एक तिरछी दृष्टि अमरनाथजी के मुख पर फेंक कर रशीदा बोली।

"जिसे एक बार जीवन में प्यार की दृष्टि से देखा हो रशीदा बहन ! उसे बिलकुल भुलाना असम्भव है। कमला को एक दिन अमरनाथ भैया के हृदय का सम्पूर्ण प्यार प्राप्त था।" गम्भीरतापूर्वक नयनों में उपहास की रेखा लेकर शान्ता ने कहा।

"तो शान्ता बहन तुम भी अब मेरे साथ......,"

"इसमें साथ की क्या बात है ?" बीच ही में अमरनाथजी की बात काट कर रशीदा ने कहा। "सच्ची बात तो कहनी ही पड़ती है। फिर आप भी तो मना नहीं कर सकते इस बात को।" रशीदा बोली।

"मेरी बात कुछ न पूछो रशीदा ! मेरे हृदय में आज भी कमला के लिए स्थान है। जो स्थान वह बना चुकी है वह ज्यों-का-त्यों रहेगा, उसे हिलाया नहीं जा सकता। मेरे और कमला के विचारों में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया, यही कारण है कि हम दोनों का इस जीवन में मेल होना कठिन है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मैं उसका सम्मान न करूँ या वह मेरा सम्मान न करती हो। जहाँ तक व्यक्तिगत सम्मान का सम्बन्ध है वह सर्वदा ज्यों-का-त्यों बना रहेगा, परन्तु व्यक्तिगत सम्बन्ध के लिए सिद्धान्तों का खून नहीं किया जा सकता। जीवन से सिद्धान्त का मूल्य कहीं अधिक है। सिद्धान्त एक बार बनता है और एक बार मिट कर फिर बन नहीं सकता परन्तु जीवन उस सिद्धान्त की दीवार को खड़ी करने के लिए एक ईंट के

समान है। एक दीवार में अनेकों ईंटें चुनी जाती हैं।" अमरनाथजी बोले।

बातों-ही-बातों में इतनी गम्भीरता आ जाएगी इसका ध्यान शान्ता को नहीं था। वह गम्भीर वातावरण को इस समय उपस्थित नहीं होने देना चाहती थी, इस लिए एक दम बात बदल कर फिर कह उठी, "अच्छा रशीदा बहन इन बातों को अब जाने दो। मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ कि यदि मैं तुम्हारे रमेश भैया को अपने घर दावत दूँ तो क्या वह उसमें आना स्वीकार करेंगे?"

"क्यों नहीं? आपकी दावत में वह अवश्य आएँगे।" रशीदा ने कहा और अमरनाथजी ने भी अपनी अनुमति दी। दावत की तिथि के विषय में अनिश्चय रहा क्योंकि वह रमेश भैया से पूछ कर ही निश्चित की जा सकती थी।

फिर रशीदा और अमरनाथजी ने विदा ली और दोनों उसी प्रकार मुस्कुराते हुए जिस प्रकार आए थे, चले गए।

शान्ता बहुत देर तक इन्हें अपने द्वार पर खड़ी देखती रही। अन्त में जब एक कोने वाले मकान की आड़ में ये लोग आ गए तो शान्ता भी कुछ गुन-गुनाती हुई अपने मकान के अन्दर चली गई।

२६

कमला और आजाद दोनों परेशानी की दशा में बैठे थे क्योंकि उनके काम पर पानी फिर चुका था। हड़ताल टूट गई, रामू, माँगे और करमसिंह को निकाल दिया गया और अब कार्यालय में कोई उनका अपना आदमी न रहा। इस छोटी-सी हड़ताल के टूट जाने से कम्यूनिस्ट कार्यकर्त्ताओं पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और जो नये-नये पार्टी के मुल्ला मूँडे गए थे, उनके तो सब हौंसले ही पस्त हो गए।

"मैंने इसीलिए तुमसे पहले कहा था कमला! यदि हड़ताल में ही हाथ डालना है तो पहले किसी चीज पर हाथ डालो। दिल्ली क्लॉथ मिल्ज में हमारे काफी कॉमरेड हैं। वहाँ सुगमता से सफलता मिल सकती है।" आजाद बोला।

"नहीं, नहीं, नहीं," झल्लाकर कमला ने कहा, 'इन्सान-कार्यालय' को मैं स्वाहा करके छोड़ूंगी। मैं इसे समाप्त कर दूंगी। जला कर राख कर दूंगी।" कह कर कमला कमरे में मारे रोष के इधर-उधर घूमने लगी।

आजाद ने शान के साथ अपना सिगार जला लिया। दो लम्बे-लम्बे कश खींच

कर चक्करदार धुँआ कमरे की छत की ओर छोड़ा। वातावरण बिलकुल शान्त था और दोनों में से एक शब्द भी कोई नहीं बोल रहा था। जब दोनों को इसी प्रकार मौन दशा में काफी समय हो गया तो आखिर कमला बोली, "आप ने दो दिन से खाना नहीं खाया और मुझे भी भूख लगी है। चलो खाना खा आएँ। इस समस्या पर फिर बैठकर विचार करेंगे।"

"परन्तु खाना खाने चलेंगे कहाँ ? पास एक पाई नहीं है।" आजाद ने मुस्कुराते हुए कहा।

'यह मैं जानती हूँ। आप उठिए तो सही, फिर विचार करेंगे कि कहाँ जाना है ?" कमला बोली और फिर उसने शीशा लेकर पहले अपने पट्ठे सँवारे और फिर जरा पाउडर का डिब्बा लेकर मुँह को चमकाया; होठों पर सुर्खी लगाई और पैण्ट पहन कर हैट लगा लिया।

कमला का यह वेश आजाद को बहुत प्रिय हो गया था और वह उसके हृदय की साकार प्रतिमा बन गई थी। फिर दोनों ने अपनी साइकिलें सँभाल लीं। दिल्ली दरवाजे से निकल कर इरविन हॉस्पिटल के सामने जब पहुँचे तो आजाद ने धीरे से पूछा, "क्या शान्ता बहन के यहाँ, चलना है ?"

कमला ने धीरे से कहा "हाँ"।

आजाद जरा ठिठका परन्तु फिर साइकिल के पैडिल उसी रफ्तार से मारने आरम्भ कर दिए और दोनों थोड़ी ही देर पश्चात् माता सुन्दरी रोड को पार करके शान्ता बहन के मकान पर पहुँच गए। दरवाजा बन्द था। कमला ने कुण्डी खट-खटाई तो पहाड़ी नौकर बाहर निकल कर आया। वह इन लोगों को देख कर एक दम सकपका गया क्योंकि पिछले ही दिन यहाँ पर इनकी तलाशी के लिए पुलिस आई थी और शान्ता बहन इस समय इसी काम के लिए पुलिस-स्टेशन पर गई हुई थीं।

"क्या बात है रे पहाड़ी ?" कमला ने पूछा "तू इतना डर क्यों रहा है ? काँपता क्यों है ?"

"सरकार कल पुलिस आपकी तलाश में यहाँ आई थी। कोई सरदार करमसिंह हैं उन्होंने यह सूचना पुलिस को दी थी कि आप दोनों शान्ता बहन से मिलने आते हैं। पुलिस के साथ सरदार करमसिंह भी था क्योंकि करमसिंह को पुलिस ने हिरासत में लिया हुआ है।" पहाड़ी ने उत्तर दिया।

"फिर" आजाद ने जरा आँखें चढ़ा कर पूछा।

"फिर क्या सरकार ! तमाम घर की तलाशी ली और फिर पुलिस चली गई। हमने साफ मना कर दिया कि वे यहा एक अर्से से नहीं आये। शान्ता जीजी ने भी कह दिया कि वे पहले अमरनाथजी के साथ यहाँ आया करते थे परन्तु अब कितने ही

दिन से उनके दर्शन नहीं हुए।" पहाड़ी बोला।

"अच्छा अब यह बतलाओ कि क्या तुम्हारे पास कुछ खाने को तैयार है?" कमला ने शीघ्रता से पूछा।

"जी हाँ, आप लोग अन्दर आ जाइए, मैं द्वार बन्द किये देता हूँ। कहीं कोई आस-पास का व्यक्ति जाकर सूचना न दे दे।" पहाड़ी ने कहा।

दोनों अन्दर तो अवश्य आ गए परन्तु कुछ भय उन्हें भी लगने लगा था इस स्थान पर। कमला ने पहाड़ी से कहा, "देखो जो कुछ भी बना है वह एक थाल में रख ले आओ। देर न करना। हमें बहुत शीघ्र जाना है।"

"जल्दी तो सरकार आपसे अधिक मुझे है।" कह कर वह दौड़ा हुआ रसोई में चला गया और एक थाल में दो सब्जी और बहुत सारी चपातियाँ रख कर आया। दोनों ने खूब पेट भर कर खाना खाया और चलते समय पहाड़ी नौकर से कह गए कि शान्ता बहन से हमारा नमस्कार कहना और कहना कि दो दिन के भूखे थे दोनों, केवल इसलिए यहाँ उन्हें कष्ट देने के लिए आना पड़ा।

शान्ता कमला और आजाद के चले जाने के पश्चात् घर लौटी। शान्ता का मन इस समय विचित्र प्रकार की परिस्थितियों में भूल रहा था। कभी-कभी उसके मन में आता था कि उड़कर रमेश बाबू के पास पहुँच जाए परन्तु इस प्रकार उसका जाना उचित नहीं था इसलिए वह अपने मन को मार कर शान्त रह गई और प्रतीक्षा करने लगी उस शुभ घड़ी की कि जब रशीदा उसके पास आकर दावत की स्वीकृति की सूचना देगी।

एक दिन निकल गया रशीदा नहीं आई।

दो दिन निकल गए रशीदा नहीं आई।

तीसरा दिन भी व्यतीत होने ही वाला था कि सन्ध्या समय शान्ता ने रशीदा को अकेली ही साइकिल पर अपने मकान की ओर आते देखा। शान्ता अपने को सँभाल न सकी और उस शुभ सूचना को लेने के लिए मकान से बाहर अपने छोटे से पार्क में आकर खड़ी हो गई।

"जीजी आज तो बस जान ही बच गई" साइकिल से उतर कर हाँफते हुए रशीदा ने कहा।

"क्यों?" साइकिल सँभालते हुए शान्ता ने पूछा और साइकिल एक तरफ रख कर रशीदा को प्यार से अपनी छाती से लगा लिया। फिर स्नेहपूर्वक पूछा "कहीं चोट तो नहीं आई?"

बस यही गनीमत हुई। ड्राईवर बहुत ही होशियार था नहीं तो जीजी! आज आपकी रशीदा खत्म हो गई थी।" रशीदा स्नेहपूर्वक शान्ता से लिपट कर बोली

और इस प्रकार शान्ता से लिपट कर उसने इतना अपनापन अनुभव किया कि मानो वह अपनी माँ के कलेजे से लिपट रही थी। वह इतनी भयभीत-सी हो चुकी थी कि कितनी ही देर तक यों ही लिपटी रही और इसी प्रकार शान्ता उसे सँभाले हुए लाकर पंखे के नीचे पलंग पर बैठ गई। उसने धीरे से रशीदा के माथे को सहलाते हुए पलंग पर लिटा दिया।

कुछ देर में जब रशीदा का मन स्वस्थ हुआ तो वह बोली, "आज पत्र निकलता है इसलिए उन्हें अवकाश मिला नहीं, मुझे अकेले ही आना पड़ा। मैंने सोचा कि साइकिल पर ही चली चलूँ।" रशीदा बोली।

"तुम्हें उस दिन भी मैंने साइकिल पर लड़-खड़ाते देख कर कहा था कि तुम साइकिल पर मत चला करो परन्तु तुम इतनी जिद्दी हो कि मानती ही नहीं।" दुखी होते हुए प्यार से रशीदा के सिर पर हाथ फेर कर शान्ता ने कहा और फिर धीरे-धीरे उँगलियाँ डाल कर रशीदा के बाल सहलाने लगी। रशीदा ने भी प्यार में आकर कुछ क्षण के लिए आँखें मींच लीं और फिर वह स्वस्थ होकर अपने चंचलपन से एक दम उछल कर बैठी हो गई।

इस समय तक पहाड़ी नौकर चाय लेकर आ गया था। रशीदा ने एक दम चाय बना कर अपनी प्याली होठों से लगा ली। फिर वह अपनी कटीली आँखें इधर-उधर मटका कर बोली, "अब जान में जान आई है जीजी! पुराने जमाने के लोगों के बीच में यदि बैठ जाओ जीजी! तो जितना जी चाहे चाय की बुराइयाँ सुन लो, परन्तु आज के युग की तो यह प्राण बन गई है। तुम जानती हो भला जीजी कि इसका क्या कारण है?" रशीदा ने चपलतापूर्वक आँखें घुमाकर कहा।

"मैं तो यह सब कुछ नहीं जानती रशीदा!" गम्भीर मुँह बनाकर कनखी से मुस्कुराते हुए शान्ता ने कहा।

"नहीं! आप जानती सब कुछ हैं शान्ता बहन! परन्तु आप मेरी परीक्षा लेना चाहती हैं कि इसका कारण मैं ही बतलाऊँ। तो आप सुनिए मैं ही बतलाती हूँ। यदि आप मेरे विचार से सहमत न हों तो मेरी गलती को ठीक कर सकती हैं। प्रत्येक मध्यम वर्ग के व्यक्ति को खाने और पीने के अतिरिक्त किसी ऐसे पेय पदार्थ की आवश्यकता होती है जो जीवन में कुछ उत्तेजना ला सके। प्राचीन काल का मध्यम वर्ग अपने बच्चों को, अपने मेहमानों को, और स्वयं अपने परिवार को बहुत सुगमतापूर्वक दूध पिला सकता था, एक बार, दो बार और विशेष अवसरों पर तीन बार भी। मेरे अपने परिवार में यही सब कुछ होता हुआ मैंने देखा था जीजी! परन्तु आज के युग में इस प्रकार प्रचुरता के साथ दूध नहीं मिल सकता। आज के युग की आय प्राचीन युग की आय से बहुत घट चुकी है, यदि जीवन में प्रयोग करने

दिन से उनके दर्शन नहीं हुए।" पहाड़ी बोला।

"अच्छा अब यह बतलाओ कि क्या तुम्हारे पास कुछ खाने को तैयार है ?" कमला ने शीघ्रता से पूछा।

"जी हाँ, आप लोग अन्दर आ जाइए, मैं द्वार बन्द किये देता हूँ। कहीं कोई आस-पास का व्यक्ति जाकर सूचना न दे दे।" पहाड़ी ने कहा।

दोनों अन्दर तो अवश्य आ गए परन्तु कुछ भय उन्हें भी लगने लगा था इस स्थान पर। कमला ने पहाड़ी से कहा, "देखो जो कुछ भी बना है वह एक थाल में रख ले आओ। देर न करना। हमें बहुत शीघ्र जाना है।"

"जल्दी तो सरकार आपसे अधिक मुझे है।" कह कर वह दौड़ा हुआ रसोई में चला गया और एक थाल में दो सब्जी और बहुत सारी चपातियाँ रख कर आया। दोनों ने खूब पेट भर कर खाना खाया और चलते समय पहाड़ी नौकर से कह गए कि शान्ता बहन से हमारा नमस्कार कहना और कहना कि दो दिन के भूखे थे दोनों, केवल इसलिए यहाँ उन्हें कष्ट देने के लिए आना पड़ा।

शान्ता कमला और आजाद के चले जाने के पश्चात् घर लौटी। शान्ता का मन इस समय विचित्र प्रकार की परिस्थितियों में झूल रहा था। कभी-कभी उसके मन में आता था कि उड़कर रमेश बाबू के पास पहुँच जाए परन्तु इस प्रकार उसका जाना उचित नहीं था इसलिए वह अपने मन को मार कर शान्त रह गई और प्रतीक्षा करने लगी उस शुभ घड़ी की कि जब रशीदा उसके पास आकर दावत की स्वीकृति की सूचना देगी।

एक दिन निकल गया रशीदा नहीं आई।

दो दिन निकल गए रशीदा नहीं आई।

तीसरा दिन भी व्यतीत होने ही वाला था कि सन्ध्या समय शान्ता ने रशीदा को अकेली ही साइकिल पर अपने मकान की ओर आते देखा। शान्ता अपने को सँभाल न सकी और उस शुभ सूचना को लेने के लिए मकान से बाहर अपने छोटे से पार्क में आकर खड़ी हो गई।

"जीजी आज तो बस जान ही बच गई" साइकिल से उतर कर हाँपते हुए रशीदा ने कहा।

"क्यों ?" साइकिल सँभालते हुए शान्ता ने पूछा और साइकिल एक तरफ रख कर रशीदा को प्यार से अपनी छाती से लगा लिया। फिर स्नेहपूर्वक पूछा "कहीं चोट तो नहीं आई ?"

बस यही गनीमत हुई। ड्राईवर बहुत ही होशियार था नहीं तो जीजी ! आज आपकी रशीदा खत्म हो गई थी।" रशीदा स्नेहपूर्वक शान्ता से लिपट कर बोली

और इस प्रकार शान्ता से लिपट कर उसने इतना अपनापन अनुभव किया कि मानो वह अपनी माँ के कलेजे से लिपट रही थी। वह इतनी भयभीत-सी हो चुकी थी कि कितनी ही देर तक यों ही लिपटी रही और इसी प्रकार शान्ता उसे सँभाले हुए लाकर पंखे के नीचे पलंग पर बैठ गई। उसने धीरे से रशीदा के माथे को सहलाते हुए पलंग पर लिटा दिया।

कुछ देर में जब रशीदा का मन स्वस्थ हुआ तो वह बोली, "आज पत्र निकलता है इसलिए उन्हें अवकाश मिला नहीं, मुझे अकेले ही आना पड़ा। मैंने सोचा कि साइकिल पर ही चली चलूँ।" रशीदा बोली।

"तुम्हें उस दिन भी मैंने साइकिल पर लड़-खड़ाते देख कर कहा था कि तुम साइकिल पर मत चला करो परन्तु तुम इतनी जिद्दी हो कि मानती ही नहीं।" दुखी होते हुए प्यार से रशीदा के सिर पर हाथ फेर कर शान्ता ने कहा और फिर धीरे-धीरे उँगलियाँ डाल कर रशीदा के बाल सहलाने लगी। रशीदा ने भी प्यार में आकर कुछ क्षण के लिए आँखें मींच लीं और फिर वह स्वस्थ होकर अपने चंचलपन से एक दम उछल कर बैठी हो गई।

इस समय तक पहाड़ी नौकर चाय लेकर आ गया था। रशीदा ने एक दम चाय बना कर अपनी प्याली होठों से लगा ली। फिर वह अपनी कटीली आँखें इधर-उधर मटका कर बोली, "अब जान में जान आई है जीजी! पुराने जमाने के लोगों के बीच में यदि बैठ जाओ जीजी! तो जितना जी चाहे चाय की बुराइयाँ सुन लो, परन्तु आज के युग की तो यह प्राण बन गई है। तुम जानती हो भला जीजी कि इसका क्या कारण है?" रशीदा ने चपलतापूर्वक आँखें घुमाकर कहा।

"मैं तो यह सब कुछ नहीं जानती रशीदा!" गम्भीर मुँह बनाकर कनखी से मुस्कुराते हुए शान्ता ने कहा।

"नहीं! आप जानती सब कुछ हैं शान्ता बहन! परन्तु आप मेरी परीक्षा लेना चाहती हैं कि इसका कारण मैं ही बतलाऊँ। तो आप सुनिए मैं ही बतलाती हूँ। यदि आप मेरे विचार से सहमत न हों तो मेरी गलती को ठीक कर सकती हैं। प्रत्येक मध्यम वर्ग के व्यक्ति को खाने और पीने के अतिरिक्त किसी ऐसे पेय पदार्थ की आवश्यकता होती है जो जीवन में कुछ उत्तेजना ला सके। प्राचीन काल का मध्यम वर्ग अपने बच्चों को, अपने मेहमानों को, और स्वयं अपने परिवार को बहुत सुगमतापूर्वक दूध पिला सकता था, एक बार, दो बार और विशेष अवसरों पर तीन बार भी। मेरे अपने परिवार में यही सब कुछ होता हुआ मैंने देखा था जीजी! परन्तु आज के युग में इस प्रकार प्रचुरता के साथ दूध नहीं मिल सकता। आज के युग की आय प्राचीन युग की आय से बहुत घट चुकी है, यदि जीवन में प्रयोग करने

वाली सामग्रियों की मंहगाई की ओर ध्यान दें तव।

बच्चे पैदा होना और मेहमानों का घरों पर आना इन दो बातों में कोई कमी नहीं हुई बल्कि निश्चित रूप से उन्नति ही हुई है। इसलिए ऐसी वस्तु की आवश्यकता इस मध्यम वर्ग को हुई जो रोटी और पानी के अतिरिक्त जीवन में प्रयोग की जा सके और इस वस्तु का स्थान मिल गया चाय को। चाय आज उसी स्थान पर प्रयोग की जाती है जिस स्थान पर आज से वीस वर्ष पूर्व दूध का प्रयोग किया जाता था। उदाहरण के लिए आप बारातों को ले लीजिए, दावतों को ले लीजिए, अपने जीवन के प्रातःकाल और सायंकाल को ले लीजिए, बच्चों के लिए ले लीजिए, सबको चाय दी जाती है केवल दूध पीते बच्चों को छोड़ कर। इन अवसरों पर पहले दूध का ही प्रयोग होता था।" कहती-कहती रशीदा एकदम चुप हो गई मानो उसे जो कुछ कहना था वह कह चुकी।

शान्ता जब कुछ देर तक कुछ नहीं बोली तो रशीदा ने उन्हें झँझोड़ कर कहा "क्यो जीजी ! क्या आपको मेरा चाय-प्रचार का विश्लेषण पसंद नहीं आया ?" और कह कर धीरे से मुस्कुरा दी।

"रशीदा !" कह कर शान्ता ने अपना एक हाथ रशीदा के सिर पर और दूसरा रशीदा की ठोड़ी पर रखा और हँस कर बहुत प्यार से बोली, "तेरी छोटी-सी खोपड़ी में क्या कुछ भरा पड़ा है, मानो संसार की हर वस्तु तेरे लिए विश्लेषण की ही वस्तु है। किसी वस्तु को केवल देखकर भी आनन्द लाभ कर लिया करो। हर वस्तु का विश्लेषण करना अच्छा नहीं होता। जीवन का लक्ष्य है आनन्द, और मैं कहती हूँ आनन्द ही ईश्वर है। आनन्द और ईश्वर की प्राप्ति के लिए जानती हो प्रथम वस्तु है सन्तोष। जब तक संतोष आदमी के पास नहीं है वह जीवन में सुखी नहीं रह सकता और यदि वह सुखी नहीं हो सकता तो उसके लिए सब सम्पदाएँ व्यर्थ हैं।"

"लेकिन मैं तो कम्यूनिस्ट नहीं हूँ जीजी ! फिर आप मुझे क्यों इस प्रकार की शिक्षा दे रही हैं ?" बहुत ही चतुरता से रशीदा ने शान्ता की भावना को पहचाना और जिस भाव को शान्ता व्यक्त करना चाहती थी जब उसने देखा कि रशीदा उसे पहचान गई तो शान्ता को रशीदा के चातुर्य से अत्यन्त संतोष मिला और वह एक दम गद्-गद् होकर लिपट गई, "तुम सचमुच बहुत चतुर हो रशीदा ! मैंने ये शब्द केवल इसलिए कहे थे कि मैं आज अपनी रशीदा के चातुर्य की परीक्षा लेना चाहती थी। मेरी रशीदा इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुई उसके लिए उसे बधाई देती हूँ।" स्नेहपूर्वक शान्ता ने कहा।

शान्ता के इन मधुर शब्दों ने रशीदा के कानों, मन तथा हृदय में अमृत ढाल दिया। शान्ता के मुख से अपनी योग्यता का प्रमाण-पत्र पाकर आज फूली नहीं समा

रही थी वह । उसका हृदय बार-बार अपनी विजय पर उछलने लगता था और उसे ऐसा लगता कि मानो उसने अपना लक्षित धन प्राप्त कर लिया। रशीदा का एक दम स्वप्न-सा टूटा तो अपने को शान्ता की गोद में पड़ा पाया और शान्ता उसे प्यार से सहला रही थी।

"यह क्या हुआ जीजी ?" एक दम खड़े होते हुए रशीदा ने कहा।

"घबराओ नहीं," शान्ता प्यार से बोली। "तुम्हें यों ही चक्कर-सा आ गया था और तुम कुछ स्वप्न-सा देख रही थीं।" शान्ता बोली।

"यही बात है जीजी !" आँखें मलती हुई रशीदा बोली, "मुझे कुछ नींद की घुमेर-सी आ गई थी और मैंने बहुत प्यारा सपना देखा।" रशीदा आँखें मलती हुई कहने लगी।

"तुम चाय पीती-पीती अचानक एक ओर को गिर गईं। मैंने तुम्हें प्यार से सँभाल कर अपनी गोद में लिटा लिया और धीरे-धीरे तुम्हारे सिर को सहलाती रही।" शान्ता ने कहा।

रशीदा का रोम-रोम स्नेह में कम्पायमान हो उठा था। उसके हृदय में एक ऐसे आनन्द की भावना भर गई थी कि मन-मयूर नाच उठा और जीवन संगीतमय हो गया।

"हाँ मैं चाय पर बातें कर रही थी शान्ता बहन ! आपको पसंद आया न मेरा विश्लेषण !" एक दम स्वस्थ होकर रशीदा बोली।

'हाँ पसन्द आया।" शान्ता ने उत्तर दिया।

रशीदा ने चाय की एक प्याली और बनाई और फिर बोली "अच्छा बहन ! आज का बहुत समय तो यों ही व्यर्थ की बातों में निकल गया परन्तु आज मैंने आपके घर पर बहुत आनन्द लाभ किया, मैं सच कहती हूँ। ऐसा आनन्द लाभ मैं केवल अपने भैया के घर पर ही कर सकती हूँ अन्य, किसी स्थान पर नहीं।" रशीदा स्वाभाविक सरलता से बोली।

शान्ता ने मन ही मन कहा—रशीदा तेरी इच्छा पूर्ण हो।

"और अपनी बहन के घर नहीं ?" मुँह बनाकर शान्ता बोली।

"क्यों नहीं ? यह तो प्रत्यक्ष ही किया है। हाँ मुझे आपको अब वह सूचना देनी है कि भैया ने आपकी दावत का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है और वह कल सन्ध्या को यहाँ आएँगे।" रशीदा ने मुस्कुराकर कहा ?

"कल सन्ध्या को ?" एक बार दुहरा कर शान्ता ने पूछा।

"हाँ जीजी ! कल सन्ध्या को छै बजे वह और रमेश भैया आएँगे। यदि आप कहें तो मैं कुछ पहले आ जाऊँ।" रशीदा हँसकर बोली।

वाली सामग्रियों की मंहगाई की ओर ध्यान दें तव।

वच्चे पैदा होना और मेहमानों का घरों पर आना इन दो वातों में कोई कमी नहीं हुई बल्कि निश्चित रूप से उन्नति ही हुई है। इसलिए ऐसी वस्तु की आवश्यकता इस मध्यम वर्ग को हुई जो रोटी और पानी के अतिरिक्त जीवन में प्रयोग की जा सके और इस वस्तु का स्थान मिल गया चाय को। चाय आज उसी स्थान पर प्रयोग की जाती है जिस स्थान पर आज से बीस वर्ष पूर्व दूध का प्रयोग किया जाता था। उदाहरण के लिए आप बारातों को ले लीजिए, दावतों को ले लीजिए, अपने जीवन के प्रातःकाल और सायंकाल को ले लीजिए, बच्चों के लिए ले लीजिए, सबको चाय दी जाती है केवल दूध पीते बच्चों को छोड़ कर। इन अवसरों पर पहले दूध का ही प्रयोग होता था।" कहती-कहती रशीदा एकदम चुप हो गई मानो उसे जो कुछ कहना था वह कह चुकी।

शान्ता जब कुछ देर तक कुछ नहीं बोली तो रशीदा ने उन्हें झँझोड़ कर कहा "क्यो जीजी ! क्या आपको मेरा चाय-प्रचार का विश्लेषण पसंद नहीं आया ?" और कह कर धीरे से मुस्कुरा दी।

"रशीदा !" कह कर शान्ता ने अपना एक हाथ रशीदा के सिर पर और दूसरा रशीदा की ठोड़ी पर रखा और हँस कर बहुत प्यार से बोली, "तेरी छोटी-सी खोपड़ी में क्या कुछ भरा पड़ा है, मानो संसार की हर वस्तु तेरे लिए विश्लेषण की ही वस्तु है। किसी वस्तु को केवल देखकर भी आनन्द लाभ कर लिया करो। हर वस्तु का विश्लेषण करना अच्छा नहीं होता। जीवन का लक्ष्य है आनन्द, और मैं कहती हूँ आनन्द ही ईश्वर है। आनन्द और ईश्वर की प्राप्ति के लिए जानती हो प्रथम वस्तु है सन्तोष। जब तक संतोष आदमी के पास नहीं है वह जीवन में सुखी नहीं रह सकता और यदि वह सुखी नहीं हो सकता तो उसके लिए सब सम्पदाएँ व्यर्थ हैं।"

"लेकिन मैं तो कम्यूनिस्ट नहीं हूँ जीजी ! फिर आप मुझे क्यों इस प्रकार की शिक्षा दे रही हैं ?" बहुत ही चतुरता से रशीदा ने शान्ता की भावना को पहचाना और जिस भाव को शान्ता व्यक्त करना चाहती थी जब उसने देखा कि रशीदा उसे पहचान गई तो शान्ता को रशीदा के चातुर्य से अत्यन्त संतोष मिला और वह एक दम गद्-गद् होकर लिपट गई, "तुम सचमुच बहुत चतुर हो रशीदा ! मैंने ये शब्द केवल इसलिए कहे थे कि मैं आज अपनी रशीदा के चातुर्य की परीक्षा लेना चाहती थी। मेरी रशीदा इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुई उसके लिए उसे बधाई देती हूँ।" स्नेहपूर्वक शान्ता ने कहा।

शान्ता के इन मधुर शब्दों ने रशीदा के कानों, मन तथा हृदय में अमृत ढाल दिया। शान्ता के मुख से अपनी योग्यता का प्रमाण-पत्र पाकर आज फूली नहीं समा

रही थी वह । उसका हृदय बार-बार अपनी विजय पर उछलने लगता था और उसे ऐसा लगता कि मानो उसने अपना लक्षित धन प्राप्त कर लिया । रशीदा का एक दम स्वप्न-सा टूटा तो अपने को शान्ता की गोद में पड़ा पाया और शान्ता उसे प्यार से सहला रही थी ।

"यह क्या हुआ जीजी ?" एक दम खड़े होते हुए रशीदा ने कहा ।

"घबराओ नहीं," शान्ता प्यार से बोली । "तुम्हें यों ही चक्कर-सा आ गया था और तुम कुछ स्वप्न-सा देख रही थीं ।" शान्ता बोली ।

"यही बात है जीजी !" आँखें मलती हुई रशीदा बोली, "मुझे कुछ नींद की घुमेर-सी आ गई थी और मैंने बहुत प्यारा सपना देखा ।" रशीदा आँखें मलती हुई कहने लगी ।

"तुम चाय पीती-पीती अचानक एक ओर को गिर गईं । मैंने तुम्हें प्यार से सँभाल कर अपनी गोद में लिटा लिया और धीरे-धीरे तुम्हारे सिर को सहलाती रही ।" शान्ता ने कहा ।

रशीदा का रोम-रोम स्नेह में कम्पायमान हो उठा था । उसके हृदय में एक ऐसे आनन्द की भावना भर गई थी कि मन-मयूर नाच उठा और जीवन संगीतमय हो गया ।

"हाँ मैं चाय पर बातें कर रही थी शान्ता बहन ! आपको पसंद आया न मेरा विश्लेषण !" एक दम स्वस्थ होकर रशीदा बोली ।

"हाँ पसन्द आया ।" शान्ता ने उत्तर दिया ।

रशीदा ने चाय की एक प्याली और बनाई और फिर बोली "अच्छा बहन ! आज का बहुत समय तो यों ही व्यर्थ की बातों में निकल गया परन्तु आज मैंने आपके घर पर बहुत आनन्द लाभ किया, मैं सच कहती हूँ । ऐसा आनन्द लाभ मैं केवल अपने भैया के घर पर ही कर सकती हूँ अन्य, किसी स्थान पर नहीं ।" रशीदा स्वाभाविक सरलता से बोली ।

शान्ता ने मन ही मन कहा—रशीदा तेरी इच्छा पूर्ण हो ।

"और अपनी बहन के घर नहीं ?" मुँह बनाकर शान्ता बोली ।

"क्यों नहीं ? यह तो प्रत्यक्ष ही किया है । हाँ मुझे आपको अब यह सूचना देनी है कि भैया ने आपकी दावत का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है और वह कल सन्ध्या को यहाँ आएँगे ।" रशीदा ने मुस्कुराकर कहा ?

"कल सन्ध्या को ?" एक बार दुहरा कर शान्ता ने पूछा ।

"हाँ जीजी ! कल सन्ध्या को छै बजे वह और रमेश भैया आएँगे । यदि आप कहें तो मैं कुछ पहले आ जाऊँ ।" रशीदा हँसकर बोली ।

"अवश्य ! तुम्हें तो पहले आना ही होगा। यदि तुम पहले नहीं आओगी तो मेरे पास यहाँ प्रबन्ध करने के लिए और कौन है ? छोटी बच्ची को मैंने होस्टल में छोड़ दिया है, क्योंकि यहाँ रहकर उसकी पढ़ाई नहीं हो पा रही थी।" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"तो अब मुझे आप आज्ञा दीजिए और मैं कल ठीक दो बजे आ जाऊँगी। अब अन्धेरा पड़ चला है और यह साईकिल मेरी जान को है।" साईकिल की ओर संकेत करके रशीदा बोली।

"नहीं, इस साइकिल पर मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। मैं इसे अपने चपरासी के हाथ भिजवा दूँगी और चलो तुम्हें बस पर बिठला दूँ।" कहकर शान्ता स्वयं रशीदा के साथ बस तक जाने को उद्यत हो गई। रशीदा भी मना न कर सकी और धीरे-धीरे वह शान्ता के साथ हो ली। वह स्वयं भी साइकिल से पिंड छुड़ाना चाहती थी।

रेलवे-लाइन पार करके माता सुन्दरी रोड के किनारे पर जाकर दोनों खड़ी हो गईं। वहाँ भी जब तक बस नहीं आई इधर-उधर की बातें चलती रहीं। रशीदा का चंचलपन बार-बार एक मुस्कुराहट ला देता था शान्ता के होठों पर। शान्ता का स्वभाव था कम बोलना और रशीदा का स्वभाव था खूब बोलना। रशीदा के सामने कुछ भी क्यों न आ जाए वह उसपर अपना रिमार्क पास किए बिना नहीं रहती थी और साथ ही यह भी असम्भव था कि कोई वस्तु सामने आकर उसकी दृष्टि से छुपी रह सके। यदि वह बाजार में चलती थी तो प्रत्येक दूकान की प्रत्येक विशेषता की ओर उसका ध्यान जाता था—उसकी दृष्टि से किसी को कोट पहनने का सलीका नहीं था तो किसी को साड़ी नहीं बाँधनी आती—यह रशीदा के साधारण रिमार्क होते थे, परन्तु होते थे बहुत नपे-तुले। यदि कोई स्त्री सामने आई तो उसके सिर की माँग से लेकर पैर के अँगूठे के नाखून तक की सुर्खी पर रशीदा की पैनी दृष्टि जा पड़ती थी और कुछ-न-कुछ उपहास के लिए सामग्री वह खोज ही निकालती थी।

बस आ गई और रशीदा उस पर चढ़ गई। चलते समय रशीदा ने शान्ता को नमस्कार किया और शान्ता ने प्यार से नमस्कार का उत्तर नमस्कार से दिया। बस छूट जाने पर शान्ता अपने मकान पर लौट आई और आकर एकान्त में बैठ गई। रमेश बाबू की न जाने कितनी प्राचीन स्मृतियाँ उसके विचारों में आकर घूमने लगीं। शान्ता धीरे से अपने पलंग पर लेट गई और कुछ क्षण के लिए विचारों-ही-विचारों में उसकी आँखें मिच गईं।

शान्ता ने एक स्वप्न देखा कि वह और रमेश बाबू अनारकली वाले रमेश बाबू के कमरे में बैठे बातें कर रहे थे। रमेश बाबू कह रहे थे, "शान्ता ! तुम्हारे पिता व्यर्थ लोभ कर रहे हैं। अब लाहौर में अधिक रहना सम्भव नहीं हो सकता। तुम

लोगों को शीघ्र लाहौर छोड़कर दिल्ली चला जाना चाहिए। कमीशन की रिपोर्ट सुनाने से पूर्व ही लाहौर छोड़ देना उचित था।" रमेश बाबू ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"परन्तु मैं क्या कर सकती हूँ रमेश बाबू ? वह तो लाहौर छोड़ने को राजी ही नहीं हैं। कहते हैं—क्या है यदि पाकिस्तान भी बन गया तो पाकिस्तान में ही रह लेंगे ? यहाँ जानवर तो नहीं रहेंगे, रहेंगे तो इन्सान ही। इन्सानों में इन्सानियत कब तक न आएगी ?" शान्ता ने मेज पर कोहनियाँ टेककर अपनी ठोड़ी को अपने हाथों पर सँभालते हुए कहा।

"यह तो उनका विचार ठीक है शान्ता ! परन्तु अपने मिट जाने के पश्चात् यदि उनमें इन्सानियत आई भी तो क्या लाभ ? हम लोग साधारण शक्ति के व्यक्ति हैं। इस तूफान का वेग सहन करना हमारी शक्ति की सीमा से परे की बात है; इसे हम नहीं रोक सकते। शक्ति वहाँ देखी जाती है जहाँ बराबर की जोट हो। यहाँ शक्ति आजमाना मैं नहीं समझता कि किसी प्रकार भी उचित है।" रमेश बाबू ने गम्भीरता-पूर्वक कहा था। वह चिन्तानिमग्न होकर बैठ गए।

उसी रात्रि को वह काण्ड हुआ कि जिसने शान्ता को उसके माता-पिता, रमेश बाबू और सभी से दूर हटाकर दुनिया के एक कोने में अकेला लाकर पटक दिया। शान्ता को अब किसी का सहारा नहीं रहा। उसे अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ा। किसी के आश्रय की राह वह अब नहीं देख सकती थी।

शान्ता ने अपना स्वतन्त्र मार्ग खोज निकाला और यहाँ एक ऐसा परिवार स्थापित कर लिया कि जिसमें वह अपनेपन का अनुभव कर सके। अपने जीवन के सभी अभावों की पूर्ति वह कर सकी परन्तु रमेश बाबू······वह जीवन का वह अभाव था कि जिसकी पूर्ति करना शान्ता के लिए असम्भव था। न रमेश बाबू जैसा व्यक्ति ही कोई उसकी दृष्टि में आया और न हृदय का सौदा ही दो बार हो सकता था। शान्ता के जीवन में लाहौर से आने के पश्चात् यह नहीं कि उसके सम्पर्क में कोई आदमी आया ही न हो, परन्तु वे सभी शान्ता को ऐसे मालूम पड़ते थे कि रमेश बाबू के सम्पूर्ण जीवन के एक कण मात्र भी नहीं थे।

जिस समय मेज के दोनों तरफ बैठे रमेश बाबू और शान्ता ये बातें कर रहे थे उसी समय रमेश बाबू ने कहा था, "शान्ता आज मेरा दिल न जाने क्यों कुछ अशुभ सोच रहा है। शायद जीवन में हम तुम फिर कभी न मिल सकें। इसलिए लो मैं यह अपना रूमाल तुम्हें भेंट स्वरूप देता हूँ।" और इतना कहकर रमेश बाबू ने शान्ता के नेत्रों से टपकने वाले दो मोटे-मोटे अश्रु बिन्दुओं को उस रूमाल में समेटकर रूमाल शान्ता के हाथ में दे दिया। साधारण काली स्याही से रमेश बाबू ने स्वयं अपने हाथ से रूमाल पर अपना नाम लिख दिया था।

"अवश्य ! तुम्हें तो पहले आना ही होगा। यदि तुम पहले नहीं आओगी तो मेरे पास यहाँ प्रबन्ध करने के लिए और कौन है ? छोटी बच्ची को मैंने होस्टल में छोड़ दिया है, क्योंकि यहाँ रहकर उसकी पढ़ाई नहीं हो पा रही थी।" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"तो अब मुझे आप आज्ञा दीजिए और मैं कल ठीक दो बजे आ जाऊँगी। अब अन्धेरा पड़ चला है और यह साईकिल मेरी जान को है।" साईकिल की ओर संकेत करके रशीदा बोली।

"नहीं, इस साइकिल पर मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। मैं इसे अपने चपरासी के हाथ भिजवा दूँगी और चलो तुम्हें बस पर बिठला दूँ।" कहकर शान्ता स्वयं रशीदा के साथ बस तक जाने को उद्यत हो गई। रशीदा भी मना न कर सकी और धीरे-धीरे वह शान्ता के साथ हो ली। वह स्वयं भी साइकिल से पिंड छुड़ाना चाहती थी।

रेलवे-लाइन पार करके माता सुन्दरी रोड के किनारे पर जाकर दोनों खड़ी हो गईं। वहाँ भी जब तक बस नहीं आई इधर-उधर की बातें चलती रहीं। रशीदा का चंचलपन बार-बार एक मुस्कुराहट ला देता था शान्ता के होठों पर। शान्ता का स्वभाव था कम बोलना और रशीदा का स्वभाव था खूब बोलना। रशीदा के सामने कुछ भी क्यों न आ जाए वह उसपर अपना रिमार्क पास किए बिना नहीं रहती थी और साथ ही यह भी असम्भव था कि कोई वस्तु सामने आकर उसकी दृष्टि से छुपी रह सके। यदि वह बाजार में चलती थी तो प्रत्येक दूकान की प्रत्येक विशेषता की ओर उसका ध्यान जाता था—उसकी दृष्टि से किसी को कोट पहनने का सलीका नहीं था तो किसी को साड़ी नहीं बाँधनी आती—यह रशीदा के साधारण रिमार्क होते थे, परन्तु होते थे बहुत नपे-तुले। यदि कोई स्त्री सामने आई तो उसके सिर की माँग से लेकर पैर के अँगूठे के नाखून तक की सुर्खी पर रशीदा की पैनी दृष्टि जा पड़ती थी और कुछ-न-कुछ उपहास के लिए सामग्री वह खोज ही निकालती थी।

बस आ गई और रशीदा उस पर चढ़ गई। चलते समय रशीदा ने शान्ता को नमस्कार किया और शान्ता ने प्यार से नमस्कार का उत्तर नमस्कार से दिया। बस छूट जाने पर शान्ता अपने मकान पर लौट आई और आकर एकान्त में बैठ गई। रमेश बाबू की न जाने कितनी प्राचीन स्मृतियाँ उसके विचारों में आकर घूमने लगीं। शान्ता धीरे से अपने पलंग पर लेट गई और कुछ क्षण के लिए विचारों-ही-विचारों में उसकी आँखें मिच गईं।

शान्ता ने एक स्वप्न देखा कि वह और रमेश बाबू अनारकली वाले रमेश बाबू के कमरे में बैठे बातें कर रहे थे। रमेश बाबू कह रहे थे, "शान्ता ! तुम्हारे पिता व्यर्थ लोभ कर रहे हैं। अब लाहौर में अधिक रहना सम्भव नहीं हो सकता। तुम

लोगों को शीघ्र लाहौर छोड़कर दिल्ली चला जाना चाहिए। कमीशन की रिपोर्ट सुनाने से पूर्व ही लाहौर छोड़ देना उचित था।" रमेश बाबू ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"परन्तु मैं क्या कर सकती हूँ रमेश बाबू ? वह तो लाहौर छोड़ने को राजी ही नहीं हैं। कहते हैं—क्या है यदि पाकिस्तान भी बन गया तो पाकिस्तान में ही रह लेंगे ? यहाँ जानवर तो नहीं रहेंगे, रहेंगे तो इन्सान ही। इन्सानों में इन्सानियत कब तक न आएगी ?" शान्ता ने मेज पर कोहनियाँ टेककर अपनी ठोड़ी को अपने हाथों पर सँभालते हुए कहा।

"यह तो उनका विचार ठीक है शान्ता ! परन्तु अपने मिट जाने के पश्चात् यदि उनमें इन्सानियत आई भी तो क्या लाभ ? हम लोग साधारण शक्ति के व्यक्ति हैं। इस तूफान का वेग सहन करना हमारी शक्ति की सीमा से परे की बात है; इसे हम नहीं रोक सकते। शक्ति वहाँ देखी जाती है जहाँ बराबर की जोट हो। यहाँ शक्ति आजमाना मैं नहीं समझता कि किसी प्रकार भी उचित है।" रमेश बाबू ने गम्भीरता-पूर्वक कहा था। वह चिन्तानिमग्न होकर बैठ गए।

उसी रात्रि को वह काण्ड हुआ कि जिसने शान्ता को उसके माता-पिता, रमेश बाबू और सभी से दूर हटाकर दुनिया के एक कोने में अकेला लाकर पटक दिया। शान्ता को अब किसी का सहारा नहीं रहा। उसे अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ा। किसी के आश्रय की राह वह अब नहीं देख सकती थी।

शान्ता ने अपना स्वतन्त्र मार्ग खोज निकाला और यहाँ एक ऐसा परिवार स्थापित कर लिया कि जिसमें वह अपनेपन का अनुभव कर सके। अपने जीवन के सभी अभावों की पूर्ति वह कर सकी परन्तु रमेश बाबू······वह जीवन का वह अभाव था कि जिसकी पूर्ति करना शान्ता के लिए असम्भव था। न रमेश बाबू जैसा व्यक्ति ही कोई उसकी दृष्टि में आया और न हृदय का सौदा ही दो बार हो सकता था। शान्ता के जीवन में लाहौर से आने के पश्चात् यह नहीं कि उसके सम्पर्क में कोई आदमी आया ही न हो, परन्तु वे सभी शान्ता को ऐसे मालूम पड़ते थे कि रमेश बाबू के सम्पूर्ण जीवन के एक कण मात्र भी नहीं थे।

जिस समय मेज के दोनों तरफ बैठे रमेश बाबू और शान्ता ये बातें कर रहे थे उसी समय रमेश बाबू ने कहा था, "शान्ता आज मेरा दिल न जाने क्यों कुछ अशुभ सोच रहा है। शायद जीवन में हम तुम फिर कभी न मिल सकें। इसलिए लो मैं यह अपना रूमाल तुम्हें भेंट स्वरूप देता हूँ।" और इतना कहकर रमेश बाबू ने शान्ता के नेत्रों से टपकने वाले दो मोटे-मोटे अश्रु विन्दुओं को उस रूमाल में समेटकर रूमाल शान्ता के हाथ में दे दिया। साधारण काली स्याही से रमेश बाबू ने स्वयं अपने हाथ से रूमाल पर अपना नाम लिख दिया था।

शान्ता ने अपने हाथ की अँगूठी, जिस पर शान्ता लिखा था, अपनी उँगली से निकालकर रमेश बाबू की कनकी उँगली में पहना दी और दोनों एक शब्द भी मुख से नहीं बोले। इसके पश्चात् काफी दूर तक रमेश बाबू शान्ता को छोड़ने गए और फिर ताँगे में बिठला कर बोले, "अच्छा शान्ता ! नमस्कार ! यदि भगवान् ने चाहा तो फिर मिलेंगे।"

ताँगा चल पड़ा और शान्ता को दो बार आँखों से टपकते हुए अश्रुओं को उसी रूमाल में बटोरते हुए रमेश बाबू ने देखा। रमेश बाबू भी उस दिन अपने अश्रु-प्रवाह को न रोक सके। रमेश बाबू एक पत्थर की चट्टान के समान सख्त आदमी थे, परन्तु आज के इस विछोह पर वह भी व्याकुल होकर द्रवित हो उठे। हृदय में एक पीड़ा का अनुभव किया और अनुभव किया कि वह जीवन अब एकाकी हो गया, आश्रय विहीन, ममता विहीन, करुणा विहीन और अन्त में साथी विहीन।

शान्ता की आँखें खुलीं तो वह पलंग पर अकेली लेटी हुई थी। द्वार खुले पड़े थे और चारों ओर अन्धकार छा चुका था। पहाड़ी नौकर ने अन्दर आकर बत्ती जलाते हुए कहा, "अरे ! बीबीजी ! आप यहाँ सो रही थीं ! मैं तो समझ रहा था कि आप उन्हीं के साथ कहीं घूमने चली गईं जो सन्ध्या को आई थीं। खाना तैयार है, यदि आज्ञा हो तो ले आऊँ।"

"अभी नहीं।" आँखें मलते हुए शान्ता ने कहा।

"और हाँ एक बात तो मैं आपसे कहनी भूल ही गया था। आपके आने से पूर्व वे दोनों भी आए थे।" संकेत से पहाड़ी नौकर ने कहा।

"वे दोनों कौन रे ? कमला और······"

"हाँ बीबीजी।" पहाड़ी बोल उठा। "बेचारे दो दिन के भूखे थे। मैंने उन्हें बिठलाकर खाना खिला दिया।"

पहाड़ी की बातें सुनकर शान्ता दंग रह गई और अन्त में मुस्कराकर बोली, "तुमने बहुत अच्छा किया।" फिर करवट लेकर एक अँगड़ाई ली और तुरन्त ही पलंग से खड़ी भी हो गई।

घर से बाहर सन्नाटा था। सड़क पर म्यूनिसिपल बोर्ड की बत्तियाँ जल गई थीं और उनका प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। शान्ता घर से निकल कर बाहर सड़क पर आ गई और अपने मस्तिष्क की दशा को ठीक करने लगी। बाहर हवा चल रही थी और शान्ता के अपने मकान में खड़ी हुई रात की रानी बहुत जोर से महक रही थी। उसकी सुगन्धि हवा में मिलकर चारों दिशाओं को भर रही थी। इन मकानों के सामने वाली छोटी-सी सड़क यह बिलकुल एकान्त में थी, मानों घूमने के ही लिए बनी थी; क्योंकि इस पर कभी भीड़ नहीं हो सकती थी। आगे जाकर यह

सड़क बन्द हो जाती थी और इसका सम्बन्ध केवल इस पंक्ति के पाँच मकानों से ही था।

शान्ता ने इधर-से-उधर तक चार-पाँच चक्कर लगाए और फिर वह अपने घर में चली गई।

३०

रमा को रमेश बाबू का अभाव बहुत खला। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो मंसूरी में अब उसका कोई परिचित ही नहीं रहा। टेनिस खेलने जाना छूट गया, बिलियर्ड रूम में जाना समाप्त हो गया, स्केटिंग और सिनेमा घरों को तो रमा के दर्शन भी दुर्लभ हो गए। सन्ध्या समय शानदार रेस्टोरेण्टों में आने वाले मन चले नौ-जवानों की आँखें प्यासी तरसने लगीं रमा के दर्शन न करके।

अभी पिछले ही दिन कुछ युवक एक रेस्टोरेण्ट में बैठे बातें कर रहे थे, 'विचित्र आकर्षण था उसमें। एक अनुपम सौन्दर्य और यौवन की मादकता थी।'

"सचमुच उसकी चाल में किसी को भी अपनी ओर खींच लेने की क्षमता थी।" दूसरे ने कहा।

"आजकल वह कहीं नजर ही नहीं पड़ती। शायद वे लोग मंसूरी छोड़कर अपने देश चले गए।" तीसरा तनिक और आगे बढ़कर बोला।

"हो सकता है।" चौथे ने कहा।

और फिर इधर-उधर की बातें छिड़ गईं क्योंकि होटलों में लड़कियों की कोई विशेष कमी नहीं रहती।

रमा को अब घर से बाहर जाना अच्छा नहीं लगता था। अपने पिताजी के साथ वह बहुत जिद करने पर कभी-कभी घूमने चली जाती थी, वह भी मौन, रास्ते भर एक शब्द भी बिना बोले। कभी जब पिताजी पूछ ही बैठते थे, "बेटी ! रमेश बाबू ने कोई पत्र नहीं लिखा वहाँ जाकर ?" तो साधारण-सा उत्तर दे देती थी "किसी काम में फँस गए होंगे। काम पर जाकर आदमी को वैसा अवकाश कहाँ मिलता है जैसा यहाँ था।" इसके उत्तर में डॉक्टर साहब फिर कहते, "ठीक है बिटिया ! तुम देखती नहीं थी कि मेरा हर दम मरीजों के मारे बरेली में नाक में दम रहता था।" और फिर दोनों मौन घूमते हुए आगे निकल जाते।

शान्ता ने अपने हाथ की अँगूठी, जिस पर शान्ता लिखा था, अपनी उँगली से निकालकर रमेश बाबू की कनकी उँगली में पहना दी और दोनों एक शब्द भी मुख से नहीं बोले। इसके पश्चात् काफी दूर तक रमेश बाबू शान्ता को छोड़ने गए और फिर ताँगे में बिठला कर बोले, "अच्छा शान्ता! नमस्कार! यदि भगवान् ने चाहा तो फिर मिलेंगे।"

ताँगा चल पड़ा और शान्ता को दो बार आँखों से टपकते हुए अश्रुओं को उसी रूमाल में बटोरते हुए रमेश बाबू ने देखा। रमेश बाबू भी उस दिन अपने अश्रु-प्रवाह को न रोक सके। रमेश बाबू एक पत्थर की चट्टान के समान सख्त आदमी थे, परन्तु आज के इस विछोह पर वह भी व्याकुल होकर द्रवित हो उठे। हृदय में एक पीड़ा का अनुभव किया और अनुभव किया कि वह जीवन अब एकाकी हो गया, आश्रय विहीन, ममता विहीन, करुणा विहीन और अन्त में साथी विहीन।

शान्ता की आँखें खुलीं तो वह पलंग पर अकेली लेटी हुई थी। द्वार खुले पड़े थे और चारों ओर अन्धकार छा चुका था। पहाड़ी नौकर ने अन्दर आकर बत्ती जलाते हुए कहा, "अरे! बीबीजी! आप यहाँ सो रही थीं! मैं तो समझ रहा था कि आप उन्हीं के साथ कहीं घूमने चली गईं जो सन्ध्या को आई थीं। खाना तैयार है, यदि आज्ञा हो तो ले आऊँ।"

"अभी नहीं।" आँखें मलते हुए शान्ता ने कहा।

"और हाँ एक बात तो मैं आपसे कहनी भूल ही गया था। आपके आने से पूर्व वे दोनों भी आए थे।" संकेत से पहाड़ी नौकर ने कहा।

"वे दोनों कौन रे? कमला और......"

"हाँ बीबीजी।" पहाड़ी बोल उठा। "बेचारे दो दिन के भूखे थे। मैंने उन्हें बिठलाकर खाना खिला दिया।"

पहाड़ी की बातें सुनकर शान्ता दंग रह गई और अन्त में मुस्कराकर बोली, "तुमने बहुत अच्छा किया।" फिर करवट लेकर एक अँगड़ाई ली और तुरन्त ही पलंग से खड़ी भी हो गई।

घर से बाहर सन्नाटा था। सड़क पर म्यूनिसिपल बोर्ड की बत्तियाँ जल गई थीं और उनका प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। शान्ता घर से निकल कर बाहर सड़क पर आ गई और अपने मस्तिष्क की दशा को ठीक करने लगी। बाहर हवा चल रही थी और शान्ता के अपने मकान में खड़ी हुई रात की रानी बहुत जोर से महक रही थी। उसकी सुगन्धि हवा में मिलकर चारों दिशाओं को भर रही थी। इन मकानों के सामने वाली छोटी-सी सड़क यह बिलकुल एकान्त में थी, मानों घूमने के ही लिए बनी थी; क्योंकि इस पर कभी भीड़ नहीं हो सकती थी। आगे जाकर यह

सड़क बन्द हो जाती थी और इसका सम्बन्ध केवल इस पंक्ति के पाँच मकानों से ही था।

शान्ता ने इधर-से-उधर तक चार-पाँच चक्कर लगाए और फिर वह अपने घर में चली गई।

३०

रमा को रमेश बाबू का अभाव बहुत खला। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो मंसूरी में अब उसका कोई परिचित ही नहीं रहा। टेनिस खेलने जाना छूट गया, बिलियर्ड रूम में जाना समाप्त हो गया, स्केटिंग और सिनेमा घरों को तो रमा के दर्शन भी दुर्लभ हो गए। सन्ध्या समय शानदार रेस्टोरेण्टों में आने वाले मन चले नौ-जवानों की आँखें प्यासी तरसने लगीं रमा के दर्शन न करके।

अभी पिछले ही दिन कुछ युवक एक रेस्टोरेण्ट में बैठे बातें कर रहे थे, 'विचित्र आकर्षण था उसमें। एक अनुपम सौन्दर्य और यौवन की मादकता थी।'

"सचमुच उसकी चाल में किसी को भी अपनी ओर खींच लेने की क्षमता थी।" दूसरे ने कहा।

"आजकल वह कहीं नजर ही नहीं पड़ती। शायद वे लोग मंसूरी छोड़कर अपने देश चले गए।" तीसरा तनिक और आगे बढ़कर बोला।

"हो सकता है।" चौथे ने कहा।

और फिर इधर-उधर की बातें छिड़ गईं क्योंकि होटलों में लड़कियों की कोई विशेष कमी नहीं रहती।

रमा को अब घर से बाहर जाना अच्छा नहीं लगता था। अपने पिताजी के साथ वह बहुत जिद करने पर कभी-कभी घूमने चली जाती थी, वह भी मौन, रास्ते भर एक शब्द भी बिना बोले। कभी जब पिताजी पूछ ही बैठते थे, "बेटी! रमेश बाबू ने कोई पत्र नहीं लिखा वहाँ जाकर?" तो साधारण-सा उत्तर दे देती थी "किसी काम में फँस गए होंगे। काम पर जाकर आदमी को वैसा अवकाश कहाँ मिलता है जैसा यहाँ था।" इसके उत्तर में डॉक्टर साहब फिर कहते, "ठीक है बिटिया! तुम देखती नहीं थी कि मेरा हर दम मरीजों के मारे बरेली में नाक में दम रहता था।" और फिर दोनों मौन घूमते हुए आगे निकल जाते।

इसी प्रकार रमा का जीवन चल रहा था। किसी प्रकार धीमे-धीमे मन को मारकर वह रह रही थी। जीवन में न उत्साह ही था और न वह पुराना ताजापन। यौवन की मस्ती ऐसी खो गई थी कि मानो ताजे उगे हुए लहलहाते खेत को पाला मार गया हो। उभार कायम था परन्तु उस उभार में जवानी की मस्ती और मदहोशी का जीवन नहीं था। फिर था क्या ? कुछ नहीं। रमा एक मिट्टी का पुतला थी जिसे कलाकार ने खूब बनाया था, दर्शक केवल उसे देखकर यही कह सकता था।

आज रमा बड़ी ही बेचैनी से डाकिए की प्रतीक्षा कर रही थी और डाकिया आया भी, पत्र भी लाया, वह पत्र भी रमेश बाबू का था और था भी उसके ही नाम, परन्तु उस पत्र को खोलकर रमा को बहुत निराशा हुई और अन्त में किसी प्रकार मुस्कुराकर रमा ने उसे मेज के किनारे पर रख दिया और स्वयं शान्ति के साथ पलंग पर लेट गई। रमा को इस समय केवल यही तसल्ली थी "कि चलो उन्हें हमारी याद तो है।"

पत्र में लिखा था—

रमा

हड़ताल समाप्त हो गई।

पिताजी को नमस्ते।

—रमेश

पत्र क्या था, तार था और तार से भी कुछ अधिक ही कहा जाए तो अच्छा रहे। यह भी नहीं कि उसमें 'प्रिय रमा' ही लिख दिया होता या अन्त में केवल इतना ही लिखा होता कि 'तुम्हारा रमेश'। किस की रमा और किसके रमेश बाबू ? रमा ने समझ लिया कि उसने यह एक स्वप्न देखा था। कोई स्वप्न एक रात्रि की नींद में समाप्त हो जाता है, यह तीन महीने में समाप्त हुआ। कोई स्वप्न जीवन भर साथ देता है परन्तु होता सब कुछ स्वप्न ही है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

रमा ने एक बार पत्र को फिर उठाया, उलट-पलटकर देखा, किनारा रगड़कर देखा कि कहीं इसकी पीठ पर तो कुछ और नहीं लिखा है। कहीं यह पत्र दुहरा होकर चिपक तो नहीं गया है, परन्तु नहीं, कुछ नहीं, वही सब कुछ था, केवल उतना ही पत्र रमेश बाबू ने लिखा था। पहले तो रमा कुछ नहीं समझ सकी, परन्तु वह इतनी चतुर थी कि संसार की प्रत्येक वस्तु को वह अपने लिए समझती थी और इसलिए उसने उस पत्र का अर्थ अपने ही रूप में लगाने का प्रयत्न किया। बहुत सुगमता के साथ उसे उस पत्र को इस प्रकार का होने का कारण मिल गया। रमा काफी देर तक रमेश बाबू के पत्र को हाथ में लेकर बार-बार पढ़ती रही।

रमेश बाबू ने न 'प्रिय-रमा' लिखा और न 'तुम्हारा-रमेश' ही। यह सब क्यों ? क्योंकि वह अपनी रमा को पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता देना चाहता थे कि वह अपने रमेश बाबू को जो कुछ भी अपना समझना चाहे बिना संकोच के समझ सके। वह जो कुछ भी रमा को समझ चुके हैं वह हृदय की वस्तु है पत्र में लिखने की वस्तु नहीं। रमा को इस पत्र में से रमेश बाबू के महान् होने की सूचना प्राप्त हुई और उसने एक क्षण के लिए आँखें मींचकर रमेश बाबू का ध्यान किया।

रात्रि में नित्य की भाँति जब पिताजी ने पूछा कि क्या रमेश बाबू का कोई पत्र आया तो रमा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "आया है पिता जी ! और उसमें आपके लिए उन्होंने प्रणाम लिखा है।"

"ओह ! मेरे लिए ! अच्छा भाई प्रणाम रमेश बाबू ! तुम यशस्वी हो। लड़का बड़ा ही होनहार और बहुत समझदार है। जब बातें करता है तो मानो मुँह से फूल झड़ते हैं। हर समय हँस मुख, मैंने कभी उसे गम्भीर अथवा उतरे हुए चेहरे से नहीं देखा। क्यों बेटी ? तुम्हारा क्या विचार है ?" रमा के पिताजी ने अपनी छोटी गोल मेज के पास पड़ी आराम कुर्सी की पीठ से कमर लगाते हुए कहा।

"ठीक है पिताजी ! परन्तु आप उनके नाटकीय ढंग को देखकर शायद यह अनुमान कर गए कि वह हर समय प्रसन्न रहते हैं !" रमा ने अपने पिताजी से कहा।

"मेरा तो यही विचार है बेटी !" साधारणतया डॉक्टर साहब ने कहा। डॉक्टर साहब वास्तव में बहुत ही सीधे सादे धार्मिक वृत्तियों के पुराने चलन के व्यक्ति थे। जो कहना वही करना और जो करना वही समझते थे। जो बात जैसी कही जा रही है उसमें व्यंग्य खोजकर दूसरा अर्थ निकालने का उन्होंने जीवन में कभी प्रयत्न नहीं किया। उनका जीवन एक सरल जीवन रहा और उसी के शीशे में वह संसार को देखने का प्रयत्न करते थे। परन्तु रमा एक वर्तमान काल के कालेज में पढ़ी हुई योग्य, चतुर लड़की थी। जिसे समाज तथा देश, राजनीति तथा धर्म सभी का थोड़ा बहुत ज्ञान था। वह वर्तमान प्रगतिवाद पर भी पत्रों में लेख पढ़ती थी और क्रिकेट के मैच देखने का भी उसे शौक था। सिनेमा से भी प्रेम था और ड्रामाघरों को भी कृतार्थ करती थी। चतुर होने के नाते हर दिशा में अपना कुछ-न-कुछ दखल रमा रखती थी। कभी स्टेज पर जाकर यदि कुछ बोलना भी पड़े तब भी वह इस कार्य के लिए चतुर थी क्योंकि उसने अपने कालेज-काल में कई बार वाक्-संघर्षों में पारितोषिक प्राप्त किए थे।

"आपका विचार गलत है पिताजी ! रमेश बाबू के विषय में एक सबसे बड़ी बात यह है कि उनका मुख देखकर कोई यह नहीं बतला सकता कि उनके दिल में क्या है। जिस समय आप उनके मुख पर शान्ति का साम्राज्य देख रहे हों उस समय हो सकता है कि उनके हृदय में बड़वानल सुलग रही हो। जिस समय आप उनके नेत्रों में मुस्कान

इसी प्रकार रमा का जीवन चल रहा था। किसी प्रकार धीमे-धीमे मन को मारकर वह रह रही थी। जीवन में न उत्साह ही था और न वह पुराना ताजापन। यौवन की मस्ती ऐसी खो गई थी कि मानो ताजे उगे हुए लहलहाते खेत को पाला मार गया हो। उभार कायम था परन्तु उस उभार में जवानी की मस्ती और मदहोशी का जीवन नहीं था। फिर था क्या ? कुछ नहीं। रमा एक मिट्टी का पुतला थी जिसे कलाकार ने खूब बनाया था, दर्शक केवल उसे देखकर यही कह सकता था।

आज रमा बड़ी ही बेचैनी से डाकिए की प्रतीक्षा कर रही थी और डाकिया आया भी, पत्र भी लाया, वह पत्र भी रमेश बाबू का था और था भी उसके ही नाम, परन्तु उस पत्र को खोलकर रमा को बहुत निराशा हुई और अन्त में किसी प्रकार मुस्कुराकर रमा ने उसे मेज के किनारे पर रख दिया और स्वयं शान्ति के साथ पलंग पर लेट गई। रमा को इस समय केवल यही तसल्ली थी "कि चलो उन्हें हमारी याद तो है।"

पत्र में लिखा था—

रमा
हड़ताल समाप्त हो गई।
पिताजी को नमस्ते।
—रमेश

पत्र क्या था, तार था और तार से भी कुछ अधिक ही कहा जाए तो अच्छा रहे। यह भी नहीं कि उसमें 'प्रिय रमा' ही लिख दिया होता या अन्त में केवल इतना ही लिखा होता कि 'तुम्हारा रमेश'। किस की रमा और किसके रमेश बाबू ? रमा ने समझ लिया कि उसने यह एक स्वप्न देखा था। कोई स्वप्न एक रात्रि की नींद में समाप्त हो जाता है, यह तीन महीने में समाप्त हुआ। कोई स्वप्न जीवन भर साथ देता है परन्तु होता सब कुछ स्वप्न ही है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

रमा ने एक बार पत्र को फिर उठाया, उलट-पलटकर देखा, किनारा रगड़कर देखा कि कहीं इसकी पीठ पर तो कुछ और नहीं लिखा है। कहीं यह पत्र दुहरा होकर चिपक तो नहीं गया है, परन्तु नहीं, कुछ नहीं, वही सब कुछ था, केवल उतना ही पत्र रमेश बाबू ने लिखा था। पहले तो रमा कुछ नहीं समझ सकी, परन्तु वह इतनी चतुर थी कि संसार की प्रत्येक वस्तु को वह अपने लिए समझती थी और इसलिए उसने उस पत्र का अर्थ अपने ही रूप में लगाने का प्रयत्न किया। बहुत सुगमता के साथ उसे उस पत्र को इस प्रकार का होने का कारण मिल गया। रमा काफी देर तक रमेश बाबू के पत्र को हाथ में लेकर बार-बार पढ़ती रही।

रमेश बाबू ने न 'प्रिय-रमा' लिखा और न 'तुम्हारा-रमेश' ही। यह सब क्यों ? क्योंकि वह अपनी रमा को पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता देना चाहता थे कि वह अपने रमेश बाबू को जो कुछ भी अपना समझना चाहे बिना संकोच के समझ सके। वह जो कुछ भी रमा को समझ चुके हैं वह हृदय की वस्तु है पत्र में लिखने की वस्तु नहीं। रमा को इस पत्र में से रमेश बाबू के महान् होने की सूचना प्राप्त हुई और उसने एक क्षण के लिए आँखें मींचकर रमेश बाबू का ध्यान किया।

रात्रि में नित्य की भाँति जब पिताजी ने पूछा कि क्या रमेश बाबू का कोई पत्र आया तो रमा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, "आया है पिता जी ! और उसमें आपके लिए उन्होंने प्रणाम लिखा है।"

"ओह ! मेरे लिए ! अच्छा भाई प्रणाम रमेश बाबू ! तुम यशस्वी हो। लड़का बड़ा ही होनहार और बहुत समझदार है। जब बातें करता है तो मानो मुँह से फूल झड़ते हैं। हर समय हँस मुख, मैंने कभी उसे गम्भीर अथवा उतरे हुए चेहरे से नहीं देखा। क्यों बेटी ? तुम्हारा क्या विचार है ?" रमा के पिताजी ने अपनी छोटी गोल मेज के पास पड़ी आराम कुर्सी की पीठ से कमर लगाते हुए कहा।

"ठीक है पिताजी ! परन्तु आप उनके नाटकीय ढंग को देखकर शायद यह अनुमान कर गए कि वह हर समय प्रसन्न रहते हैं !" रमा ने अपने पिताजी से कहा।

"मेरा तो यही विचार है बेटी !" साधारणतया डॉक्टर साहब ने कहा। डॉक्टर साहब वास्तव में बहुत ही सीधे सादे धार्मिक वृत्तियों के पुराने चलन के व्यक्ति थे। जो कहना वही करना और जो करना वही समझते थे। जो बात जैसी कही जा रही है उसमें व्यंग्य खोजकर दूसरा अर्थ निकालने का उन्होंने जीवन में कभी प्रयत्न नहीं किया। उनका जीवन एक सरल जीवन रहा और उसी के शीशे में वह संसार को देखने का प्रयत्न करते थे। परन्तु रमा एक वर्तमान काल के कालेज में पढ़ी हुई योग्य, चतुर लड़की थी। जिसे समाज तथा देश, राजनीति तथा धर्म सभी का थोड़ा बहुत ज्ञान था। वह वर्तमान प्रगतिवाद पर भी पत्रों में लेख पढ़ती थी और क्रिकेट के मैच देखने का भी उसे शौक था। सिनेमा से भी प्रेम था और ड्रामाघरों को भी कृतार्थ करती थी। चतुर होने के नाते हर दिशा में अपना कुछ-न-कुछ दखल रमा रखती थी। कभी स्टेज पर जाकर यदि कुछ बोलना भी पड़े तब भी वह इस कार्य के लिए चतुर थी क्योंकि उसने अपने कालेज-काल में कई बार वाक्-संघर्षों में पारितोषिक प्राप्त किए थे।

"आपका विचार गलत है पिताजी ! रमेश बाबू के विषय में एक सबसे बड़ी बात यह है कि उनका मुख देखकर कोई यह नहीं बतला सकता कि उनके दिल में क्या है। जिस समय आप उनके मुख पर शान्ति का साम्राज्य देख रहे हों उस समय हो सकता है कि उनके हृदय में बड़वानल सुलग रही हो। जिस समय आप उनके नेत्रों में मुस्कान

झाँक रहे हों उस समय हो सकता है कि उनके नेत्रों में किसी को भस्म करने की ज्वाला दहक रही हो। जिस समय आप उनके नेत्रों में अश्रुधारा देखें तो हो सकता है कि उनके हृदय में आनन्द का स्रोत उवल रहा हो। बस यह समझ लीजिए पिताजी! कि उनको समझना बहुत कठिन है, मैं समझने का प्रयत्न करने पर भी उन्हें इतने दिनों में कुछ नहीं समझ पाई।" गम्भीरतापूर्वक रमा ने कहा।

"हाँ हाँ यही तो मैं भी कह रहा हूँ बिटिया! वह बहुत चतुर है, बड़ा योग्य है। मैंने कुछ बुरा तो नहीं कहा उसके लिए।" पिताजी बोले।

पिताजी का यह वाक्य सुनकर रमा लजा गई और उसे यह अनुभव हुआ कि वह भावुकता में आकर पिताजी के सम्मुख रमेश बाबू की प्रशंसा कर गई। रमा का लज्जा के कारण मुख लाल होकर नीचे को झुक गया और वह वहाँ से उठकर सीधी अपने कमरे में चली गई।

आज रात्रि भर रमा को चैन नहीं आई और वह तुरन्त ही अगले दिन पिताजी से आज्ञा लेकर देहली के लिए रवाना हो गई। पिता के लाड़-प्यार की पली यह बेटी थी, जिसकी स्वतन्त्रता में कोई किसी प्रकार का प्रतिवन्ध पिता ने कभी नहीं लगाया था। रमा की माता की मृत्यु उसी समय हो गई थी, जब इसकी आयु केवल तीन वर्ष की थी। तीन वर्ष के पश्चात् उसे जिस आया ने पाला था, वही इस समय भी उनके घर में रहती थी।

सायंकाल तीन बजे गाड़ी देहली के स्टेशन पर पहुँची तो रमा ने अपना विस्तरा कुली से उठवाया और सीधी प्लेटफार्म से बाहर निकली। रमेश बाबू का पता उसके पास था। इसलिए बाहर आते ही रमा ने एक टैक्सी ली और 'इन्सान-कार्यालय' काश्मीरी गेट चलने के लिए आज्ञा दी। 'इन्सान-कार्यालय' काश्मीरी गेट का एक प्रसिद्ध स्थान था, इसलिए टैक्सी ड्राइवर ने चन्द मिनटों में उसे लाकर 'इन्सान-कार्यालय' के सामने खड़ा कर दिया।

गाड़ी ने जिस समय पोर्टिको के अन्दर आकर हार्न दिया तो नौकर निकलकर बाहर आ गया। रमा ने कार से उतरकर उस नौकर से पूछा, "रमेश बाबू अन्दर हैं?"

नौकर ने फिर इसके उत्तर में पूछा, "कौन से बाबू को कहती हैं सरकार! क्या बड़े बाबू को?" और इसके उत्तर में साधारणतया रमा ने कहा "हाँ बड़े बाबू को।"

तो नौकर ने कहा "जी अन्दर हैं।" यह जानकर रमा ने अपना कार्ड नौकर को दिया तो रमेश बाबू बड़ी ही उत्सुकता से अपनी लांग सँवारते हुए एकदम बिना चश्मा सँभाले ही बाहर दौड़े चले आए। नंगे वदन इस प्रकार बाहर चला आना रमेश बाबू की एक असाधारण घटना थी जिसे रमा ने भी अनुभव किया और विशेष रूप से

अनुभव किया रशीदा बहन और अमरनाथजी ने। सब-के-सब भावुकता से बाहर निकल आए और रमा को सम्मानपूर्वक अन्दर लिवा कर ले गए।

अन्दर आकर सब लोग ड्राइंग रूम में बैठ गए। रमेश बाबू के ड्राइंग रूम में केवल एक चित्र लगा हुआ था बहुत ऊँचे स्थान पर जो हर समय ढका रहता था। किसी का वहाँ इतना साहस नहीं था जो उस चित्र को खोल कर देख सके। खद्दर के कवर वाली छः सोफे की कुर्सियाँ थीं और बीच में गोल मेज पड़ी थी। एक तरफ एक चौकी बिछी थी, जिस पर एक खद्दर की चादर और ऊपर चटाई बिछी थी। रमेश बाबू इसी पर बैठते थे और इनके सोने का स्थान भी यही था। रमा को रमेश बाबू ने प्यार और मान के साथ अन्दर ले जाकर अपने उसी तख्त पर बिठलाया।

वह तख्त रमेश बाबू का अपना स्थान था यह कमरे को देखकर रमा को पहचानने में देर नहीं हुई। किसी को लेजाकर अपने स्थान पर बिठलाना यह रशीदा और अमरनाथजी ने प्रथम बार ही देखा था अपने जीवन में। रमा ने बैठते ही कहना प्रारम्भ कर दिया, "देखो भाई मैं आप लोगों के बीच में एक नई आई हूँ। आपके मन में यह उत्कण्ठा होगी कि आप मेरे विषय में कुछ जानें और मेरे मन में यह उत्कण्ठा है कि मैं आप सबके विषय में कुछ जानूँ। मैंने आप दोनों को पहचान लिया परन्तु आप मेरे विषय में कुछ नहीं जानते। आप मुझे नहीं पहचान सकेंगे। मुझे गत तीन महीने मंसूरी में रमेश बाबू के साथ रहने का अवसर मिला। बस यह मेरा परिचय है।" कह कर मुस्कुराते हुए रमा चुप हो गई। रमा के इतने स्पष्ट शब्द सुनकर अमरनाथजी और रशीदा आश्चर्य चकित से रह गए।

रशीदा और अमरनाथजी कुछ रहस्य को समझ भी गए और कुछ समझ भी न पाए। परन्तु कुछ पूछने का साहस उनका न हुआ और उन्हें आज ही अवसर मिला था रमेश भैया को किसी बराबर वाले के साथ स्नेहपूर्वक बातें करते सुनने का। इस शुभ अवसर को वे दोनों कैसे गँवा सकते थे? दोनों शान्त होकर बैठ गए।

रमेश बाबू ने मुस्कुराकर कहा, "बहुत शीघ्रता की आने में रमा!" और रमा के हाथ को उठाकर उन्होंने अपने हाथ में ले लिया।

"जी हाँ," रमा बोली, "वहाँ दिल नहीं लगा मेरा।" रमा ने आँखें तिरछी करके कहा।

रशीदा और अमरनाथजी मन-ही-मन ये शब्द सुनकर प्रसन्न हो रहे थे कि चलो अच्छा हुआ रमेश भैया को भी दिल की बीमारी लगी।

"वहाँ पिताजी अकेले ही रह गए। उनकी सेवा भला इस वृद्धावस्था में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन करेगा रमा। तुम्हारा कर्तव्य तुम्हें वहाँ रहने के लिए

झाँक रहे हों उस समय हो सकता है कि उनके नेत्रों में किसी को भस्म करने की ज्वाला दहक रही हो। जिस समय आप उनके नेत्रों में अश्रुधारा देखें तो हो सकता है कि उनके हृदय में आनन्द का स्रोत उबल रहा हो। बस यह समझ लीजिए पिताजी ! कि उनको समझना बहुत कठिन है, मैं समझने का प्रयत्न करने पर भी उन्हें इतने दिनों में कुछ नहीं समझ पाई।" गम्भीरतापूर्वक रमा ने कहा।

"हाँ हाँ यही तो मैं भी कह रहा हूँ बिटिया ! वह बहुत चतुर है, बड़ा योग्य है। मैंने कुछ बुरा तो नहीं कहा उसके लिए।" पिताजी बोले।

पिताजी का यह वाक्य सुनकर रमा लजा गई और उसे यह अनुभव हुआ कि वह भावुकता में आकर पिताजी के सम्मुख रमेश बाबू की प्रशंसा कर गई। रमा का लज्जा के कारण मुख लाल होकर नीचे को झुक गया और वह वहाँ से उठकर सीधी अपने कमरे में चली गई।

आज रात्रि भर रमा को चैन नहीं आई और वह तुरन्त ही अगले दिन पिताजी से आज्ञा लेकर देहली के लिए रवाना हो गई। पिता के लाड़-प्यार की पली यह बेटी थी, जिसकी स्वतन्त्रता में कोई किसी प्रकार का प्रतिबन्ध पिता ने कभी नहीं लगाया था। रमा की माता की मृत्यु उसी समय हो गई थी, जब इसकी आयु केवल तीन वर्ष की थी। तीन वर्ष के पश्चात् उसे जिस आया ने पाला था, वही इस समय भी उनके घर में रहती थी।

सायंकाल तीन बजे गाड़ी देहली के स्टेशन पर पहुँची तो रमा ने अपना बिस्तरा कुली से उठवाया और सीधी प्लेटफार्म से बाहर निकली। रमेश बाबू का पता उसके पास था। इसलिए बाहर आते ही रमा ने एक टैक्सी ली और 'इन्सान-कार्यालय' काश्मीरी गेट चलने के लिए आज्ञा दी। 'इन्सान-कार्यालय' काश्मीरी गेट का एक प्रसिद्ध स्थान था, इसलिए टैक्सी ड्राइवर ने चन्द मिनटों में उसे लाकर 'इन्सान-कार्यालय' के सामने खड़ा कर दिया।

गाड़ी ने जिस समय पोर्टिको के अन्दर आकर हार्न दिया तो नौकर निकलकर बाहर आ गया। रमा ने कार से उतरकर उस नौकर से पूछा, "रमेश बाबू अन्दर हैं ?"

नौकर ने फिर इसके उत्तर में पूछा, "कौन से बाबू को कहती हैं सरकार ! क्या बड़े बाबू को ?" और इसके उत्तर में साधारणतया रमा ने कहा "हाँ बड़े बाबू को।"

तो नौकर ने कहा "जी अन्दर हैं।" यह जानकर रमा ने अपना कार्ड नौकर को दिया तो रमेश बाबू बड़ी ही उत्सुकता से अपनी लांग सँवारते हुए एकदम बिना चश्मा सँभाले ही बाहर दौड़े चले आए। नंगे बदन इस प्रकार बाहर चला आना रमेश बाबू की एक असाधारण घटना थी जिसे रमा ने भी अनुभव किया और विशेष रूप से

अनुभव किया रशीदा बहन और अमरनाथजी ने। सब-के-सब भावुकता से बाहर निकल आए और रमा को सम्मानपूर्वक अन्दर लिवा कर ले गए।

अन्दर आकर सब लोग ड्राइंग रूम में बैठ गए। रमेश बाबू के ड्राइंग रूम में केवल एक चित्र लगा हुआ था बहुत ऊँचे स्थान पर जो हर समय ढका रहता था। किसी का वहाँ इतना साहस नहीं था जो उस चित्र को खोल कर देख सके। खद्दर के कवर वाली छः सोफे की कुर्सियाँ थीं और बीच में गोल मेज पड़ी थी। एक तरफ एक चौकी बिछी थी, जिस पर एक खद्दर की चादर और ऊपर चटाई बिछी थी। रमेश बाबू इसी पर बैठते थे और इनके सोने का स्थान भी यही था। रमा को रमेश बाबू ने प्यार और मान के साथ अन्दर ले जाकर अपने उसी तख्त पर बिठलाया।

वह तख्त रमेश बाबू का अपना स्थान था यह कमरे को देखकर रमा को पहचानने में देर नहीं हुई। किसी को लेजाकर अपने स्थान पर बिठलाना यह रशीदा और अमरनाथजी ने प्रथम बार ही देखा था अपने जीवन में। रमा ने बैठते ही कहना प्रारम्भ कर दिया, "देखो भाई मैं आप लोगों के बीच में एक नई आई हूँ। आपके मन में यह उत्कण्ठा होगी कि आप मेरे विषय में कुछ जानें और मेरे मन में यह उत्कण्ठा है कि मैं आप सबके विषय में कुछ जानूँ। मैंने आप दोनों को पहचान लिया परन्तु आप मेरे विषय में कुछ नहीं जानते। आप मुझे नहीं पहचान सकेंगे। मुझे गत तीन महीने मंसूरी में रमेश बाबू के साथ रहने का अवसर मिला। बस यह मेरा परिचय है।" कह कर मुस्कुराते हुए रमा चुप हो गई। रमा के इतने स्पष्ट शब्द सुनकर अमरनाथजी और रशीदा आश्चर्य चकित से रह गए।

रशीदा और अमरनाथजी कुछ रहस्य को समझ भी गए और कुछ समझ भी न पाए। परन्तु कुछ पूछने का साहस उनका न हुआ और उन्हें आज ही अवसर मिला था रमेश भैया को किसी बराबर वाले के साथ स्नेहपूर्वक बातें करते सुनने का। इस शुभ अवसर को वे दोनों कैसे गँवा सकते थे ? दोनों शान्त होकर बैठ गए।

रमेश बाबू ने मुस्कुराकर कहा, "बहुत शीघ्रता की आने में रमा !" और रमा के हाथ को उठाकर उन्होंने अपने हाथ में ले लिया।

"जी हाँ," रमा बोली, "वहाँ दिल नहीं लगा मेरा।" रमा ने आँखें तिरछी करके कहा।

रशीदा और अमरनाथजी मन-ही-मन ये शब्द सुनकर प्रसन्न हो रहे थे कि चलो अच्छा हुआ रमेश भैया को भी दिल की बीमारी लगी।

"वहाँ पिताजी अकेले ही रह गए। उनकी सेवा भला इस वृद्धावस्था में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन करेगा रमा। तुम्हारा कर्तव्य तुम्हें वहाँ रहने के लिए

कहता है, केवल इसीलिए मैं तुम्हे अपने साथ न ला सका था। संसार में कर्तव्य सबसे प्रधान वस्तु है रमा ! यह याद रखो और कर्तव्य से गिरा हुआ मनुष्य, मनुष्य नहीं रहता।" रमेश बाबू बोले।

रमा को जैसे लगा कि वह रमेश बाबू के जीवन में माया-जाल बिछा कर नहीं आ सकती, त्याग करके आ सकती है। रमेश बाबू के हृदय में कर्तव्य का स्थान प्रथम है। रमा को लगा कि उसका इस प्रकार भावुकतावश वहाँ चला आना उसकी भूल हुई। तब क्या उसे उसी समय वापस लौट जाना चाहिए ? रमा एक बार मन-ही-मन तिलमिला उठी, परन्तु उसने तुरन्त अपने मन को सम्भाला और बोली, "आप कुछ भी कहिए, मैं अब चली आई, यदि कहें तो इसी समय वापस लौट जाऊँ !" गम्भीरतापूर्वक रमा बोली।

"तुम बड़ी विचित्र लड़की हो रमा ! जीवन में आने वाली अपने प्रकार की प्रथम हो तुम। मैं चाहे कुछ भी कहूँ तुम उसमें से अपना अर्थ निकाल लेती हो।" मुस्कुराकर रमेश बाबू ने कहा और रमा भी मुस्कुरा दी।

"आपकी हड़ताल वाली सफलता पर आपको धन्यवाद देती हूँ।" रमा ने फिर मुस्कुराते हुए कहा।

"इसमें धन्यवाद की मैं कोई बात नहीं समझता रमा ! क्योंकि कुछ मेरे अपने ही आदमी भाग्यवश भ्रम में पड़ गए थे। उनका भ्रम दूर हो गया और हड़ताल समाप्त हो गई।" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू ने कहा।

"तब क्या वे ही कारीगर काम कर रहे हैं ?" रमा ने पूछा।

"हाँ सब वे ही, केवल दो को निकालना पड़ा। वे लोग कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गए थे और उपद्रव की जड़ थे। एक् उपद्रव की जड़ को मेरे आने से पूर्व ही रशीदा बहन निकाल चुकी थीं।" रमेश बाबू ने कहा।

"चलिए बहुत सुन्दर रहा, कार्य सुगमता से समाप्त हो गया।" रमा बोली।

"सुगमता से तो नहीं होता दिखलाई देता, परन्तु हम भरसक प्रयत्न अवश्य करेंगे कि कार्य सुगमता से होता चला जाए।"

फिर रमेश बाबू कह उठे "चलो अच्छा ही हुआ आज तुम आ गईं रमा ! क्योंकि जब मैं किसी के यहाँ खाना खाने जाता हूँ तो मुझे सँभालने के लिए एक अन्य व्यक्ति की आवश्यकता रहती है। पहले रशीदा मेरी देखभाल कर लेती थी परन्तु आज मैं सोच रहा था कि कौन करेगी ; सो तुम आ गईं।"

"क्यों मैं क्या कहीं चली गई हूँ भैया ! जो इस प्रकार कह रहे हो ?" रशीदा ने मुँह बनाकर कहा।

रशीदा का मुँह देखकर रमा मुस्कुरा दी और रशीदा के पास जाकर सोफे पर

बैठते हुए उसके गले में स्नेहपूर्वक अपना हाथ डाल दिया।

रमेश बाबू कहने लगे "नहीं कुछ नहीं, रशीदा कुछ भी तो नहीं। तू व्यर्थ बिगड़ जाती है।" लजाकर रशीदा चुप हो गई और रमेश बाबू प्रेम से मुस्कुरा दिए।

रमेश बाबू फिर कहने लगे, "अभी हम लोग एक दावत में चलेंगे। अच्छा हुआ तुम सँभाले रहोगी, क्योंकि तुमने व्यवस्था करनी मुझे सिखलाई है। कहीं वहाँ जाकर मेरा उपहास न हो। अमरनाथजी की बहन ने दावत दी है आज।"

"ओह तब तो घर ही में दावत है।" रमा ने मुस्कुराकर कहा और फिर रमेश बाबू के मुख पर देख कर प्रसन्नता से खिल उठी।

एक आनन्द का वातावरण छा गया। दावत की प्रसन्नता रमेश बाबू, रमा, रशीदा और अमरनाथजी के हृदय में समान रूप से थी।

रशीदा दावत से तीन घण्टे पूर्व ही शान्ता के घर जा चुकी थी, जैसा कि रमेश बाबू जानते थे। रमेश बाबू को यह पता नहीं था कि वह शान्ता नाम की कोई स्त्री है जिसे अमरनाथजी जीजी कहते हैं।

समय से पाँच मिनट पूर्व कार में बैठकर तीनों व्यक्ति शान्ता के मकान पर पहुँच गए। द्वार पर रशीदा ने ही आकर उनका स्वागत किया और वह उन्हें बैठक में ले आई। तीनों को ले जाकर तीन आराम कुर्सियों पर बिठला दिया। कमरा साधारण ही था, परन्तु साफ-सुथरा। तीन कुर्सियाँ पड़ी थीं और एक कोने में हैडमिस्ट्रेस के काम करने की सुन्दर-सी छोटी मेज थी। रंग, रोगन, सफाई के विचार से जब रमेश बाबू ने इस कमर को देखा तो उन्हें अपना वह ड्राइङ्गरूम, जिसमें सोफा सेट पड़े थे, इस बैठक के सामने तुच्छ प्रतीत हुआ। रमा और अमरनाथजी बैठ गए, परन्तु रमेश बाबू अभी खड़े हुए कमरे को चारों तरफ से देख रहे थे।

रमेश बाबू धीरे-धीरे कमरे के एक किनारे से दूसरे किनारे तक न जाने क्या सोचते हुए गए और फिर वापस लौट आए और सिर को पकड़कर बैठ गए। शान्ता ने अन्दर से देख लिया था कि यह रमेश बाबू कोई अन्य नहीं उसके अपने वही रमेश बाबू हैं जिनके......बस वह आगे कुछ विचार न कर सकी।

शान्ता ने एक विशेष प्रकार के रसगुल्ले बनाए थे जैसे कि दिल्ली में नहीं बनते थे और जिन्हें वह स्वयं बनाया करती थी। रमेश बाबू उन्हें बहुत पसन्द करते थे। शान्ता को विश्वास था कि वैसा रसगुल्ला उससे बिछुड़ने के पश्चात् रमेश बाबू ने नहीं खाया होगा।

खाना लाकर मेज पर सजा दिया गया। रमेश बाबू के हाथ पोंछने को शान्ता ने पृथक् रूमाल दिया और वह सीधे स्वभाव में हाथ धुलवाने के पश्चात् रशीदा ने रमेश बाबू के हाथ में दे दिया। रमेश बाबू ने साधारण रूप से रूमाल हाथों में ले

कहता है, केवल इसीलिए मैं तुम्हे अपने साथ न ला सका था। संसार में कर्तव्य सबसे प्रधान वस्तु है रमा ! यह याद रखो और कर्तव्य से गिरा हुआ मनुष्य, मनुष्य नहीं रहता।" रमेश बाबू बोले।

रमा को जैसे लगा कि वह रमेश बाबू के जीवन में माया-जाल बिछा कर नहीं आ सकती, त्याग करके आ सकती है। रमेश बाबू के हृदय में कर्तव्य का स्थान प्रथम है। रमा को लगा कि उसका इस प्रकार भावुकतावश वहाँ चला आना उसकी भूल हुई। तब क्या उसे उसी समय वापस लौट जाना चाहिए ? रमा एक बार मन-ही-मन तिलमिला उठी, परन्तु उसने तुरन्त अपने मन को सम्भाला और बोली, "आप कुछ भी कहिए, मैं अब चली आई, यदि कहें तो इसी समय वापस लौट जाऊँ !" गम्भीरतापूर्वक रमा बोली।

"तुम बड़ी विचित्र लड़की हो रमा ! जीवन में आने वाली अपने प्रकार की प्रथम हो तुम। मैं चाहे कुछ भी कहूँ तुम उसमें से अपना अर्थ निकाल लेती हो।" मुस्कुराकर रमेश बाबू ने कहा और रमा भी मुस्कुरा दी।

"आपकी हड़ताल वाली सफलता पर आपको धन्यवाद देती हूँ।" रमा ने फिर मुस्कुराते हुए कहा।

"इसमें धन्यवाद की मैं कोई बात नहीं समझता रमा ! क्योंकि कुछ मेरे अपने ही आदमी भाग्यवश भ्रम में पड़ गए थे। उनका भ्रम दूर हो गया और हड़ताल समाप्त हो गई।" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू ने कहा।

"तब क्या वे ही कारीगर काम कर रहे हैं ?" रमा ने पूछा।

"हाँ सब वे ही, केवल दो को निकालना पड़ा। वे लोग कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य बन गए थे और उपद्रव की जड़ थे। एक् उपद्रव की जड़ को मेरे आने से पूर्व ही रशीदा बहन निकाल चुकी थीं।" रमेश बाबू ने कहा।

"चलिए बहुत सुन्दर रहा, कार्य सुगमता से समाप्त हो गया।" रमा बोली।

"सुगमता से तो नहीं होता दिखलाई देता, परन्तु हम भरसक प्रयत्न अवश्य करेंगे कि कार्य सुगमता से होता चला जाए।"

फिर रमेश बाबू कह उठे "चलो अच्छा ही हुआ आज तुम आ गईं रमा ! क्योंकि जब मैं किसी के यहाँ खाना खाने जाता हूँ तो मुझे सँभालने के लिए एक अन्य व्यक्ति की आवश्यकता रहती है। पहले रशीदा मेरी देखभाल कर लेती थी परन्तु आज मैं सोच रहा था कि कौन करेगी ; सो तुम आ गईं।"

"क्यों मैं क्या कहीं चली गई हूँ भैया ! जो इस प्रकार कह रहे हो ?" रशीदा ने मुँह बनाकर कहा।

रशीदा का मुँह देखकर रमा मुस्कुरा दी और रशीदा के पास जाकर सोफे पर

बैठते हुए उसके गले में स्नेहपूर्वक अपना हाथ डाल दिया।

रमेश बाबू कहने लगे "नहीं कुछ नहीं, रशीदा कुछ भी तो नहीं। तू व्यर्थं बिगड़ जाती है।" लजाकर रशीदा चुप हो गई और रमेश बाबू प्रेम से मुस्कुरा दिए।

रमेश बाबू फिर कहने लगे, "अभी हम लोग एक दावत में चलेंगे। अच्छा हुआ तुम सँभाले रहोगी, क्योंकि तुमने व्यवस्था करनी मुझे सिखलाई है। कहीं वहाँ जाकर मेरा उपहास न हो। अमरनाथजी की बहन ने दावत दी है आज।"

"ओह तब तो घर ही में दावत है।" रमा ने मुस्कुराकर कहा और फिर रमेश बाबू के मुख पर देख कर प्रसन्नता से खिल उठी।

एक आनन्द का वातावरण छा गया। दावत की प्रसन्नता रमेश बाबू, रमा, रशीदा और अमरनाथजी के हृदय में समान रूप से थी।

रशीदा दावत से तीन घण्टे पूर्व ही शान्ता के घर जा चुकी थी, जैसा कि रमेश बाबू जानते थे। रमेश बाबू को यह पता नहीं था कि वह शान्ता नाम की कोई स्त्री है जिसे अमरनाथजी जीजी कहते हैं।

समय से पाँच मिनट पूर्व कार में बैठकर तीनों व्यक्ति शान्ता के मकान पर पहुँच गए। द्वार पर रशीदा ने ही आकर उनका स्वागत किया और वह उन्हें बैठक में ले आई। तीनों को ले जाकर तीन आराम कुर्सियों पर बिठला दिया। कमरा साधारण ही था, परन्तु साफ-सुथरा। तीन कुर्सियाँ पड़ी थीं और एक कोने में हैडमिस्ट्रेस के काम करने की सुन्दर-सी छोटी मेज थी। रंग, रोगन, सफाई के विचार से जब रमेश बाबू ने इस कमर को देखा तो उन्हें अपना वह ड्राइङ्गरूम, जिसमें सोफा सेट पड़े थे, इस बैठक के सामने तुच्छ प्रतीत हुआ। रमा और अमरनाथजी बैठ गए, परन्तु रमेश बाबू अभी खड़े हुए कमरे को चारों तरफ से देख रहे थे।

रमेश बाबू धीरे-धीरे कमरे के एक किनारे से दूसरे किनारे तक न जाने क्या सोचते हुए गए और फिर वापस लौट आए और सिर को पकड़कर बैठ गए। शान्ता ने अन्दर से देख लिया था कि यह रमेश बाबू कोई अन्य नहीं उसके अपने वही रमेश बाबू हैं जिनके……बस वह आगे कुछ विचार न कर सकी।

शान्ता ने एक विशेष प्रकार के रसगुल्ले बनाए थे जैसे कि दिल्ली में नहीं बनते थे और जिन्हें वह स्वयं बनाया करती थी। रमेश बाबू उन्हें बहुत पसन्द करते थे। शान्ता को विश्वास था कि वैसा रसगुल्ला उससे बिछुड़ने के पश्चात् रमेश बाबू ने नहीं खाया होगा।

खाना लाकर मेज पर सजा दिया गया। रमेश बाबू के हाथ पोंछने को शान्ता ने पृथक् रूमाल दिया और वह सीधे स्वभाव में हाथ धुलवाने के पश्चात् रशीदा ने रमेश बाबू के हाथ में दे दिया। रमेश बाबू ने साधारण रूप से रूमाल हाथों में ले

लिया और हाथ पोंछ कर रूमालको लिए आगे बढ़ गए। इस प्रकार कुछ भूल जाने की रमेश बाबू की बान थी, इसीलिए उनके साथ रहने वाला व्यक्ति इन्हें इस प्रकार की बातों से बचाता रहता था।

रमेश बाबू ने रूमाल से मुँह पूँछ कर कुर्सी पर बैठते हुए जब रूमाल पर देखा तो उस पर लिखा था 'रमेश' रमेश बाबू ने मुट्ठी ही मुट्ठी में पढ़ लिया और एकदम वह उचाट हो उठे। मन व्यग्र हो उठा किसी को देखने के लिए और हृदय व्याकुल; परन्तु फिर भी रमेश बाबू ने अपनी शक्तियों को सन्तुलित किया और भावना पर विजय प्राप्त किए शान्ति के साथ बैठे रहे। उनके नेत्र चौकन्ने हो गए कुछ देखने को।

खाने की प्लेट का प्रत्येक रसगुल्ला कह रहा था कि यह शान्ता ने अपने हाथ से कढ़ाई में उतारा है। सब खाने के लिए तैयार हो गए तो रमेश बाबू ने कहा, "अमरनाथजी! हम लोग उस समय तक भोजन नहीं करेंगे जब तक कि दावत देने वाली आपकी बहन स्वयं आकर हमसे खाना खाने के लिए नहीं कहेंगी।"

जो शब्द इस समय अमरनाथजी को सम्बोधित करके कहे गए, वे ही शब्द उस समय लाहौर में आजाद भैया को सम्बोधित करके कहे जाते थे। एक शब्द भी कम नहीं था उन शब्दों में, शान्ता ने निखरे रूप से स्मरण कर लिया।

शान्ता को अन्दर आना पड़ा। वही सीधा-सादा साधारण वेश। सादी खद्दर की सुफैद धोती, परन्तु बहुत बारीक खद्दर की। सुफैद सीधा-सादा जम्पर और पैरों में साधारण चप्पल, परन्तु सौन्दर्य उमड़ा पड़ रहा था इस तीस वर्ष की अवस्था में भी। यौवन फूटा पड़ रहा था और रक्त शरीर में ऐसा दिखलाई देता था कि मानो आधिक्य के कारण वह निकलेगा। यह नंगा सौन्दर्य था बिला बनावट का, अपने देश का, परन्तु पाश्चात्य सभ्यता से भी पूर्ण परिचित, अपरिचित नहीं। जीवन के सभी पहलुओं को समझकर एक निश्चित मार्ग निर्धारित कर चुकने के पश्चात् जो मनुष्य बनता है, वह यह शान्ता थी।

रमेश बाबू शान्ता को देखकर अपने ही स्थान पर खड़े हो गए और मौन उसी प्रकार चित्र लिखित सी शान्ता भी खड़ी थी। वह अपने को अधिक सँभाल न सकी और गिरने ही वाली थी कि रमेश बाबू ने आगे बढ़कर शान्ता को अंक में भर कर सँभाल लिया। शान्ता कुछ क्षण के लिए रमेश बाबू की गोद में पड़ी रही और रमेश बाबू ने सब को कमरे से बाहर जाने को कहा।

जिस समय शान्ता के नेत्र खुले तो वह रमेश बाबू की गोद में लेटी हुई थी। शान्ता ने शीघ्रता से पलक मलकर इधर-उधर देखा और फिर सिर नीचा करके कुछ क्षण और शान्त लेटी रही। शान्ता के नेत्रों से बहकर निकलने वाले गर्म आँसुओं ने रमेश बाबू का कुर्ता भिगो दिया।

"काश पिताजी उस दिन आपका कहना मान जाते।" शान्ता ने भारी मन से कष्ट के साथ कहा। रमेश बाबू बराबर प्यार के साथ शान्ता के सिर पर हाथ फेरते हुए गम्भीरतापूर्वक बोले, "समय की गति को हम नहीं बदल सकते थे शान्ता! हम दोनों के जीवन में एक तूफान आ गया था। उस तूफान ने हम दोनों को एक दूसरे से उठाकर दूर-दूर फैंक दिया। कौन जानता था कि जीवन में इस प्रकार फिर भेंट होगी? मैं तो आशा ही खो चुका था, परन्तु मैंने जीवन में अपने कर्तव्य को निभाया है। तुम्हारा जीवन देखकर मैं यह पूछने की आवश्यकता नहीं समझता। अब और बातें फिर होंगी।" रमेश बाबू ने कहा "तुम्हें चक्कर आ गया था। अब सँभलकर खड़ी हो जाओ। तुम्हारी दावत के सब मेहमान बाहर खड़े हैं।"

रशीदा कभी-कभी मक्कारी से शीशे के अन्दर से झाँककर देख लेती थी। परन्तु रमा और अमरनाथजी बहुत दूर से इस नाटकीय दृश्य को देख रहे थे।

शान्ता ने खड़े होकर द्वार खोल दिया और फिर सबको बड़े प्यार से अन्दर बुलाया। खाना मेज पर सजा हुआ था। सब चारों ओर पड़ी कुर्सियों पर बैठ गए और सबके बैठने पर रमेश बाबू ने आज अपनी पुरानी जीवन गाथा पर प्रकाश डाला। शान्ता के कमरे में जो चित्र लगा हुआ था वह रमा ने पर्दा हटाकर खोल दिया। वह रमेश बाबू का चित्र था और उसी प्रकार शान्ता का चित्र रमेश बाबू के कमरे में लगा था।

शान्ता के हाथ के बनाए हुए रसगुल्ले खाकर आज रमेश बाबू के आनन्द का पारावार नहीं था। रमेश बाबू ने प्यार से रमा के कान में पूछा "कैसे लगे रसगुल्ले?"

"रसगुल्लों से रसगुल्लों वाली अधिक अच्छी लगी।" मुस्कुराकर आँखें मटकाते हुए रमा ने कहा। यह सुनकर शान्ता भी मुस्कुरा दी।

रशीदा और अमरनाथजी ने आज दावत में वह आनन्द लिया कि जैसा उन्होंने जीवन में कभी नहीं लिया था। यह दावत ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो रमेश बाबू के विवाह की दावत थी। केवल शहनाई बजने की कसर थी।

दावत खाकर सब लोग पत्थर की मूर्ति बने बैठे थे। किसी की समझ मेंन आया कि क्या कहें। अन्त में रमा को ही खड़ी होकर कहना पड़ा, "आज की यह दावत जिस आनन्दपूर्वक समाप्त हुई उसका श्रेय मैं अमरनाथजी को देती हूँ कि जिन्होंने सात वर्षों की इस बिछुड़ी हुई अनमोल जोड़ी को फिर से मिलाकर बड़ा भारी उपकार किया? मैं उनकी हृदय से कृतज्ञ हूँ।" इतना कहकर रमा ने शान्ता से भेंट करके अपना परिचय दिया और बोली, "अब मुझे आज्ञा दीजिए मुझे सन्ध्या की गाड़ी से देहरादून जाना है और फिर मंसूरी अपने पिता के पास।"

लिया और हाथ पोंछ कर रूमालको लिए आगे बढ़ गए। इस प्रकार कुछ भूल जाने की रमेश बाबू की बान थी, इसीलिए उनके साथ रहने वाला व्यक्ति इन्हें इस प्रकार की बातों से बचाता रहता था।

रमेश बाबू ने रूमाल से मुँह पूँछ कर कुर्सी पर बैठते हुए जब रूमाल पर देखा तो उस पर लिखा था 'रमेश' रमेश बाबू ने मुट्ठी ही मुट्ठी में पढ़ लिया और एकदम वह उचाट हो उठे। मन व्यग्र हो उठा किसी को देखने के लिए और हृदय व्याकुल; परन्तु फिर भी रमेश बाबू ने अपनी शक्तियों को सन्तुलित किया और भावना पर विजय प्राप्त किए शान्ति के साथ बैठे रहे। उनके नेत्र चौकन्ने हो गए कुछ देखने को।

खाने की प्लेट का प्रत्येक रसगुल्ला कह रहा था कि यह शान्ता ने अपने हाथ से कढ़ाई में उतारा है। सब खाने के लिए तैयार हो गए तो रमेश बाबू ने कहा, "अमरनाथजी! हम लोग उस समय तक भोजन नहीं करेंगे जब तक कि दावत देने वाली आपकी बहन स्वयं आकर हमसे खाना खाने के लिए नहीं कहेंगी।"

जो शब्द इस समय अमरनाथजी को सम्बोधित करके कहे गए, वे ही शब्द उस समय लाहौर में आजाद भैया को सम्बोधित करके कहे जाते थे। एक शब्द भी कम नहीं था उन शब्दों में, शान्ता ने निखरे रूप से स्मरण कर लिया।

शान्ता को अन्दर आना पड़ा। वही सीधा-सादा साधारण वेश। सादी खद्दर की सुफैद धोती, परन्तु बहुत बारीक खद्दर की। सुफैद सीधा-सादा जम्पर और पैरों में साधारण चप्पल, परन्तु सौन्दर्य उमड़ा पड़ रहा था इस तीस वर्ष की अवस्था में भी। यौवन फूटा पड़ रहा था और रक्त शरीर में ऐसा दिखलाई देता था कि मानो आधिक्य के कारण वह निकलेगा। यह नंगा सौन्दर्य था बिला बनावट का, अपने देश का, परन्तु पाश्चात्य सभ्यता से भी पूर्ण परिचित, अपरिचित नहीं। जीवन के सभी पहलुओं को समझकर एक निश्चित मार्ग निर्धारित कर चुकने के पश्चात् जो मनुष्य बनता है, वह यह शान्ता थी।

रमेश बाबू शान्ता को देखकर अपने ही स्थान पर खड़े हो गए और मौन उसी प्रकार चित्र लिखित सी शान्ता भी खड़ी थी। वह अपने को अधिक सँभाल न सकी और गिरने ही वाली थी कि रमेश बाबू ने आगे बढ़कर शान्ता को अंक में भर कर सँभाल लिया। शान्ता कुछ क्षण के लिए रमेश बाबू की गोद में पड़ी रही और रमेश बाबू ने सब को कमरे से बाहर जाने को कहा।

जिस समय शान्ता के नेत्र खुले तो वह रमेश बाबू की गोद में लेटी हुई थी। शान्ता ने शीघ्रता से पलक मलकर इधर-उधर देखा और फिर सिर नीचा करके कुछ क्षण और शान्त लेटी रही। शान्ता के नेत्रों से बहकर निकलने वाले गर्म आँसुओं ने रमेश बाबू का कुर्ता भिगो दिया।

"काश पिताजी उस दिन आपका कहना मान जाते।" शान्ता ने भारी मन से कष्ट के साथ कहा। रमेश बाबू बराबर प्यार के साथ शान्ता के सिर पर हाथ फेरते हुए गम्भीरतापूर्वक बोले. "समय की गति को हम नहीं बदल सकते थे शान्ता! हम दोनों के जीवन में एक तूफान आ गया था। उस तूफान ने हम दोनों को एक दूसरे से उठाकर दूर-दूर फेंक दिया। कौन जानता था कि जीवन में इस प्रकार फिर भेंट होगी? मैं तो आशा ही खो चुका था, परन्तु मैंने जीवन में अपने कर्तव्य को निभाया है। तुम्हारा जीवन देखकर मैं यह पूछने की आवश्यकता नहीं समझता। अब और बातें फिर होंगी।" रमेश बाबू ने कहा "तुम्हें चक्कर आ गया था। अब सँभलकर खड़ी हो जाओ। तुम्हारी दावत के सब मेहमान बाहर खड़े हैं।"

रशीदा कभी-कभी मक्कारी से शीशे के अन्दर से झाँककर देख लेती थी। परन्तु रमा और अमरनाथजी बहुत दूर से इस नाटकीय दृश्य को देख रहे थे।

शान्ता ने खड़े होकर द्वार खोल दिया और फिर सबको बड़े प्यार से अन्दर बुलाया। खाना मेज पर सजा हुआ था। सब चारों ओर पड़ी कुर्सियों पर बैठ गए और सबके बैठने पर रमेश बाबू ने आज अपनी पुरानी जीवन गाथा पर प्रकाश डाला। शान्ता के कमरे में जो चित्र लगा हुआ था वह रमा ने पर्दा हटाकर खोल दिया। वह रमेश बाबू का चित्र था और उसी प्रकार शान्ता का चित्र रमेश बाबू के कमरे में लगा था।

शान्ता के हाथ के बनाए हुए रसगुल्ले खाकर आज रमेश बाबू के आनन्द का पारावार नहीं था। रमेश बाबू ने प्यार से रमा के कान में पूछा "कैसे लगे रसगुल्ले?"

"रसगुल्लों से रसगुल्लों वाली अधिक अच्छी लगी।" मुस्कुराकर आँखें मटकाते हुए रमा ने कहा। यह सुनकर शान्ता भी मुस्कुरा दी।

रशीदा और अमरनाथजी ने आज दावत में वह आनन्द लिया कि जैसा उन्होंने जीवन में कभी नहीं लिया था। यह दावत ऐसी प्रतीत हो रही थी कि मानो रमेश बाबू के विवाह की दावत थी। केवल शहनाई बजने की कसर थी।

दावत खाकर सब लोग पत्थर की मूर्ति बने बैठे थे। किसी की समझ मेंन आया कि क्या कहें। अन्त में रमा को ही खड़ी होकर कहना पड़ा, "आज की यह दावत जिस आनन्दपूर्वक समाप्त हुई उसका श्रेय मैं अमरनाथजी को देती हूँ कि जिन्होंने सात वर्षों की इस बिछुड़ी हुई अनमोल जोड़ी को फिर से मिलाकर बड़ा भारी उपकार किया? मैं उनकी हृदय से कृतज्ञ हूँ।" इतना कहकर रमा ने शान्ता से भेंट करके अपना परिचय दिया और बोली, "अब मुझे आज्ञा दीजिए मुझे सन्ध्या की गाड़ी से देहरादून जाना है और फिर मंसूरी अपने पिता के पास।"

"यह नहीं हो सकेगा रमा वहन ! आज आप नहीं जा सकेंगी। अब तक आप रमेश बाबू की मेहमान थीं और कल आपको मेरे यहाँ मेहमान बनना होगा—देखिए आप ना नहीं कर सकेंगी।" और वास्तव में रमा ना नहीं कर सकी। दावत के पश्चात् सब विदा हो गए परन्तु रमा यहीं पर शान्ता के पास ठहर गई।

आज शान्ता ने अपना इच्छित सुख प्राप्त किया और रमेश बाबू ने भी। दोनों उतने प्रसन्न थे जितने वे हो सकते थे। रमा एक विचित्र प्रकार की स्वतन्त्र विचारों वाली स्त्री निकली, जिसके हृदय में नारी-डाह नाम मात्र के लिए भी नहीं थी। शान्ता से मिलकर उसे वास्तव में सुख तथा आनन्द मिला। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि मानो वह अपनी बड़ी बहन से मिल रही थी।

३१

"आपको कोई चिंता नहीं आजाद बाबू ! हमारी सब स्कीमें 'इन्सान कार्यालय' को बन्द करने की असफल होती जा रही हैं। हमने जो-जो भी प्रयास किए वे असफल सिद्ध हुए। हड़ताल असफल हो गई। उस दिन कागज के गोदाम में आग लगाने वाली स्कीम पकड़ ली गई, मशीनें तोड़ देने वाली स्कीम का राज भी खुल गया, टाइप चोरी कराने का सब प्रबन्ध ठीक समय पर खतम हो गया। कोई भी तो प्लान पूरा नहीं उतरा। अवश्य कोई ऐसा भेदिया है जो हमारे सब राज लेजाकर उनको देता है।"

"मेरे चिंता करने से क्या बनता है कमला ! चिंता करने के लिए तुम क्या कम हो ? मैंने तुम से एक बार कह दिया कि मैं सैनिक हूँ और आज्ञा पालन करना जानता हूँ। हाँ यह प्रयोग करना मुझे शक्ति का अपव्यय-सा अवश्य लग रहा है।"

"कमला इतना सुनकर आग बबूला हो गई और उसके क्रोध का पारावार न रहा। शरीर का रक्त वैसे ही गर्म हो रहा था। अपनी हर प्रकार की पराजय पर मन में एक बार आया कि वह आजाद को कुछ खरी-खोटी सुना दे परन्तु फिर अपने को सँभालकर रह गई और एक बार आँखें मींच कर शान्त हो गई।

कमला के हृदय में एक लगन थी और वह लगन बिलकुल स्वार्थ रहित थी। इसीलिए वह सब निर्भीकतापूर्वक करती थी जो कुछ भी करना चाहती थी। कमला अपना सर्वस्व अपनी जिद पर लगाने के लिए उद्यत थी। वह यह नहीं देख सकती थी

कि यह 'इन्सान' पत्र, जो कम्यूनिस्टों का शत्रु है और उनके विरुद्ध प्रति सप्ताह आवाज उठाता है, किसी भी प्रकार दिल्ली में अपना अस्तित्व रख सके।

'इन्सान' का नाम सुनकर ही कमला के हृदय में जलन होने लगती थी और रमेश बाबू के तो नाम से तो उसे चिढ़ थी। कमला ने रमेश बाबू का नाम कभी आजाद के सामने नहीं लिया था। आजाद एक सच्चा सैनिक था अपने नायक का, चाहे जिस दिशा में भी उसका नायक उसे ले जाए। वह अच्छा-बुरा कुछ नहीं जानता था, वह जानता था कुछ करना। कमला के नेतृत्व में इस समय उसने अपना जीवन अर्पण कर दिया था। प्राण रहते वह अपने उस पथ से हटने वाला नहीं था।

रात्रि में जब एकान्त में केवल कमला और आजाद बैठे तो कमला ने आजाद से कहा, "बस एक ही उपाय है।"

"वह क्या ?" उत्सुकता से आजाद ने पूछा।

"खून।" दृढ़तापूर्वक कमला ने कहा।

"परन्तु किसका ?" आजाद ने पूछा।

" 'इन्सान' के संचालक का। पत्र भी बन्द हो जाएगा और कार्यालय भी।" दृढ़तापूर्वक कमला ने कहा।

"फिर किसके सुपुर्द है यह काम ?" गम्भीरतापूर्वक आजाद ने पूछा।

"आपको करना होगा यह।" दृढ़तापूर्वक कमला ने कहा और रिवालवर निकालकर आजाद के हाथ में दे दिया।

आजाद ने रिवालवर अपने हाथ में ले लिया और एक बार उसे चूमा। एक बार रिवालवर को चूम कर फिर आजाद ने कमला को प्रेमपूर्वक देखा और नेत्रों में अमिट विश्वास लेकर बोला, "अच्छा लो कमला अब मैं चला। शायद फिर कभी जीवन में भेंट न हो सके। यह अन्तिम भेंट है, जो कहना हो सो कह-सुन लो, फिर समय नहीं मिलेगा।"

"आप बैठो ! मैं चाय बना लाती हूँ। कल से कुछ नहीं खाया। डबल रोटी भिगोकर आधी-आधी खा लेंगे तो कुछ पेट का सहारा हो जाएगा।" कह कर कमला चाय बनाने चली गई और आजाद खर्राटे की नींद सो गया, मानो उसे चिन्ता ही नहीं थी कि कहाँ और किस काम से जाना है।

कमला ने जगाकर चाय पिलाई और फिर कहा, "समय हो गया, अब आपको जाना चाहिए।"

इस प्रकार आजाद को वहाँ जाते हुए एक सप्ताह हो गया, परन्तु अवसर ही नहीं मिल सका। आजाद नित्य जाता था और जाकर पहरेदार से बच कर कोठी में प्रवेश करने का प्रयत्न करता था, परन्तु अन्त में उनका प्रयत्न निष्फल हो जाता था।

"यह नहीं हो सकेगा रमा बहन ! आज आप नहीं जा सकेंगी। अब तक आप रमेश बाबू की मेहमान थीं और कल आपको मेरे यहाँ मेहमान बनना होगा—देखिए आप ना नहीं कर सकेंगी।" और वास्तव में रमा ना नहीं कर सकी। दावत के पश्चात् सब विदा हो गए परन्तु रमा यहीं पर शान्ता के पास ठहर गई।

आज शान्ता ने अपना इच्छित सुख प्राप्त किया और रमेश बाबू ने भी। दोनों उतने प्रसन्न थे जितने वे हो सकते थे। रमा एक विचित्र प्रकार की स्वतन्त्र विचारों वाली स्त्री निकली, जिसके हृदय में नारी-डाह नाम मात्र के लिए भी नहीं थी। शान्ता से मिलकर उसे वास्तव में सुख तथा आनन्द मिला। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि मानो वह अपनी बड़ी बहन से मिल रही थी।

३१

"आपको कोई चिंता नहीं आजाद बाबू ! हमारी सब स्कीमें 'इन्सान कार्यालय' को बन्द करने की असफल होती जा रही हैं। हमने जो-जो भी प्रयास किए वे असफल सिद्ध हुए। हड़ताल असफल हो गई। उस दिन कागज के गोदाम में आग लगाने वाली स्कीम पकड़ ली गई, मशीनें तोड़ देने वाली स्कीम का राज भी खुल गया, टाइप चोरी कराने का सब प्रवन्ध ठीक समय पर खत्म हो गया। कोई भी तो प्लान पूरा नहीं उतरा। अवश्य कोई ऐसा भेदिया है जो हमारे सब राज लेजाकर उनको देता है।"

"मेरे चिंता करने से क्या बनता है कमला ! चिंता करने के लिए तुम क्या कम हो ? मैंने तुम से एक बार कह दिया कि मैं सैनिक हूँ और आज्ञा पालन करना जानता हूँ। हाँ यह प्रयोग करना मुझे शक्ति का अपव्यय-सा अवश्य लग रहा है।"

"कमला इतना सुनकर आग बबूला हो गई और उसके क्रोध का पारावार न रहा। शरीर का रक्त वैसे ही गर्म हो रहा था। अपनी हर प्रकार की पराजय पर मन में एक बार आया कि वह आजाद को कुछ खरी-खोटी सुना दे परन्तु फिर अपने को सँभालकर रह गई और एक बार आँखें मींच कर शान्त हो गई।

कमला के हृदय में एक लगन थी और वह लगन बिलकुल स्वार्थ रहित थी। इसीलिए वह सब निर्भीकतापूर्वक करती थी जो कुछ भी करना चाहती थी। कमला अपना सर्वस्व अपनी जिद पर लगाने के लिए उद्यत थी। वह यह नहीं देख सकती थी

कि यह 'इन्सान' पत्र, जो कम्यूनिस्टों का शत्रु है और उनके विरुद्ध प्रति सप्ताह आवाज उठाता है, किसी भी प्रकार दिल्ली में अपना अस्तित्व रख सके।

'इन्सान' का नाम सुनकर ही कमला के हृदय में जलन होने लगती थी और रमेश बाबू के तो नाम से तो उसे चिढ़ थी। कमला ने रमेश बाबू का नाम कभी आजाद के सामने नहीं लिया था। आजाद एक सच्चा सैनिक था अपने नायक का, चाहे जिस दिशा में भी उसका नायक उसे ले जाए। वह अच्छा-बुरा कुछ नहीं जानता था, वह जानता था कुछ करना। कमला के नेतृत्व में इस समय उसने अपना जीवन अर्पण कर दिया था। प्राण रहते वह अपने उस पथ से हटने वाला नहीं था।

रात्रि में जब एकान्त में केवल कमला और आजाद बैठे तो कमला ने आजाद से कहा, "बस एक ही उपाय है।"

"वह क्या ?" उत्सुकता से आजाद ने पूछा।

"खून।" दृढ़तापूर्वक कमला ने कहा।

"परन्तु किसका ?" आजाद ने पूछा।

" 'इन्सान' के संचालक का। पत्र भी बन्द हो जाएगा और कार्यालय भी।" दृढ़तापूर्वक कमला ने कहा।

"फिर किसके सुपुर्द है यह काम ?" गम्भीरतापूर्वक आजाद ने पूछा।

"आपको करना होगा यह।" दृढ़तापूर्वक कमला ने कहा और रिवालवर निकालकर आजाद के हाथ में दे दिया।

आजाद ने रिवालवर अपने हाथ में ले लिया और एक बार उसे चूमा। एक बार रिवालवर को चूम कर फिर आजाद ने कमला को प्रेमपूर्वक देखा और नेत्रों में अमिट विश्वास लेकर बोला, "अच्छा लो कमला अब मैं चला। शायद फिर कभी जीवन में भेंट न हो सके। यह अन्तिम भेंट है, जो कहना हो सो कह-सुन लो, फिर समय नहीं मिलेगा।"

"आप बैठो ! मैं चाय बना लाती हूँ। कल से कुछ नहीं खाया। डबल रोटी भिगोकर आधी-आधी खा लेंगे तो कुछ पेट का सहारा हो जाएगा।" कह कर कमला चाय बनाने चली गई और आजाद खर्राटे की नींद सो गया, मानो उसे चिन्ता ही नहीं थी कि कहाँ और किस काम से जाना है।

कमला ने जगाकर चाय पिलाई और फिर कहा, "समय हो गया, अब आपको जाना चाहिए।"

इस प्रकार आजाद को वहाँ जाते हुए एक सप्ताह हो गया, परन्तु अवसर ही नहीं मिल सका। आजाद नित्य जाता था और जाकर पहरेदार से बच कर कोठी में प्रवेश करने का प्रयत्न करता था, परन्तु अन्त में उनका प्रयत्न निष्फल हो जाता था।

कमला की कम्यूनिस्ट पार्टी का ताना-बाना ढीला पड़ चुका था। एक तो चीन के कम्यूनिस्ट होने की बात पुरानी पड़ चली थी और दूसरे बर्मा तथा इण्डोनेशिया में जो कम्यूनिस्ट उपद्रव हुए थे। उन्हें वहाँ की सरकारों ने दबा दिया था। इसका प्रभाव भारत की कम्यूनिस्ट पार्टियों पर भी पड़ा। भारत के सभी प्रान्तों में यों तो कम्यूनिस्ट-उपद्रव होने की सम्भावना न रही थी, परन्तु विशेष रूप से देहली इत्यादि के आस-पास के प्रदेश में तो काफी छान-बीन के पश्चात् कम्यूनिस्ट कार्यकर्त्ताओं को पकड़ लिया गया था और जो कुछ बच गए थे वे भागकर और वेश बदल कर ही बचे थे।

कमला और आजाद के नामों पर वारेंट थे, परन्तु ये लोग गुप्त रूप से कार्य कर रहे थे। जब से कमला का बल्लीमारान वाला होम समाप्त हुआ उस समय से उसकी व्यवस्था सँभलने नहीं पाई थी। यों बाद में कमला ने न्यूज एजेन्सी की व्यवस्था की, परन्तु उसका राज भी पुलिस के गुप्त विभाग से छिपा न रह सका और उस पर भी प्रतिबन्ध लगाकर सरकार ने उसे समाप्त कर दिया।

इस प्रकार कमला का सब आर्थिक सहारा सरकारी नीति ने समाप्त कर दिया; परन्तु कमला, वह अटल थी अपने निश्चय पर प्राण रहते चलने के लिए। कमला अडिग थी; अजेय थी, साहस की उसमें कमी नहीं थी और आज तो उसने अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु भी अपने सिद्धान्त पर भेंट चढ़ा दी थी।

कमला की दृष्टि में जीवन का मूल्य कुछ नहीं था, मूल्य जो कुछ भी था वह कर्तव्य का था। कर्तव्य-पालन की दृढ़ता में कमला रमेश बाबू से किसी भी प्रकार कम न थी, परन्तु दोनों के कर्तव्यों और उनकी पूर्ति की दिशाओं में आकाश-पाताल का अन्तर था। एक की नीति विध्वंसात्मक थी तो दूसरे की निर्माणात्मक; एक विस्फोट था तो दूसरा शान्ति का अथाह समुद्र; एक आग था तो दूसरा पानी।

कमला शान्ति पर विजय प्राप्त न कर सकने पर बार-बार खिसियाई बिल्ली की तरह झल्लाती थी, परन्तु कुछ कर सकने पर असमर्थ रह जाती थी। भारत की सरकार को कमला ने बिलकुल धूर्त्त पाया। कमला ने परीक्षा करके भली प्रकार देख लिया कि भारतीय सरकार का कोई चरित्र नहीं, वह ढुल-मुल यकीन है, जिधर का पलड़ा भारी देखती है उधर को ही ढुलक जाती है। यह अँग्रेजी काल में अँग्रेजी की पिट्ठू बनी रही, कांग्रेसी काल में आकर कांग्रेसी बन गई, यदि कल सोशलिस्ट राज्य भारत में हो गया तो इन्हें अपने को सोशलिस्ट बनाने में कोई संकोच नहीं होगा और यदि कुछ दिन पश्चात् कम्यूनिस्टों का भी यहाँ पर दौर-दौरा हो गया तो इन लोगों को कम्यूनिस्ट बनने में भी देर नहीं लगेगी। तभी तो ये लोग आपस में मिलकर कहा करते हैं, "समय के साथ चलना चाहिए। अपने राम तो समय के साथ चलते हैं,

बस इसीलिए कभी मार नहीं खाते।"

कमला इस सिद्धान्त के मानने वालों को घृणा की ही दृष्टि से नहीं देखती थी वरन् उन्हें पहले दर्जे का धोखेबाज, दगाबाज, बदमाश और लुच्चा समझती थी। वह कहती थी, 'इस प्रकार के व्यक्ति समाज और देश के लिए कलंक हैं, इन्हें मर जाना चाहिए, जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं।' परन्तु खेद की बात थी कि उन लोगों से जीवन-हक छीनने का अधिकार कमला को नहीं है।

सरकार की कड़ी नजर होने से कम्यूनिस्ट प्रचार दिल्ली में एकदम बन्द हो गया और उसकी प्रगति रुक गई। कोई रास्ता कमला की समझ में नहीं आ रहा था। सरकार ने कम्यूनिस्ट पार्टी को खिलाफ कानून करार नहीं दिया, परन्तु कम्यूनिस्ट पार्टी के दफ्तर में झाड़ू लगाने वाला चपरासी भी शक की दृष्टि से देखा जाने लगा और परिस्थिति यहाँ तक गम्भीर बनी कि दफ्तर में चपरासी तक मिलना कठिन हो गया, दफ्तरों में ताले लग गए, दफ्तरों पर लगे झण्डे गलकर गिर पड़े। कमला के पास अपना नया झण्डा लगाने को कपड़ा नहीं जुट पाया।

कमला और आजाद केवल दो ही प्राणी अब दिल्ली में बचे थे जो कम्यूनिस्ट पार्टी के प्राण थे, परन्तु ये भी कितने दिन तक। बकरे की माँ कब तक खैर मनाए और फिर अब कमला ने आजाद की ड्यूटी लगा दी थी ऐसे काम पर कि उनमें से एक का समाप्त हो जाना तो निश्चित ही हो चुका था।

कभी-कभी कमला रात भर पड़ी सोचा करती थी कि यह उसने सब कुछ क्या कर लिया? अपने जीवन के साथ-ही-साथ एक युवक के जीवन को भी उसने किस मार्ग पर लगा दिया—परन्तु फिर उसका आदर्श, उसका कर्तव्य आकर उसके सामने खड़े हो जाते थे और उससे कहते थे 'नहीं तुम्हें अपने कर्तव्य से नहीं गिरना है चाहे समस्त संसार भले ही गिर जाए। तुमने समस्त संसार के मजदूरों को संगठित करके पूँजीवाद का अन्त कर देने का निश्चय किया है। तुम सरमाएदारों की शत्रु हो। इस प्रकार रुपए के बल पर मजदूरों को प्रलोभन देकर तोड़ी गई हड़ताल कभी नहीं चलेगी, कभी नहीं चलेगी। यह प्रेस नहीं चलेगा, यह यन्त्र नहीं चलेगा।' दृढ़तापूर्वक कमला ने विचार किया।

संगठन के लिए कमला के पास अब कार्यकर्त्ता तथा पैसा दोनों का ही अभाव हो चुका था और यही कारण था कि अब उसे अपना मार्ग धुंधला प्रतीत होने लगा था। ये सब-की-सब चिन्ताएँ केवल कमला के ही मस्तिष्क के लिए थीं; आजाद इन सबसे मुक्त था। वह तो केवल अपना काम भर करना जानता था, और बस फिर पैर फैलाकर सोता था।

कमला का कदम पीछे नहीं हटेगा—यह कमला का दृढ़ संकल्प था। वह दृढ़

थी अपने विचारों पर। पैसे के अभाव में कमला समझती थी कि यह सब कुछ हो रहा था। एक दिन कमला ने एक मोटे सेठ पर डोरे डाल कर उससे दस हजार रुपया ऐंठ लिए। सरमाएदार का रुपया किसी भी प्रकार ऐंठ लिया जाए, उसमें कोई हानि कमला नहीं समझती थी। धन किसी की बपौती नहीं है। धन उपयोग करने वाले का है। जो व्यक्ति उसका उपयोग नहीं करता और दाबकर रखता है, उसका धन पर कोई अधिकार नहीं। धन मजदूर के काम आना चाहिए क्योंकि यह उसके गाढ़े पसीने की कमाई है। मजदूर को हक है कि वह छल से, फरेब से, धोखे से, प्रलोभन से जिस प्रकार भी कर सके पैसे वाले का रुपया उससे लेकर अपने काम में लगाए।

"सबको उसी प्रकार जीने का अधिकार है जिस प्रकार ये कारों में घूमनेवाले मोटी तौंद के लाले घूमते हैं। एक व्यक्ति सुबह से शाम तक कुछ नहीं करता और अच्छे-से-अच्छा खाना खाता है और दूसरा सुबह से शाम तक कठिन परिश्रम करके भी पेट भर अन्न नहीं जुटा पाता—यह सब क्या है, कैसी शासन-व्यवस्था है? इस व्यवस्था को मिट जाना होगा। जनता को चाहिए कि वह समाज के ऐसे लुटेरों की, जो बिना परिश्रम हलवा, पूरी उड़ाते हैं, सम्पत्ति छीन ले और उन्हें कर्तव्य करना सिखलाए। भारत का प्रत्येक व्यक्ति समझे कि अब बिना किए खाने को नहीं मिलेगा। फिर देखें भारत में उत्पादन की कैसे कमी होती है?" कमला ने कहा।

"यह तुम्हारा विचार बिलकुल ठीक है कमला! मैं भी कभी-कभी यह सोचा करता हूँ कि यह क्या राज्य व्यवस्था है? लोग कहते हैं राज्य बदल गया, क्रान्ति हो गई, परिवर्तन हो गया, परन्तु मुझे तो कहीं पर भी कुछ दिखलाई नहीं दे रहा। न कोई क्रान्ति है और न कोई परिवर्तन। वही पुराना ढर्रा है जो किसी प्रकार चल रहा था। सरकार आय-कर लगाना जानती है हानि-कर देना नहीं जानती। जिस सरकार को आप कर लेने का अधिकार है उसका यह भी कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने देश की बेकारी का प्रबन्ध करे। मोटे-मोटे वेतनों को समाप्त करके छोटे-छोटे वेतन वाले अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को काम पर लगाए।" आजाद बोला।

"मोटे-मोटे वेतनों की बातें कर रहे हैं आप?" मुस्कुराते हुए कमला ने कहा, "भारत का रुपया अय्याशी में लुटाया जा रहा है, यह सरकार खुदगर्ज है, बदमाश है। इसके सिर पर सरमाएदारों का उल्लू चढ़ा हुआ है। लोग कठपुतलियाँ हैं उनके हाथों की। नाचते हैं जैसा वह नचाना चाहते हैं और नाचें भी क्यों नहीं। वह जो चाँदी का जूता है सोने की मेखों से जड़ा हुआ वह सब कुछ करा देता है।" कमला ने व्यंग्य से कहा।

"यहाँ तक तो नौबत नहीं आई है कमलादेवी! जिस दिन यहाँ तक नौबत आ जाएगी उस दिन यह व्यवस्था समाप्त हो जाएगी। फिर एक दिन भी नहीं टिकेगा

यह गोरखधन्धा।" आजाद ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"यह गोरखधन्धा अधिक दिन चलने वाला नहीं, मैं कहे देती हूँ। इसके मिटने के लक्षण स्वयं पैदा हो चुके हैं। जनता में बेरोजगारी और असन्तोष पैदा हो रहा है। देश स्वयं कम्यूनिज्म की ओर खिंच रहा है। प्रवृत्तियाँ हमारे अनुकूल होती जा रही हैं। मजदूरों का संगठन किसी-न-किसी रूप में हो ही चुका है। बारूद तैयार है, कभी भी, किसी भी समय विस्फोट हो सकता है। यह वर्तमान राज्य लिया है खद्दर की किश्ती नुमा टेढ़ी टोपी लगाने वाले धोखेबाजों ने और अब यह सत्ता पहुँचेगी देश के मजदूरो के हाथों में, देश के किसानों के हाथों में। घूस खोरी नहीं चलेगी, काला बाजार नहीं चलेगा, रिश्वत नहीं चलेगी, बाप-दादे की कमाई पर ऐश नहीं होगी, व्यक्तिगत सम्पत्तियाँ समाप्त हो जाएँगी और बस इस प्रकार बेईमानी और बदमाशी की जड़ मिट जाएगी। व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहने पर कोई यदि बेईमानी या काला बाजार करने का विचार भी करेगा तो किसके लिए ? धन, माल, रुपया, पैसा, जमीन, घर, दफ्तर, फैक्ट्री, मिल, बैल, भैंस, सोना, चाँदी सब सरकार के होंगे, सरकार जनता की होगी। राज्य के प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेदार सरकार होगी, हर पैदा होने वाले बच्चे की व्यवस्था सरकार करेगी, माँ-बाप मुक्त होंगे देश का उत्पादन बढ़ाने के लिए।

"अच्छा खाने और अच्छा पीने का सबको अधिकार होगा व्यर्थ के लिए शरीर पर चाँदी-सोना, लपेटने का किसी को अधिकार नहीं रहेगा। सब सोना-चाँदी सरकार के पास जमा रहेगा। गले में मोटी-मोटी हँसलियाँ और नितम्भों पर सौ-सौ तोले की तगड़ियाँ लटकाने का किसी को अधिकार नहीं होगा। किसी व्यक्ति को ऐसा जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं होगा कि दूसरा उसे देखकर रीझे और अपने को हीन अनुभव करे।

"काम सबको करना होगा। बिना काम किए खाने का टिकट नहीं दिया जाएगा।" कमला ने दृढ़तापूर्वक कहा, "यह होगा और अवश्य होकर रहेगा। आज नहीं कल, समय आ चुका है। मैं मर कर भी अपने इस आदर्श की पूर्ति करूँगी। संसार की कोई शक्ति मुझे मेरे मार्ग से नहीं हटा सकती। भूख नहीं, प्यास नहीं, कपड़े की कमी नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं मैं अपने आदर्श पर अटल रहूँगी।" और इतना कहकर कमला ने कमरे में घूमना प्रारम्भ कर दिया।

इसी समय किसी ने कमरे का द्वार खटखटाया। आजाद ने खड़े होकर द्वार खोला तो बहुत आश्चर्य हुआ उसे शान्ता को देखकर। कमला भी इस प्रकार शान्ता को यहाँ देखकर सकपका गई क्योंकि उसे विश्वास था कि उनके इस स्थान को केवल उन दोनों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता।

शान्ता के अन्दर आने पर द्वार बन्द कर दिया गया। एक तरफ हीटर रखा

थी अपने विचारों पर। पैसे के अभाव में कमला समझती थी कि यह सब कुछ हो रहा था। एक दिन कमला ने एक मोटे सेठ पर डोरे डाल कर उससे दस हजार रुपया ऐंठ लिए। सरमाएदार का रुपया किसी भी प्रकार ऐंठ लिया जाए, उसमें कोई हानि कमला नहीं समझती थी। धन किसी की बपौती नहीं है। धन उपयोग करने वाले का है। जो व्यक्ति उसका उपयोग नहीं करता और दाबकर रखता है, उसका धन पर कोई अधिकार नहीं। धन मजदूर के काम आना चाहिए क्योंकि यह उसके गाढ़े पसीने की कमाई है। मजदूर को हक है कि वह छल से, फरेब से, धोखे से, प्रलोभन से जिस प्रकार भी कर सके पैसे वाले का रुपया उससे लेकर अपने काम में लगाए।

"सबको उसी प्रकार जीने का अधिकार है जिस प्रकार ये कारों में घूमनेवाले मोटी तौंद के लाले घूमते हैं। एक व्यक्ति सुबह से शाम तक कुछ नहीं करता और अच्छे-से-अच्छा खाना खाता है और दूसरा सुबह से शाम तक कठिन परिश्रम करके भी पेट भर अन्न नहीं जुटा पाता—यह सब क्या है, कैसी शासन-व्यवस्था है ? इस व्यवस्था को मिट जाना होगा। जनता को चाहिए कि वह समाज के ऐसे लुटेरों की, जो बिना परिश्रम हलवा, पूरी उड़ाते हैं, सम्पत्ति छीन ले और उन्हें कर्तव्य करना सिखलाए। भारत का प्रत्येक व्यक्ति समझे कि अब बिना किए खाने को नहीं मिलेगा। फिर देखें भारत में उत्पादन की कैसे कमी होती है ?" कमला ने कहा।

"यह तुम्हारा विचार बिलकुल ठीक है कमला ! मैं भी कभी-कभी यह सोचा करता हूँ कि यह क्या राज्य व्यवस्था है ? लोग कहते हैं राज्य बदल गया, क्रान्ति हो गई, परिवर्तन हो गया, परन्तु मुझे तो कहीं पर भी कुछ दिखलाई नहीं दे रहा। न कोई क्रान्ति है और न कोई परिवर्तन। वही पुराना ढर्रा है जो किसी प्रकार चल रहा था। सरकार आय-कर लगाना जानती है हानि-कर देना नहीं जानती। जिस सरकार को आप कर लेने का अधिकार है उसका यह भी कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने देश की बेकारी का प्रबन्ध करे। मोटे-मोटे वेतनों को समाप्त करके छोटे-छोटे वेतन वाले अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को काम पर लगाए।" आजाद बोला।

"मोटे-मोटे वेतनों की बातें कर रहे हैं आप ?" मुस्कुराते हुए कमला ने कहा, "भारत का रुपया अय्याशी में लुटाया जा रहा है, यह सरकार खुदगर्ज है, बदमाश है। इसके सिर पर सरमाएदारों का उल्लू चढ़ा हुआ है। लोग कठपुतलियाँ हैं उनके हाथों की। नाचते हैं जैसा वह नचाना चाहते हैं और नाचें भी क्यों नहीं। वह जो चाँदी का जूता है सोने की मेखों से जड़ा हुआ वह सब कुछ करा देता है।" कमला ने व्यंग्य से कहा।

"यहाँ तक तो नौबत नहीं आई है कमलादेवी ! जिस दिन यहाँ तक नौबत आ जाएगी उस दिन यह व्यवस्था समाप्त हो जाएगी। फिर एक दिन भी नहीं टिकेगा

यह गोरखधन्धा।" आजाद ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"यह गोरखधन्धा अधिक दिन चलने वाला नहीं, मैं कहे देती हूँ। इसके मिटने के लक्षण स्वयं पैदा हो चुके हैं। जनता में बेरोजगारी और असन्तोष पैदा हो रहा है। देश स्वयं कम्यूनिज्म की ओर खिच रहा है। प्रवृत्तियाँ हमारे अनुकूल होती जा रही हैं। मजदूरों का संगठन किसी-न-किसी रूप में हो ही चुका है। बारूद तैयार है, कभी भी, किसी भी समय विस्फोट हो सकता है। यह वर्तमान राज्य लिया है खद्दर की किश्ती नुमा टेढ़ी टोपी लगाने वाले धोखेबाजों ने और अब यह सत्ता पहुँचेगी देश के मजदूरो के हाथों में, देश के किसानों के हाथों में। घूस खोरी नहीं चलेगी, काला बाजार नहीं चलेगा, रिश्वत नहीं चलेगी, बाप-दादे की कमाई पर ऐश नहीं होगी, व्यक्तिगत सम्पत्तियाँ समाप्त हो जाएँगी और बस इस प्रकार बेईमानी और बदमाशी की जड़ मिट जाएगी। व्यक्तिगत सम्पत्ति न रहने पर कोई यदि बेईमानी या काला बाजार करने का विचार भी करेगा तो किसके लिए ? धन, माल, रुपया, पैसा, जमीन, घर, दफ्तर, फैक्ट्री, मिल, बैल, भैंस, सोना, चाँदी सब सरकार के होंगे, सरकार जनता की होगी। राज्य के प्रत्येक व्यक्ति की जिम्मेदार सरकार होगी, हर पैदा होने वाले बच्चे की व्यवस्था सरकार करेगी, माँ-बाप मुक्त होंगे देश का उत्पादन बढ़ाने के लिए।

"अच्छा खाने और अच्छा पीने का सबको अधिकार होगा व्यर्थ के लिए शरीर पर चाँदी-सोना, लपेटने का किसी को अधिकार नहीं रहेगा। सब सोना-चाँदी सरकार के पास जमा रहेगा। गले में मोटी-मोटी हँसलियाँ और नितम्भों पर सौ-सौ तोले की तगड़ियाँ लटकाने का किसी को अधिकार नहीं होगा। किसी व्यक्ति को ऐसा जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं होगा कि दूसरा उसे देखकर रीझे और अपने को हीन अनुभव करे।

"काम सबको करना होगा। बिना काम किए खाने का टिकट नहीं दिया जाएगा।" कमला ने दृढ़तापूर्वक कहा, "यह होगा और अवश्य होकर रहेगा। आज नहीं कल, समय आ चुका है। मैं मर कर भी अपने इस आदर्श की पूर्ति करूँगी। संसार की कोई शक्ति मुझे मेरे मार्ग से नहीं हटा सकती। भूख नहीं, प्यास नहीं, कपड़े की कमी नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं मैं अपने आदर्श पर अटल रहूँगी।" और इतना कहकर कमला ने कमरे में घूमना प्रारम्भ कर दिया।

इसी समय किसी ने कमरे का द्वार खटखटाया। आजाद ने खड़े होकर द्वार खोला तो बहुत आश्चर्य हुआ उसे शान्ता को देखकर। कमला भी इस प्रकार शान्ता को यहाँ देखकर सकपका गई क्योंकि उसे विश्वास था कि उनके इस स्थान को केवल उन दोनों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता।

शान्ता के अन्दर आने पर द्वार बन्द कर दिया गया। एक तरफ हीटर रखा

हुआ था, उस पर चाय बन रही थी। शान्ता आकर चटाई पर बैठ गई और कमला भी सामने आ बैठी। कमला मुस्कुरा कर बोली, "हमारी यह खराब दशा देखकर कोई कमजोरी का उपदेश न देना जीजी ! हम आत्म-विश्वास के साथ सुखी हैं अपनी इस कठिन परिस्थिति में भी।"

"मैं कठिन परिस्थिति देखकर कभी विचलित नहीं होती कमला ! क्योंकि मैं स्वयं इससे भी कठिन परिस्थितियों में रही हूँ। सन् व्यालीस के आन्दोलन में मैंने जो कष्ट सहे हैं उनका आज अनुमान भी नहीं किया जा सकता। आजाद भैया इस बात के साक्षी हैं।" शान्ता कह रही थी।

"यही बात है कमला !" सिर हिलाते हुए आजाद ने कहा।

"मैं कभी-कभी विचलित हो उठती हूँ तुम्हारे प्रोग्रामों पर जो मैं दृढ़तापूर्वक कह सकती हूँ कि कभी-कभी बिलकुल बे सिर पैर के होते हैं।" शान्ता बोली।

"क्या ?" जरा त्यौरी चढ़ा कर कमला ने कहा। "मेरे प्रोग्राम बिना सिर-पैर के जीजी !—नॉनसैन्स—यह नहीं हो सकता। मेरे प्रोग्राम सब व्यवस्थित और समयानुकूल होते हैं। मैं जान गई कि आप आज मेरी परिस्थिति और असफलताओं का उपहास करने आई हैं। मैं कहे देती हूँ शान्ता जीजी ! कि मैं अपने मार्ग से नहीं हट सकती, नहीं हट सकती और मैं अब इस विषय पर एक बात भी सुनना नहीं चाहती !" कमला क्रोध से आग बगूला हो रही थी और उसकी आँखों के डोरे लाल हो चुके थे।

"अच्छा आजाद भैया नमस्कार ! भगवान् आप दोनों की रक्षा करे। मैं चली ?" इतना कहकर बिना कुछ कहे शान्ता खड़ी हो गई, कुछ भारी पन अपने मन में लिए। आजाद ने बैठने के लिए भी कहा परन्तु कमला कुछ नहीं बोली। शायद यदि कमला शान्ता को रुकने के लिए कहती तो वह एक दो मिनट और बैठ जाती, परन्तु नहीं ; वह चल दी उठ कर।

आजाद द्वार तक उठकर आया और बोला, "जीजी, क्षमा कर देना कमला को, तुम जानती हो इसका स्वभाव जैसा भी है।"

शान्ता मुस्कुरा दी और मुस्कुरा कर दो शब्दों में कहा, "मेरा भाई मुझसे छिन गया, मुझे यही खेद है। अच्छा नमस्कार !" इतना कहकर शान्ता की आँखों से आँसू बह निकले। आजाद का दिल भी भारी हो आया परन्तु आजाद के सिर पर जो कर्तव्य का पहाड़ रखा हुआ था उसे सिर से उतारना इस समय उसकी शक्ति में नहीं था। वह मौन पत्थर की मूर्ति के समान खड़ा रहा और उसके देखते-देखते शान्ता उसकी दृष्टि से ओझल हो गई।

"गई शान्ता बहन !" आजाद के अन्दर आने पर कमला ने पूछा।

"गई।" आजाद ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"क्यों, दिल भारी हो आया भाई बहन का ? कर्तव्य-पथ पर चलने से पूर्व यही दशा होती है। ये आँसू कमजोरी की निशानी है, धोखा है।" कमला बोली।

"परन्तु शान्ता बहन तो धोखा नहीं है।" आजाद ने कहा।

"वह मोह हो सकती हैं और मोह भी धोखे का दूसरा नाम है।" गम्भीरता-पूर्वक कमला ने कहा और वह इतना कह कर शान्त हो गई।

आजाद कुछ नहीं बोला। कमला का ऊँचा व्यक्तित्व उसके हृदय में घर कर चुका था उसके सामने किसी भी प्रकार का प्रलोभन उस पर असर नहीं कर सकता था। आजाद उद्यत था अपने कर्तव्य-पथ पर निर्भीकतापूर्वक चलने के लिए।

कमला की किसी से शत्रुता नहीं थी। वह रमेश बाबू को नहीं जानती थी और न उसने कभी उन्हें देखा ही था। कमला थी 'इन्सान' पत्र की शत्रु क्योंकि वह कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध विष उगलता था। 'इन्सान' को बन्द करने के जब सब साधन असफल सिद्ध हो चुके तो अन्तिम साधन रमेश बाबू को समाप्त करने का कमला ने विचारा था। यह सब सिद्धान्त की बात थी, कमला के व्यक्तिगत लाभ अथवा हानि की नहीं। कमला का व्यक्तित्व समाप्त हो चुका था और वह अब पार्टी की एक ऐसी कॉमरेड थी जिसका तन, मन, धन सब कुछ पार्टी के ही लिए था।

३२

रमेश बाबू के कमरे में जो चित्र लगा था रमा ने उसे उतारकर बहुत साव-धानी से साफ किया और उसी स्थान पर टाँग दिया। इसके पश्चात् रमा ने तमाम कमरे की सफाई की। जिस दिन से रमा आई थी रमेश बाबू का बहुत कुछ कार्य उसने अपने हाथों में ले लिया था। रमेश बाबू की प्रत्येक आवश्यकता से वह परिचित थी और यहाँ आकर तो उसने पत्र-व्यवहार का कार्य भी अपने ही हाथों में ले लिया था। आधी से अधिक डाक रमेश बाबू को देखने की आवश्यकता नहीं रही थी, रमा उनका उत्तर स्वयं दे देती थी। एक सप्ताह में ही रमेश बाबू को ऐसा लगा कि मानो उनके सिर का न जाने कितना भार हलका हो गया।

रशीदा का भी बोझ बहुत हलका हुआ और उसे नई जिम्मेदारी निभाने में सुगमता हुई। घूमने के लिए भी समय मिलने लगा। रशीदा को घूमने का पहले से ही

हुआ था, उस पर चाय बन रही थी। शान्ता आकर चटाई पर बैठ गई और कमला भी सामने आ बैठी। कमला मुस्कुरा कर बोली, "हमारी यह खराब दशा देखकर कोई कमजोरी का उपदेश न देना जीजी ! हम आत्म-विश्वास के साथ सुखी हैं अपनी इस कठिन परिस्थिति में भी।"

"मैं कठिन परिस्थिति देखकर कभी विचलित नहीं होती कमला ! क्योंकि मैं स्वयं इससे भी कठिन परिस्थितियों में रही हूँ। सन् ब्यालीस के आन्दोलन में मैंने जो कष्ट सहे हैं उनका आज अनुमान भी नहीं किया जा सकता। आजाद भैया इस बात के साक्षी हैं।" शान्ता कह रही थी।

"यही बात है कमला !" सिर हिलाते हुए आजाद ने कहा।

"मैं कभी-कभी विचलित हो उठती हूँ तुम्हारे प्रोग्रामों पर जो मैं दृढ़तापूर्वक कह सकती हूँ कि कभी-कभी बिलकुल बे सिर पैर के होते हैं।" शान्ता बोली।

"क्या ?" जरा त्यौरी चढ़ा कर कमला ने कहा। "मेरे प्रोग्राम बिना सिर-पैर के जीजी !—नॉनसैन्स—यह नहीं हो सकता। मेरे प्रोग्राम सब व्यवस्थित और समयानुकूल होते हैं। मैं जान गई कि आप आज मेरी परिस्थिति और असफलताओं का उपहास करने आई हैं। मैं कहे देती हूँ शान्ता जीजी ! कि मैं अपने मार्ग से नहीं हट सकती, नहीं हट सकती और मैं अब इस विषय पर एक बात भी सुनना नहीं चाहती !" कमला क्रोध से आग बगूला हो रही थी और उसकी आँखों के डोरे लाल हो चुके थे।

"अच्छा आजाद भैया नमस्कार ! भगवान् आप दोनों की रक्षा करे। मैं चली ?" इतना कहकर बिना कुछ कहे शान्ता खड़ी हो गई, कुछ भारी पन अपने मन में लिए। आजाद ने बैठने के लिए भी कहा परन्तु कमला कुछ नहीं बोली। शायद यदि कमला शान्ता को रुकने के लिए कहती तो वह एक दो मिनट और बैठ जाती, परन्तु नहीं ; वह चल दी उठ कर।

आजाद द्वार तक उठकर आया और बोला, "जीजी, क्षमा कर देना कमला को, तुम जानती हो इसका स्वभाव जैसा भी है।"

शान्ता मुस्कुरा दी और मुस्कुरा कर दो शब्दों में कहा, "मेरा भाई मुझसे छिन गया, मुझे यही खेद है। अच्छा नमस्कार !" इतना कहकर शान्ता की आँखों से आँसू बह निकले। आजाद का दिल भी भारी हो आया परन्तु आजाद के सिर पर जो कर्तव्य का पहाड़ रखा हुआ था उसे सिर से उतारना इस समय उसकी शक्ति में नहीं था। वह मौन पत्थर की मूर्ति के समान खड़ा रहा और उसके देखते-देखते शान्ता उसकी दृष्टि से ओझल हो गई।

"गई शान्ता बहन !" आजाद के अन्दर आने पर कमला ने पूछा।

"गई।" आजाद ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"क्यों, दिल भारी हो आया भाई बहन का? कर्तव्य-पथ पर चलने से पूर्व यही दशा होती है। ये आँसू कमजोरी की निशानी है, धोखा है।" कमला बोली।

"परन्तु शान्ता बहन तो धोखा नहीं है।" आजाद ने कहा।

"वह मोह हो सकती हैं और मोह भी धोखे का दूसरा नाम है।" गम्भीरतापूर्वक कमला ने कहा और वह इतना कह कर शान्त हो गई।

आजाद कुछ नहीं बोला। कमला का ऊँचा व्यक्तित्व उसके हृदय में घर कर चुका था उसके सामने किसी भी प्रकार का प्रलोभन उस पर असर नहीं कर सकता था। आजाद उद्यत था अपने कर्तव्य-पथ पर निर्भीकतापूर्वक चलने के लिए।

कमला की किसी से शत्रुता नहीं थी। वह रमेश बाबू को नहीं जानती थी और न उसने कभी उन्हें देखा ही था। कमला थी 'इन्सान' पत्र की शत्रु क्योंकि वह कम्यूनिस्ट पार्टी के विरुद्ध विष उगलता था। 'इन्सान' को बन्द करने के जब सब साधन असफल सिद्ध हो चुके तो अन्तिम साधन रमेश बाबू को समाप्त करने का कमला ने विचारा था। यह सब सिद्धान्त की बात थी, कमला के व्यक्तिगत लाभ अथवा हानि की नहीं। कमला का व्यक्तित्व समाप्त हो चुका था और वह अब पार्टी की एक ऐसी कॉमरेड थी जिसका तन, मन, धन सब कुछ पार्टी के ही लिए था।

३२

रमेश बाबू के कमरे में जो चित्र लगा था रमा ने उसे उतारकर बहुत सावधानी से साफ किया और उसी स्थान पर टाँग दिया। इसके पश्चात् रमा ने तमाम कमरे की सफाई की। जिस दिन से रमा आई थी रमेश बाबू का बहुत कुछ कार्य उसने अपने हाथों में ले लिया था। रमेश बाबू की प्रत्येक आवश्यकता से वह परिचित थी और यहाँ आकर तो उसने पत्र-व्यवहार का कार्य भी अपने ही हाथों में ले लिया था। आधी से अधिक डाक रमेश बाबू को देखने की आवश्यकता नहीं रही थी, रमा उनका उत्तर स्वयं दे देती थी। एक सप्ताह में ही रमेश बाबू को ऐसा लगा कि मानो उनके सिर का न जाने कितना भार हलका हो गया।

रशीदा का भी बोझ बहुत हलका हुआ और उसे नई जिम्मेदारी निभाने में सुगमता हुई। घूमने के लिए भी समय मिलने लगा। रशीदा को घूमने का पहले से ही

बड़ा शौक था। पहले वह अपने बूढ़े पिता के साथ घूमने जाया करती थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् कभी-कभी रमेश बाबू भी रशीदा को घुमाने अवश्य ले जाते थे परन्तु रमेश बाबू को घूमने का बिलकुल शौक नहीं था और जब कभी वह जाते भी थे तो केवल रशीदा के लिए। जब से रशीदा को अमरनाथजी का साथ मिला उस समय से रशीदा की यह इच्छा पूर्ण होने लगी और वह अब बहुत प्रसन्न थी।

प्रेस-संचालन के कार्य में रशीदा इतनी चतुर थी कि उसके सम्मुख हर व्यक्ति नहीं आ सकता था। हर प्रकार की व्यवस्था करना वह जानती थी और छपाई का तो उसे बहुत ही अच्छा ज्ञान था। क्या मजाल कि किसी फर्मे में दाब घट जाए या बढ़ जाए। कभी-कभी तो वह उस्ताद लतीफखाँ के भी कान काटने लगती थी और आखिर लतीफखाँ उस्ताद को यही कहना होता था, "हाँ हाँ ठीक है। इतनी देर तो हो गई इम्प्रेशन बनाते हुए। अब मशीन को चलने भी दोगी या नहीं। यह टाइप पुराना हो गया है इसलिए नया बदलवाने की चिन्ता करो।" यह सुनकर रशीदा मुस्कुरा देती और कहती "जी! नाच ना जाने आँगन टेढ़ा वाली बात है आपकी तो उस्ताद।" और बस इस पर उस्ताद बिगड़ बैठते और कहते, "मैं नाचना नहीं जानता। तुम तो कल की लल्ली हो। मेरे हाथ के सिखलाए हुए छोकरों ने आज दिल्ली भर के प्रेस सँभाले हुए हैं। बड़े-बड़े प्रेस।" और बस रशीदा मुस्कुराकर चली आती।

शान्ता का स्कूल उन्नति करके कॉलेज बन गया था और शान्ता ही उसकी प्रिंसिपल थी। शान्ता को कॉलेज के काम में इतना व्यस्त रहना पड़ता था कि वह हर समय रमेश बाबू से मिलने की इच्छा रखते हुए भी कार्यभार के कारण वहाँ नहीं जा पाती थीं और अन्त में सन्ध्या को जाने के लिए तैयार होती तो देखती कि रमा का हाथ में हाथ लिए स्वयं रमेश बाबू ही उसकी ओर लपके चले आ रहे हैं।

"यह कॉलेज मेरी जान को वबाल हो गया है रमेश बाबू" रमेश बाबू तथा रमा को बिठलाते हुए शान्ता बोली। "कितनी भी प्रयत्न चाहे क्यों न करूँ शीघ्र निबटने का परन्तु अन्त समय कुछ न कुछ काम ऐसा आकर अटकता है कि बस दो घण्टे यों ही चले जाते हैं और रोज आपको ही कष्ट करना पड़ता है इधर आने के लिए।"

"कष्ट करना पड़ता है।" मुस्कुराकर रमेश बाबू ने कहा "मुझे तो कोई कष्ट नहीं होता, हाँ तुम्हारी बहन रमा को होता हो तो इनसे पूछ लो भाई।"

और फिर तीनों में आनन्दपूर्वक गप्पें छिड़ जातीं। शान्ता और रमेश बाबू ने अपना गया हुआ जीवन फिर से वापस पा लिया।

शान्ता की बातें और दिन की अपेक्षा आज कुछ अधिक उखड़ी-उखड़ी हो रही

थीं यह रमा ने अनुभव किया और वह यह समझ गई कि शान्ता बहन अकेले में रमेश बाबू से कुछ कहना चाहती थीं। यह ताड़ते ही रमा एकदम खड़ी होती हुई बोली, "हाँ रमेश बाबू ! मैं तो भूल ही चली थी। मुझे तो अभी बाजार से भी बहुत-सा सामान खरीदना है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं कनॉट प्लेस से जाकर कुछ चीजें ले आती हूँ—आधे घण्टे में लौट आऊँगी।

"यहाँ अवकाश शान्ता से माँगना होगा रमा !" मुस्कुराकर रमेश बाबू ने कहा।

"शान्ता बहन से ही आज्ञा माँग रही हूँ।" मुस्कुराते हुए सरल स्वभाव से रमा बोली।

"चाय पीकर तो जाती रमा !" शान्ता ने कहा।

"चाय बनते-बनते तो मैं लौटकर भी आ जाऊँगी जीजी ! मेरे आने से पहले ही कहीं अपनी मीठी चाय समाप्त न कर देना।" तीनों प्यार से मुस्कुरा दिए और रमा अपना बैग उठाकर धीरे से एक ओर का द्वार खोल कर बैठक से बाहर हो गई।

रमा के चले जाने पर शान्ता ने ऐसा अनुभव किया कि अब वह राज की बात रमेश बाबू को बतला सकती है। शान्ता ने कहना प्रारम्भ किया, "रमेश बाबू आप समझ रहे होंगे कि मैं आज बहुत सुखी हूँ, परन्तु ऐसा नहीं है। शायद यह बात सुन कर आपको भी कष्ट होगा, इसलिए मैं आपको बतलाने में आज सात दिन से संकोच कर रही थी। आप शायद नहीं जानते कि यह कम्यूनिस्ट नेता 'आजाद' जिसे पकड़ने के लिए दिल्ली की पुलिस पागल हुई फिर रही है कौन है ?"

"क्या मेरा ही आजाद है यह शान्ता ?" बात को समझते हुए शीघ्रतापूर्वक रमेश बाबू बोले।

"हाँ ! यह आपका ही आजाद है, परन्तु आज पागल हो रहा है सिद्धान्तवाद के चक्कर में पड़कर एक नादान छोकरी के संकेत पर।" गम्भीरतापूर्वक शान्ता ने कहा और एक लम्बी गहरी दुःख भरी श्वाँस ली।

रमेश बाबू शान्ता के मुख पर इस प्रकार देख रहे थे कि मानो वह उसमें से कोई अपनी पुरानी खोई हुई वस्तु खोजना चाहते थे। शान्ता की आँखों की पुतलियों में रमेश बाबू ने आजाद की प्रतिमा देखी और वह आजाद से मिलने के लिए व्याकुल हो उठे।

"मैं आजाद को बचाने के लिए अपना कुछ सब बलिदान करने को उद्यत हूँ रमेश बाबू ! क्योंकि उन्होंने मेरी आबरू एक दिन गुण्डों के हाथों से बचाई थी, परन्तु क्या करूँ ? मेरा जादू काम नहीं करता उस सैनिक बुद्धि पर।" दुःखी होकर शान्ता ने कहा।

बड़ा शौक था। पहले वह अपने बूढ़े पिता के साथ घूमने जाया करती थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् कभी-कभी रमेश बाबू भी रशीदा को घुमाने अवश्य ले जाते थे परन्तु रमेश बाबू को घूमने का बिलकुल शौक नहीं था और जब कभी वह जाते भी थे तो केवल रशीदा के लिए। जब से रशीदा को अमरनाथजी का साथ मिला उस समय से रशीदा की यह इच्छा पूर्ण होने लगी और वह अब बहुत प्रसन्न थी।

प्रेस-संचालन के कार्य में रशीदा इतनी चतुर थी कि उसके सम्मुख हर व्यक्ति नहीं आ सकता था। हर प्रकार की व्यवस्था करना वह जानती थी और छपाई का तो उसे बहुत ही अच्छा ज्ञान था। क्या मजाल कि किसी फर्मे में दाब घट जाए या बढ़ जाए। कभी-कभी तो वह उस्ताद लतीफखाँ के भी कान काटने लगती थी और आखिर लतीफखाँ उस्ताद को यही कहना होता था, "हाँ हाँ ठीक है। इतनी देर तो हो गई इम्प्रेशन बनाते हुए। अब मशीन को चलने भी दोगी या नहीं। यह टाइप पुराना हो गया है इसलिए नया बदलवाने की चिन्ता करो।" यह सुनकर रशीदा मुस्कुरा देती और कहती "जी! नाच ना जाने आँगन टेढ़ा वाली बात है आपकी तो उस्ताद।" और बस इस पर उस्ताद बिगड़ बैठते और कहते, "मैं नाचना नहीं जानता। तुम तो कल की लल्ली हो। मेरे हाथ के सिखलाए हुए छोकरों ने आज दिल्ली भर के प्रेस सँभाले हुए हैं। बड़े-बड़े प्रेस।" और बस रशीदा मुस्कुराकर चली आती।

शान्ता का स्कूल उन्नति करके कॉलेज बन गया था और शान्ता ही उसकी प्रिंसिपल थी। शान्ता को कॉलेज के काम में इतना व्यस्त रहना पड़ता था कि वह हर समय रमेश बाबू से मिलने की इच्छा रखते हुए भी कार्यभार के कारण वहाँ नहीं जा पाती थीं और अन्त में सन्ध्या को जाने के लिए तैयार होती तो देखती कि रमा का हाथ में हाथ लिए स्वयं रमेश बाबू ही उसकी ओर लपके चले आ रहे हैं।

"यह कॉलेज मेरी जान को वबाल हो गया है रमेश बाबू" रमेश बाबू तथा रमा को बिठलाते हुए शान्ता बोली। "कितनी भी प्रयत्न चाहे क्यों न करूँ शीघ्र निबटने का परन्तु अन्त समय कुछ न कुछ काम ऐसा आकर अटकता है कि बस दो घण्टे यों ही चले जाते हैं और रोज आपको ही कष्ट करना पड़ता है इधर आने के लिए।"

"कष्ट करना पड़ता है।" मुस्कुराकर रमेश बाबू ने कहा "मुझे तो कोई कष्ट नहीं होता, हाँ तुम्हारी बहन रमा को होता हो तो इनसे पूछ लो भाई।"

और फिर तीनों में आनन्दपूर्वक गप्पें छिड़ जातीं। शान्ता और रमेश बाबू ने अपना गया हुआ जीवन फिर से वापस पा लिया।

शान्ता की बातें और दिन की अपेक्षा आज कुछ अधिक उखड़ी-उखड़ी हो रही

थीं यह रमा ने अनुभव किया और वह यह समझ गई कि शान्ता बहन अकेले में रमेश बाबू से कुछ कहना चाहती थीं। यह ताड़ते ही रमा एकदम खड़ी होती हुई बोली, "हाँ रमेश बाबू! मैं तो भूल ही चली थी। मुझे तो अभी बाजार से भी बहुत-सा सामान खरीदना है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं कनॉट प्लेस से जाकर कुछ चीजें ले आती हूँ—आधे घण्टे में लौट आऊँगी।

"यहाँ अवकाश शान्ता से माँगना होगा रमा!" मुस्कुराकर रमेश बाबू ने कहा।

"शान्ता बहन से ही आज्ञा माँग रही हूँ।" मुस्कुराते हुए सरल स्वभाव से रमा बोली।

"चाय पीकर तो जाती रमा!" शान्ता ने कहा।

"चाय बनते-बनते तो मैं लौटकर भी आ जाऊँगी जीजी! मेरे आने से पहले ही कहीं अपनी मीठी चाय समाप्त न कर देना।" तीनों प्यार से मुस्कुरा दिए और रमा अपना बैग उठाकर धीरे से एक ओर का द्वार खोल कर बैठक से बाहर हो गई।

रमा के चले जाने पर शान्ता ने ऐसा अनुभव किया कि अब वह राज की बात रमेश बाबू को बतला सकती है। शान्ता ने कहना प्रारम्भ किया, "रमेश बाबू आप समझ रहे होंगे कि मैं आज बहुत सुखी हूँ, परन्तु ऐसा नहीं है। शायद यह बात सुन कर आपको भी कष्ट होगा, इसलिए मैं आपको बतलाने में आज सात दिन से संकोच कर रही थी। आप शायद नहीं जानते कि यह कम्यूनिस्ट नेता 'आजाद' जिसे पकड़ने के लिए दिल्ली की पुलिस पागल हुई फिर रही है कौन है?"

"क्या मेरा ही आजाद है यह शान्ता?" बात को समझते हुए शीघ्रतापूर्वक रमेश बाबू बोले।

"हाँ! यह आपका ही आजाद है, [परन्तु आज पागल हो रहा है सिद्धान्तवाद के चक्कर में पड़कर एक नादान छोकरी के संकेत पर।" गम्भीरतापूर्वक शान्ता ने कहा और एक लम्बी गहरी दुःख भरी श्वाँस ली।

रमेश बाबू शान्ता के मुख पर इस प्रकार देख रहे थे कि मानो वह उसमें से कोई अपनी पुरानी खोई हुई वस्तु खोजना चाहते थे। शान्ता की आँखों की पुतलियों में रमेश बाबू ने आजाद की प्रतिमा देखी और वह आजाद से मिलने के लिए व्याकुल हो उठे।

"मैं आजाद को बचाने के लिए अपना कुछ सब बलिदान करने को उद्यत हूँ रमेश बाबू! क्योंकि उन्होंने मेरी आबरू एक दिन गुण्डों के हाथों से बचाई थी, परन्तु क्या करूँ? मेरा जादू काम नहीं करता उस सैनिक बुद्धि पर।" दुःखी होकर शान्ता ने कहा।

"वह सचमुच एक सच्चा और वीर सैनिक है शान्ता ! मैंने उसके व्यक्तित्व को बनाने में तपस्या की है, वह हीरा है। मैं उसे पाने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा।" रमेश बाबू गम्भीरतापूर्वक बोले।

रमेश बाबू के ये शब्द सुनकर शान्ता के चित्त को कुछ शान्ति मिली। इस प्रकार के शब्द रमेश बाबू के मुख से निकलना कोई साधारण बात नहीं थी। जिस वस्तु को रमेश बाबू पाना चाहें और वह उसमें सफल न हों, यह शान्ता ने अपने पिछले जीवन में कभी नहीं देखा था।

"परन्तु समस्या इतनी सरल नहीं है रमेश बाबू ! गाँठ इतनी मजबूत बन चुकी है कि उसे खोलने में मेरा प्रयास निष्फल सिद्ध हो चुका है।" शान्ता ने कहा, "आजाद भैया को मालूम नहीं है कि 'इन्सान कार्यालय' का संचालक उसका अपना ही रमेश है। कमला के सब प्रयास इस कार्यालय को समाप्त कर देने के लिए निष्फल सिद्ध हुए और अन्त में अब उसने ठानी है खून करा देने की।" कुछ भयभीत होकर शान्ता ने कहा।

"खून करा देने की ?" आश्चर्य के साथ रमेश बाबू ने कहा, "किसका ? मेरा खून करने की ?" कहकर रमेश बाबू मुस्कुरा दिए। इस समय रमेश बाबू की मुस्कुराहट ऐसी प्रतीत हुई कि मानो कोई गहन गम्भीर बादल में बिजली चमकी हो। फिर उसी गम्भीरता के साथ रमेश बाबू ने कहना प्रारम्भ किया, "आज यह वादों का युग कहा जाता है। वाद का सूक्ष्म अर्थ मत है। मत का सम्बन्ध शक्ति से उतना अधिक नहीं है शान्ता ! जितना आत्मा से है। मैं कहता हूँ कि वह दिन अवश्य आएगा जब ये सब शस्त्र आत्मिक शक्ति के सामने रखे रह जाएँगे। किसी को मार डालने से उसके विचारों का नाश नहीं होता, बल्कि फैलाव और अधिक बढ़ता है। महात्मा ईसा को मारकर ईसाई धर्म समाप्त नहीं हुआ। गांधीजी को मारने से कांग्रेस की जड़ें पाताल को चली गई, कांग्रेस की डांवांडोल परिस्थिति को बल मिला।

यही दशा मेरे मरने के पश्चात् मेरे कार्यालय की भी होगी। यह पत्र मैंने इन्सानियत के नाम पर निकाला है, और कोई भी व्यक्ति जिसमें दबे रूप में भी इन्सानियत वर्तमान है, वह मुझे नहीं मार सकता, और फिर आजाद ! वह तो अपना बच्चा है, एक नादान बच्चा, जिसके दूध के दाँत भी अभी नहीं टूटने पाए हैं !"

शान्ता ने ये शब्द घन-गर्जन के समान सुने और देखा कि उसका पुराना रमेश अपनी महानता में कितना आगे बढ़ गया था ? कितना जबरदस्त आत्म-विश्वास था रमेश बाबू में। शान्ता एक क्षण चुप रहकर फिर कहने लगी, "आजाद का मैं सात दिन से बराबर रात्रि भर पीछा कर रही हूँ..."

"और मैं तुम दोनों को घूमते देखता हूँ, परन्तु पहचान नहीं पाया था।"

मुस्कुराकर रमेश बाबू ने कहा। शान्ता का सिर मेज पर लग गया। रमेश बाबू ने प्यार भरे अपने दोनों हाथ शान्ता के सिर पर रख दिए और फिर धीरे से शान्ता की ठोडी दो ऊँगलियों से ऊपर उठाकर कहा, "शान्ता! तुम्हारा रमेश जब आज तक नहीं मर सका तो इन बच्चों में इतना साहस कहाँ जो मुझे मार सकें। इन्हे मैं अपने हाथों का खिलौना समझता हूँ। यदि विश्वास न हो तो मैं अकेला तुम्हारे साथ उनके निवासस्थान पर चल सकता हूँ।"

शान्ता को रमेश बाबू पर विश्वास न होता यह भला किस प्रकार सम्भव था, परन्तु हाँ आजाद से अब उसका विश्वास उठ चुका था। हो सकता है कमला के पीछे पागल बना हुआ आजाद, जो शान्ता को भूल सकता है, वह रमेश बाबू, को भी भूल चुका हो। शान्ता डरी कि कहीं उसने भूल तो नहीं की है रमेश बाबू को आजाद का इस प्रकार ज्ञान कराकर, परन्तु अन्त में मन ने यही कहा, "नहीं सब ठीक ही है जो कुछ हुआ।"

शान्ता बोली, "कमला बड़ी दुष्ट लड़की है रमेश बाबू! वह इतनी नटखट है कि मैं उसे प्यार करने लगी हूँ। परन्तु कुछ दिन से पता नहीं क्यों उसके मस्तिष्क पर कुछ पागलपन-सा सवार हो गया है। उसकी दशा अवश्य खराब हो जाएगी। वह जीवन में जितनी गम्भीर बनती जा रही है उसे उतनी ही उपहास की पात्री मानती हूँ और मुझे यही डर है कि कहीं वह इसी गर्मी में पागल न हो जाए।" शान्ता सरल स्वभाव से बोली।

"तो तुम्हारी दया की पात्री है कमला भी।" रमेश बाबू ने पूछा और शान्ता के जीवन की विशालता की मन-ही-मन सराहना की। रमेश बाबू सोचने लगे कि, 'वाह! नारी का कितना सुन्दर और विशाल स्वरूप है? इस नारी के लिए संसार में सभी अपने हैं और सबके लिए दया और हृदय में स्थान है। कितना व्यापक प्रेम है इसका कि जिसमें पराया कोई है ही नहीं। इसका प्रेम मानव मात्र के लिए है। राजनैतिक वाद विवादों से पृथक् रहकर यह इन्सान को प्रेम करती है।'

"एक दिन कमला ने मुझे दुत्कार दिया अपने द्वार पर रमेश बाबू! मैंने उस दिन समझ लिया कि आज यह वास्तव में पागल हो गई है। क्योंकि उस दिन उसे यह भी ज्ञान नहीं रहा था कि वह यह पहचान सके कि वह किससे बातें कर रही है? झूठ नहीं कहूँगी रमेश बाबू! वह मेरा इतना सम्मान करती है, जितना शायद उसने कभी अपनी माँ का भी न किया हो, परन्तु उस दिन मुझे दुत्कार दिया। मैं दुत्कारी जाकर भी चुपचाप चली आई, परन्तु इससे उसका स्नेह मेरे हृदय में कम नहीं हुआ। उस पगली के जीवन को भी कोई दिशा आप दें रमेश बाबू! मैं हार चुकी उसे समझा-समझाकर।" शान्ता बोली।

"वह सचमुच एक सच्चा और वीर सैनिक है शान्ता ! मैंने उसके व्यक्तित्व को बनाने में तपस्या की है, वह हीरा है। मैं उसे पाने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा।" रमेश बाबू गम्भीरतापूर्वक बोले।

रमेश बाबू के ये शब्द सुनकर शान्ता के चित्त को कुछ शान्ति मिली। इस प्रकार के शब्द रमेश बाबू के मुख से निकलना कोई साधारण बात नहीं थी। जिस वस्तु को रमेश बाबू पाना चाहें और वह उसमें सफल न हों, यह शान्ता ने अपने पिछले जीवन में कभी नहीं देखा था।

"परन्तु समस्या इतनी सरल नहीं है रमेश बाबू ! गाँठ इतनी मजबूत बन चुकी है कि उसे खोलने में मेरा प्रयास निष्फल सिद्ध हो चुका है।" शान्ता ने कहा, "आजाद भैया को मालूम नहीं है कि 'इन्सान कार्यालय' का संचालक उसका अपना ही रमेश है। कमला के सब प्रयास इस कार्यालय को समाप्त कर देने के लिए निष्फल सिद्ध हुए और अन्त में अब उसने ठानी है खून करा देने की।" कुछ भयभीत होकर शान्ता ने कहा।

"खून करा देने की ?" आश्चर्य के साथ रमेश बाबू ने कहा, "किसका ? मेरा खून करने की ?" कहकर रमेश बाबू मुस्कुरा दिए। इस समय रमेश बाबू की मुस्कुराहट ऐसी प्रतीत हुई कि मानो कोई गहन गम्भीर बादल में बिजली चमकी हो। फिर उसी गम्भीरता के साथ रमेश बाबू ने कहना प्रारम्भ किया, "आज यह वादों का युग कहा जाता है। वाद का सूक्ष्म अर्थ मत है। मत का सम्बन्ध शक्ति से उतना अधिक नहीं है शान्ता ! जितना आत्मा से है। मैं कहता हूँ कि वह दिन अवश्य आएगा जब ये सब शस्त्र आत्मिक शक्ति के सामने रखे रह जाएँगे। किसी को मार डालने से उसके विचारों का नाश नहीं होता, बल्कि फैलाव और अधिक बढ़ता है। महात्मा ईसा को मारकर ईसाई धर्म समाप्त नहीं हुआ। गांधीजी को मारने से कांग्रेस की जड़ें पाताल को चली गईं, कांग्रेस की डांवांडोल परिस्थिति को बल मिला।

यही दशा मेरे मरने के पश्चात् मेरे कार्यालय की भी होगी। यह पत्र मैंने इन्सानियत के नाम पर निकाला है, और कोई भी व्यक्ति जिसमें दबे रूप में भी इन्सानियत वर्तमान है, वह मुझे नहीं मार सकता, और फिर आजाद ! वह तो अपना बच्चा है, एक नादान बच्चा, जिसके दूध के दाँत भी अभी नहीं टूटने पाए हैं !"

शान्ता ने ये शब्द घन-गर्जन के समान सुने और देखा कि उसका पुराना रमेश अपनी महानता में कितना आगे बढ़ गया था ? कितना जबरदस्त आत्म-विश्वास था रमेश बाबू में। शान्ता एक क्षण चुप रहकर फिर कहने लगी, "आजाद का मैं सात दिन से बराबर रात्रि भर पीछा कर रही हूँ..."

"और मैं तुम दोनों को घूमते देखता हूँ, परन्तु पहचान नहीं पाया था।"

मुस्कुराकर रमेश बाबू ने कहा। शान्ता का सिर मेज पर लग गया। रमेश बाबू ने प्यार भरे अपने दोनों हाथ शान्ता के सिर पर रख दिए और फिर धीरे से शान्ता की ठोडी दो ऊँगलियों से ऊपर उठाकर कहा, "शान्ता ! तुम्हारा रमेश जब आज तक नहीं मर सका तो इन बच्चों में इतना साहस कहाँ जो मुझे मार सकें। इन्हे मैं अपने हाथों का खिलौना समझता हूँ। यदि विश्वास न हो तो मैं अकेला तुम्हारे साथ उनके निवासस्थान पर चल सकता हूँ।"

शान्ता को रमेश बाबू पर विश्वास न होता यह भला किस प्रकार सम्भव था, परन्तु हाँ आजाद से अब उसका विश्वास उठ चुका था। हो सकता है कमला के पीछे पागल बना हुआ आजाद, जो शान्ता को भूल सकता है, वह रमेश बाबू, को भी भूल चुका हो। शान्ता डरी कि कहीं उसने भूल तो नहीं की है रमेश बाबू को आजाद का इस प्रकार ज्ञान कराकर, परन्तु अन्त में मन ने यही कहा, "नहीं सब ठीक ही है जो कुछ हुआ।"

शान्ता बोली, "कमला बड़ी दुष्ट लड़की है रमेश बाबू ! वह इतनी नटखट है कि मैं उसे प्यार करने लगी हूँ। परन्तु कुछ दिन से पता नहीं क्यों उसके मस्तिष्क पर कुछ पागलपन-सा सवार हो गया है। उसकी दशा अवश्य खराब हो जाएगी। वह जीवन में जितनी गम्भीर बनती जा रही है उसे उतनी ही उपहास की पात्री मानती हूँ और मुझे यही डर है कि कहीं वह इसी गर्मी में पागल न हो जाए।" शान्ता सरल स्वभाव से बोली।

"तो तुम्हारी दया की पात्री है कमला भी।" रमेश बाबू ने पूछा और शान्ता के जीवन की विशालता की मन-ही-मन सराहना की। रमेश बाबू सोचने लगे कि, 'वाह ! नारी का कितना सुन्दर और विशाल स्वरूप है ? इस नारी के लिए संसार में सभी अपने हैं और सबके लिए दया और हृदय में स्थान है। कितना व्यापक प्रेम है इसका कि जिसमें पराया कोई है ही नहीं। इसका प्रेम मानव मात्र के लिए है। राजनैतिक वाद विवादों से पृथक् रहकर यह इन्सान को प्रेम करती है।'

"एक दिन कमला ने मुझे दुत्कार दिया अपने द्वार पर रमेश बाबू ! मैंने उस दिन समझ लिया कि आज यह वास्तव में पागल हो गई है। क्योंकि उस दिन उसे यह भी ज्ञान नहीं रहा था कि वह यह पहचान सके कि वह किससे बातें कर रही है ? झूठ नहीं कहूँगी रमेश बाबू ! वह मेरा इतना सम्मान करती है, जितना शायद उसने कभी अपनी माँ का भी न किया हो, परन्तु उस दिन मुझे दुत्कार दिया। मैं दुत्कारी जाकर भी चुपचाप चली आई, परन्तु इससे उसका स्नेह मेरे हृदय में कम नहीं हुआ। उस पगली के जीवन को भी कोई दिशा आप दें रमेश बाबू ! मैं हार चुकी उसे समझा-समझाकर।" शान्ता बोली।

रमेश बाबू की समझ काम नहीं कर रही थी इसलिए उन्होंने इस इस समय विषय को स्थगित करने के लिए कहा और विचारने के लिए एक लम्बा विराम लगा दिया। बातें समाप्त हो ही रही थीं कि रमा कुछ फल लेकर आ गई।

"अरे यह क्या ?" शान्ता ने रमा से कहा, "तुम यह सब भला क्यों ले आईं ? यहाँ क्या कोई बच्चा है जो इन्हें खाएगा ? छोटी शान्ता है सो वह स्कूल के होस्टल में ही रहती है।"

"यह छोटी शान्ता कौन है शान्ता ! तुमने यह रहस्य तो बतलाया ही नहीं।" रमेश बाबू ने पूछा।

"यह आजाद भैया की दी हुई निशानी है रमेश बाबू ! लाहौर में उन्होंने सौंपी थी कि तुम हिन्दुस्तान चली जाओ, मैं खर्चा भेजता रहूँगा। यह भी मेरी ही तरह एक अनाथ कन्या है, जिसे उस लाहौर के हत्याकाण्ड से आजाद भैया ने बचाया था ?" शान्ता बोली।

"समझा ?" रमेश बाबू ने कहा, "तो आजाद का यह रूप देहली में ही आकर बना। यहाँ आते ही यह स्टेशन से कमला के पल्ले पड़ गया। कमला इसे अपने 'होम' में ले गई और इस नाटकीय ढंग से उसके सामने प्रकट हुई कि उसने उसे देवि समझ-कर पूजना प्रारम्भ कर दिया। पथभ्रष्ट पथिक को एक सहारा मिल गया, परन्तु मिल गया गलत मार्ग का, यही खेद रहा। योग्यता और वीरता आजाद में पर्याप्त थी ही उसके आने से पार्टी में जान आगई। परन्तु यह सब कुछ बुरा ही हुआ शान्ता।" रमेश बाबू बोले।

"जो कुछ भी हुआ वह सब हुआ परिस्थितियों से टकराकर। टक्कर खाकर किसी का रास्ता क्या बनता है यह पहले से कोई अनुमान नहीं लगा सकता। यही दशा आजाद भैया की भी हुई। पाकिस्तान इन्हें छोड़ना पड़ा इस अपराध में कि इन्होंने दो मुसलमानों को मारकर दो हिन्दू लड़कियों को बचाया था। उसी व्यक्ति का आज वारंट है इस अपराध में कि वह कम्यूनिस्ट है और उपद्रवकारी बातें फैलाता है। शहर का शान्तिपूर्ण वातावरण दूषित करता है।" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

रमेश बाबू भी कांग्रेस सरकार से मत-भेद रखते थे, परन्तु वह मत-भेद सुधारात्मक होता था, केवल छीछालेदर करने या बुरा भला कहने मात्र के लिए नहीं। रमेश बाबू एक पत्रकार थे और पत्रकार के नाते सब कुछ देखते और अध्ययन करते थे परन्तु आजाद का जीवन उस साँचे में नहीं ढला था। वह सिपाही था, हुक्म चाहता था। विचारने के लिए उसके पास मस्तिष्क नहीं था।

रमा सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गई और उसने टेबिलफेन का रुख अपनी ओर करते हुए कहा, "आपके सामने तो मैं भी बच्ची ही हूँ। कहिए नहीं हूँ क्या ? फिर

इन फलों को आपके द्वारा दिए जाने पर मैं भला क्यों नहीं खा सकती शान्ता बहन ?" मुस्कुराकर रमा बोली।

रमा की इस बात पर शान्ता और रमेश बाबू दोनों मुस्कुरा दिए। फिर रमा ने चाय बनाई और तीनों ने आनन्दपूर्वक पी। चाय पर और कुछ इधर-उधर की गप्पें चलती रहीं और फिर रशीदा तथा अमरनाथजी की आपस की नोंकझोंकों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। शान्ता बोली, "मैंने सुना है कि आजकल रशीदा बहन अमरनाथजी से बहुत नाराज हैं।"

"जी हाँ'।" रमा ने मुस्कुराकर कहा, "लेकिन मियाँ बीवी का क्या झगड़ा, आज हुआ कल सफा। नहीं तो गाड़ी कैसे चले ?"

"परन्तु मैंने सुना है कि इस बार बोल-चाल की हड़ताल को हुए पाँच दिन हो गए हैं।" शान्ता ने पूछा।

"जी हाँ।" गम्भीरतापूर्वक रमा ने कहा, "यही बात है। अब मैं समझती हूँ कि रशीदा पर भी कुछ-कुछ कम्यूनिस्टों का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया है।"

"और अमरनाथजी पर ?" रमेश बाबू ने पूछा।

"उनके विषय में आपको बतलाना होगा।" रमा ने उत्तर दिया।

"मेरा विचार है कि वह अब ज्ञानी बनते जा रहे हैं, दुनिया से दूर, संसार से परे।" रमेश बाबू बोले।

"यही बात है। वह एक हीरे की कद्र नहीं कर सके ?" रमा बोली।

"या यों कहो कि हीरा गलत हाथों में जा पड़ा।" रमेश बाबू बोले।

"तब क्या आप रशीदा के हाथों को गलत बतला रहे हैं ?" रमा ने पूछा।

"नहीं रमा ! तुम नहीं जान पाई कि ये दोनों ही हीरे हैं। अमरनाथजी के साथ विवाह करने के लिए एक देहाती सीधी-सादी लड़की की आवश्यकता थी जो खाना बना कर खिला दे और बस फिर अमरनाथजी को विचार करने के लिए छोड़ दे। धन की इच्छा रखने वाली स्त्री भी इनसे मेल नहीं खा सकती। फिर रही रशीदा की बात उसके लिए चाहिए था आजाद जैसा एक अपटूडेट नौजवान जो हर समय हवाई घोड़े पर सवार रहे। दोनों हीरे हैं, परन्तु एकदम गलत स्थान पर जीवन में फिट हो गए हैं।" रमेश बाबू ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

रमा चुप थी और शान्ता ने कुछ बोलना नहीं चाहा। जब रशीदा और आजाद के जीवनों पर शान्ता ने दृष्टि डाली तो उसे एक वास्तविक जीवन के सुखमय समन्वय की भावना मिली और मन कह उठा कि हाँ अवश्य यदि आजाद और रशीदा का विवाह हो गया होता तो एक आदर्श जोड़ा बनता। कितना मेल खाता उन दोनों के स्वभाव का।

रमेश बाबू की समझ काम नहीं कर रही थी इसलिए उन्होंने इस इस समय विषय को स्थगित करने के लिए कहा और विचारने के लिए एक लम्बा विराम लगा दिया। बातें समाप्त हो ही रही थीं कि रमा कुछ फल लेकर आ गई।

"अरे यह क्या ?" शान्ता ने रमा से कहा, "तुम यह सब भला क्यों ले आईं ? यहाँ क्या कोई बच्चा है जो इन्हें खाएगा ? छोटी शान्ता है सो वह स्कूल के होस्टल में ही रहती है।"

"यह छोटी शान्ता कौन है शान्ता ! तुमने यह रहस्य तो बतलाया ही नहीं।" रमेश बाबू ने पूछा।

"यह आजाद भैया की दी हुई निशानी है रमेश बाबू ! लाहौर में उन्होंने सौंपी थी कि तुम हिन्दुस्तान चली जाओ, मैं खर्चा भेजता रहूँगा। यह भी मेरी ही तरह एक अनाथ कन्या है, जिसे उस लाहौर के हत्याकाण्ड से आजाद भैया ने बचाया था ?" शान्ता बोली।

"समझा ?" रमेश बाबू ने कहा, "तो आजाद का यह रूप देहली में ही आकर बना। यहाँ आते ही यह स्टेशन से कमला के पल्ले पड़ गया। कमला इसे अपने 'होम' में ले गई और इस नाटकीय ढंग से उसके सामने प्रकट हुई कि उसने उसे देवि समझ-कर पूजना प्रारम्भ कर दिया। पथभ्रष्ट पथिक को एक सहारा मिल गया, परन्तु मिल गया गलत मार्ग का, यही खेद रहा। योग्यता और वीरता आजाद में पर्याप्त थी ही उसके आने से पार्टी में जान आगई। परन्तु यह सब कुछ बुरा ही हुआ शान्ता।" रमेश बाबू बोले।

"जो कुछ भी हुआ वह सब हुआ परिस्थितियों से टकराकर। टक्कर खाकर किसी का रास्ता क्या बनता है यह पहले से कोई अनुमान नहीं लगा सकता। यही दशा आजाद भैया की भी हुई। पाकिस्तान इन्हें छोड़ना पड़ा इस अपराध में कि इन्होंने दो मुसलमानों को मारकर दो हिन्दू लड़कियों को बचाया था। उसी व्यक्ति का आज वारंट है इस अपराध में कि वह कम्यूनिस्ट है और उपद्रवकारी बातें फैलाता है। शहर का शान्तिपूर्ण वातावरण दूषित करता है।" शान्ता ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

रमेश बाबू भी कांग्रेस सरकार से मत-भेद रखते थे, परन्तु वह मत-भेद सुधारात्मक होता था, केवल छीछालेदर करने या बुरा भला कहने मात्र के लिए नहीं। रमेश बाबू एक पत्रकार थे और पत्रकार के नाते सब कुछ देखते और अध्ययन करते थे परन्तु आजाद का जीवन उस साँचे में नहीं ढला था। वह सिपाही था, हुक्म चाहता था। विचारने के लिए उसके पास मस्तिष्क नहीं था।

रमा सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गई और उसने टेबिलफेन का रुख अपनी ओर करते हुए कहा, "आपके सामने तो मैं भी बच्ची ही हूँ। कहिए नहीं हूँ क्या ? फिर

इन फलों को आपके द्वारा दिए जाने पर मैं भला क्यों नहीं खा सकती शान्ता बहन ?" मुस्कुराकर रमा बोली ।

रमा की इस बात पर शान्ता और रमेश बाबू दोनों मुस्कुरा दिए । फिर रमा ने चाय बनाई और तीनों ने आनन्दपूर्वक पी । चाय पर और कुछ इधर-उधर की गप्पें चलती रहीं और फिर रशीदा तथा अमरनाथजी की आपस की नोंकझोंकों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ । शान्ता बोली, "मैंने सुना है कि आजकल रशीदा बहन अमरनाथजी से बहुत नाराज हैं ।"

"जी हाँ" ।" रमा ने मुस्कुराकर कहा, "लेकिन मियाँ बीवी का क्या झगड़ा, आज हुआ कल सफा । नहीं तो गाड़ी कैसे चले ?"

"परन्तु मैंने सुना है कि इस बार बोल-चाल की हड़ताल को हुए पाँच दिन हो गए हैं ।" शान्ता ने पूछा ।

"जी हाँ ।" गम्भीरतापूर्वक रमा ने कहा, "यही बात है । अब मैं समझती हूँ कि रशीदा पर भी कुछ-कुछ कम्यूनिस्टों का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया है ।"

"और अमरनाथजी पर ?" रमेश बाबू ने पूछा ।

"उनके विषय में आपको बतलाना होगा ।" रमा ने उत्तर दिया ।

"मेरा विचार है कि वह अब ज्ञानी बनते जा रहे हैं, दुनिया से दूर, संसार से परे ।" रमेश बाबू बोले ।

"यही बात है । वह एक हीरे की कद्र नहीं कर सके ?" रमा बोली ।

"या यों कहो कि हीरा गलत हाथों में जा पड़ा ।" रमेश बाबू बोले ।

"तब क्या आप रशीदा के हाथों को गलत बतला रहे हैं ?" रमा ने पूछा ।

"नहीं रमा ! तुम नहीं जान पाई कि ये दोनों ही हीरे हैं । अमरनाथजी के साथ विवाह करने के लिए एक देहाती सीधी-सादी लड़की की आवश्यकता थी जो खाना बना कर खिला दे और बस फिर अमरनाथजी को विचार करने के लिए छोड़ दे । धन की इच्छा रखने वाली स्त्री भी इनसे मेल नहीं खा सकती । फिर रही रशीदा की बात उसके लिए चाहिए था आजाद जैसा एक अपटूडेट नौजवान जो हर समय हवाई घोड़े पर सवार रहे । दोनों हीरे हैं, परन्तु एकदम गलत स्थान पर जीवन में फिट हो गए हैं ।" रमेश बाबू ने गम्भीरतापूर्वक कहा ।

रमा चुप थी और शान्ता ने कुछ बोलना नहीं चाहा । जब रशीदा और आजाद के जीवनों पर शान्ता ने दृष्टि डाली तो उसे एक वास्तविक जीवन के सुखमय समन्वय की भावना मिली और मन कह उठा कि हाँ अवश्य यदि आजाद और रशीदा का विवाह हो गया होता तो एक आदर्श जोड़ा बनता । कितना मेल खाता उन दोनों के स्वभाव का ।

तीनों ने बड़े प्रेम से चाय पी और फिर रमा तथा रमेश बाबू वहाँ से विदा हुए। शान्ता ने दूसरे दिन सन्ध्या को पाँच बजे रमेश बाबू के यहाँ आने का वचन दिया।

३३

कमला की दशा दिन-प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। उसकी राजनीति का दम घुटने लगा था, परन्तु वह अटल थी अपने विचारों पर। उसे विश्वास था कि हो सकता है उसे इस समय अपने उद्देश्य में सफलता न मिल सके, क्योंकि परि-स्थितियाँ इस समय स्पष्ट होती जा रही थीं, परन्तु एक-न-एक दिन वह समय अवश्य आएगा जब भारत के कोने-कोने में कम्यूनिज्म छा जाएगा। हो सकता है कि उसने जो कुछ भी किया हो वह समय से पूर्व हो और यही कारण हो उसकी असफलता का, परन्तु जन-साधारण की अंक में पलते हुए कम्यूनिज्म को वह स्पष्ट देख रही थी।

कमला के जीवन में संतोष के लिए कोई स्थान नहीं था, कल के लिए कोई स्थान नहीं था, अकर्मण्यता के लिए कोई स्थान नहीं था और अन्त में भय के लिए कोई स्थान नहीं था। यह एक निर्भीक लड़की थी जिसका बचपन चांचल्य में व्यतीत हुआ, परन्तु जवानी में उसने संसार भर के मजदूरों का दर्द अपने दिल में छुपा लिया था। छोटा-सा दिल, भार इतना बड़ा, साहस प्रशंसनीय अवश्य था परन्तु बोझा अधिक होने के कारण सफलता के लिए कम ही स्थान था।

कमला और आजाद आजकल सारा-सारा दिन एक ही स्थान पर पड़े रहते थे परन्तु, कभी-कभी तमाम दिन कोई बात नहीं होती। आजाद कमला को हर प्रकार का आश्वासन देता कि वह अपने कार्य में एक-न-एक दिन अवश्य सफल होगा परन्तु कमला के चित्त को शान्ति नहीं मिलती। एक दिन जब कमला को आजाद ने अधिक दुखी देखा तो वह बोला, "अच्छा कमला ! मैं अभी इसी समय दिन में जाता हूँ और सीधा जाकर उस पाजी का काम तमाम करता हूँ। जिसने तेरी यह दशा कर दी है। तू खड़ी हो और चाय बनाने की तैयारी कर। तुम्हारे हाथ का एक कप चाय पीकर मैं आज तुमसे अन्तिम विदा लूँगा।" कहकर आजाद ने कमला का हाथ अपने हाथ में कर उसे खड़ा करने का प्रयत्न किया।

कमला पागल की तरह आजाद से लिपट गई और अस्पष्ट से शब्दों में बोली

"नहीं ! नहीं ! इस समय नहीं। मैं इस समय आपको नहीं जाने दूंगी। आप देख रहे हैं कि मैं पागल हो चली हूँ। मुझे अपनी सुधि कभी-कभी घंटों तक नहीं आती। मैं स्वप्न में देखा करती हूँ कि भारत भी वैसा सुन्दर रूस बन गया है ? यहाँ की अब हर चीज ताजा है, किसी में गली-सड़ी बदबू नहीं आती, हर वस्तु अपनी है, सरकार अपनी है, बच्चे अपने हैं, देश के हैं, राष्ट्र के हैं, राष्ट्र अपना है। राष्ट्र अब पत्थर के स्टैचू के समान नहीं है बल्कि अधिकार पूर्ण है। समाज में कोई बड़ा या छोटा नहीं, सब बराबर हैं। सब काम करते हैं और पेट भर कर अच्छा खाना खाते हैं। सब एक साथ बैठकर एक मेज पर खाते हैं। जैसा 'होम' मैंने तैयार किया था उसी प्रकार के होम हिन्दुस्तान के हर शहर और हर गाँव में बन गए हैं, और वर्तमान घरों का तरीका ही बदल गया है। मैं वास्तव में पागल हो गई हूँ आजाद बाबू ! आप मुझे छोड़कर न जाना।" कमला कहती गई।

आज पहली बार यह कमजोरी की बात, जाने या अनजाने रूप में, कमला के मुख से निकली। आजाद समझ गया कि यह पागल हो चुकी है और अब वह क्या करे, यह स्वयं उसी की समझ में नहीं आ रहा था। किसी भी वस्तु को विचारना आजाद का काम नहीं था। वह केवल कर सकता था, परन्तु आज कराने वाले की भी दशा बदल चुकी थी।

आजाद चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया और उसे कुछ समझ में न आया कि वह क्या करे ? बहुत देर मौन रहने के पश्चात् कमला ने फिर कहना प्रारम्भ किया "आजाद बाबू ! समय ने साथ नहीं दिया, परिस्थितियाँ विपरीत होती चली गईं। भारत की जनता अभी कम्यूनिस्ट-विचारों को भली प्रकार नहीं समझती। तुम में भी समझने की शक्ति कम है और विकास के लिए सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। मैं इसे अपनी हार नहीं मान सकती और न अपने उद्देश्य की ही हार मानती हूँ। मेरा उद्देश्य अटल है, अविचल है। संसार को कम्यूनिस्ट बनना होगा एक दिन। एक दिन वह अवश्य आएगा जब लाल झंडे पर हँसिया और हथौड़ा दिखलाई देगा। समस्त संसार में एक राज्य होगा। एक सत्ता होगी, एक विचार होगा, एक वाद होगा और वह होगा कम्यूनिज्म।" कहती-कहती कमला चुप हो गई।

"अवश्य होगा।" आजाद ने उसी गम्भीरता के साथ कहा। पूंजीवाद का नाश होगा। मजदूर की सत्ता होगी और उसी का अधिकार होगा, राष्ट्र की सब शक्तियों पर। मजदूर का पथ-प्रदर्शक मजदूर होगा, मजदूर का शोषक नहीं, सरमाएदार नहीं। धन के बल से मानव नहीं खरीदा जा सकेगा। धन से खरीदे जाने वाले व्यक्तियों के लिए राष्ट्र में कोई स्थान नहीं होगा। उन्हें गोली से उड़वा दिया जाएगा।" दृढ़तापूर्वक आजाद बोला।

तीनों ने बड़े प्रेम से चाय पी और फिर रमा तथा रमेश बाबू वहाँ से विदा हुए। शान्ता ने दूसरे दिन सन्ध्या को पाँच बजे रमेश बाबू के यहाँ आने का वचन दिया।

३३

कमला की दशा दिन-प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। उसकी राजनीति का दम घुटने लगा था, परन्तु वह अटल थी अपने विचारों पर। उसे विश्वास था कि हो सकता है उसे इस समय अपने उद्देश्य में सफलता न मिल सके, क्योंकि परिस्थितियाँ इस समय स्पष्ट होती जा रही थीं, परन्तु एक-न-एक दिन वह समय अवश्य आएगा जब भारत के कोने-कोने में कम्यूनिज्म छा जाएगा। हो सकता है कि उसने जो कुछ भी किया हो वह समय से पूर्व हो और यही कारण हो उसकी असफलता का, परन्तु जन-साधारण की अंक में पलते हुए कम्यूनिज्म को वह स्पष्ट देख रही थी।

कमला के जीवन में संतोष के लिए कोई स्थान नहीं था, कल के लिए कोई स्थान नहीं था, अकर्मण्यता के लिए कोई स्थान नहीं था और अन्त में भय के लिए कोई स्थान नहीं था। यह एक निर्भीक लड़की थी जिसका बचपन चांचल्य में व्यतीत हुआ, परन्तु जवानी में उसने संसार भर के मजदूरों का दर्द अपने दिल में छुपा लिया था। छोटा-सा दिल, भार इतना बड़ा, साहस प्रशंसनीय अवश्य था परन्तु बोझा अधिक होने के कारण सफलता के लिए कम ही स्थान था।

कमला और आजाद आजकल सारा-सारा दिन एक ही स्थान पर पड़े रहते थे परन्तु, कभी-कभी तमाम दिन कोई बात नहीं होती। आजाद कमला को हर प्रकार का आश्वासन देता कि वह अपने कार्य में एक-न-एक दिन अवश्य सफल होगा परन्तु कमला के चित्त को शान्ति नहीं मिलती। एक दिन जब कमला को आजाद ने अधिक दुखी देखा तो वह बोला, "अच्छा कमला ! मैं अभी इसी समय दिन में जाता हूँ और सीधा जाकर उस पाजी का काम तमाम करता हूँ। जिसने तेरी यह दशा कर दी है। तू खड़ी हो और चाय बनाने की तैयारी कर। तुम्हारे हाथ का एक कप चाय पीकर मैं आज तुमसे अन्तिम विदा लूँगा।" कहकर आजाद ने कमला का हाथ अपने हाथ में कर उसे खड़ा करने का प्रयत्न किया।

कमला पागल की तरह आजाद से लिपट गई और अस्पष्ट से शब्दों में बोली

"नहीं ! नहीं ! इस समय नहीं । मैं इस समय आपको नहीं जाने दूंगी। आप देख रहे हैं कि मैं पागल हो चली हूँ । मुझे अपनी सुधि कभी-कभी घंटों तक नहीं आती । मैं स्वप्न में देखा करती हूँ कि भारत भी वैसा सुन्दर रूस बन गया है ? यहाँ की अब हर चीज ताजा है, किसी में गली-सड़ी बदबू नहीं आती, हर वस्तु अपनी है, सरकार अपनी है, बच्चे अपने हैं, देश के हैं, राष्ट्र के हैं, राष्ट्र अपना है । राष्ट्र अब पत्थर के स्टैचू के समान नहीं है बल्कि अधिकार पूर्ण है । समाज में कोई बड़ा या छोटा नहीं, सब बराबर हैं । सब काम करते हैं और पेट भर कर अच्छा खाना खाते हैं । सब एक साथ बैठकर एक मेज पर खाते हैं । जैसा 'होम' मैंने तैयार किया था उसी प्रकार के होम हिन्दुस्तान के हर शहर और हर गाँव में बन गए हैं, और वर्तमान घरों का तरीका ही बदल गया है । मैं वास्तव में पागल हो गई हूँ आजाद बाबू ! आप मुझे छोड़कर न जाना ।" कमला कहती गई ।

आज पहली बार यह कमजोरी की बात, जाने या अनजाने रूप में, कमला के मुख से निकली । आजाद समझ गया कि यह पागल हो चुकी है और अब वह क्या करे, यह स्वयं उसी की समझ में नहीं आ रहा था । किसी भी वस्तु को विचारना आजाद का काम नहीं था । वह केवल कर सकता था, परन्तु आज कराने वाले की भी दशा बदल चुकी थी ।

आजाद चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया और उसे कुछ समझ में न आया कि वह क्या करे ? बहुत देर मौन रहने के पश्चात् कमला ने फिर कहना प्रारम्भ किया "आजाद बाबू ! समय ने साथ नहीं दिया, परिस्थितियाँ विपरीत होती चली गईं । भारत की जनता अभी कम्यूनिस्ट-विचारों को भली प्रकार नहीं समझती । तुम में भी समझने की शक्ति कम है और विकास के लिए सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं । मैं इसे अपनी हार नहीं मान सकती और न अपने उद्देश्य की ही हार मानती हूँ । मेरा उद्देश्य अटल है, अविचल है । संसार को कम्यूनिस्ट बनना होगा एक दिन । एक दिन वह अवश्य आएगा जब लाल झंडे पर हँसिया और हथौड़ा दिखलाई देगा । समस्त संसार में एक राज्य होगा । एक सत्ता होगी, एक विचार होगा, एक वाद होगा और वह होगा कम्यूनिज्म ।" कहती-कहती कमला चुप हो गई ।

"अवश्य होगा ।" आजाद ने उसी गम्भीरता के साथ कहा । पूंजीवाद का नाश होगा । मजदूर की सत्ता होगी और उसी का अधिकार होगा, राष्ट्र की सब शक्तियों पर । मजदूर का पथ-प्रदर्शक मजदूर होगा, मजदूर का शोषक नहीं, सरमाएदार नहीं । धन के बल से मानव नहीं खरीदा जा सकेगा । धन से खरीदे जाने वाले व्यक्तियों के लिए राष्ट्र में कोई स्थान नहीं होगा । उन्हें गोली से उड़वा दिया जाएगा ।" दृढ़तापूर्वक आजाद बोला ।

"एक्सीलैण्ट, वहुत खूब, आजाद बाबू वहुत खूब !" उछलकर कमला ने कहा, "बस यही तो मैं कहना चाहती थी। मेरा विश्वास अटल है। पूँजी पूँजीपतियों के हाथों में से जिस प्रकार भी हो सके छीन लेनी चाहिए। वह उस थाती को सँभालने के योग्य नहीं हैं। धरोहर वह सँभाल सकता है जिसके मन में ईमानदारी हो। वह मजदूर का रक्त चूसना चाहता है अपने धन की पिचकारी लगाकर। अब यह नहीं हो सकेगा, नहीं हो सकेगा, नहीं हो सकेगा, असम्भव है। यह क्रान्ति का युग है। इस देश में भी क्रान्ति होकर रहेगी।

"गत महायुद्ध का प्रभाव अभी ज्यों का त्यों बना हुआ है। मजदूर की माँगें ज्यों की त्यों अटल हैं। वह कम नहीं हो सकतीं। बेरोजगारी फैलती जा रही है, काम की कमी है, पैसा देखने को भी नहीं रहा। आज भारत की परिस्थिति बहुत गम्भीर बन चुकी है आजाद बाबू ! माल है, परन्तु उसका मूल्य देने को पैसा, नहीं। ऐसी दशा में आप जानते हैं क्या होगा ? मूल्य न मिलने पर माल मजदूरों का हो जाएगा स्वयं अपने आप समय अब दूर नहीं रहा है कि जब मिल वाले कहेंगे कि हम मिल नहीं चला सकते, हमारे पास पैसा नहीं है। मजदूर कहेंगे हम चला सकते हैं, हमें पैसा नहीं चाहिए। हम राष्ट्र का कारखाना बन्द नहीं होने देंगे, तुम दूर हटो, यह कारखाना राष्ट्र का है और इसे बन्द करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। चलाओ या चलाने दो। मजदूरी बढ़ जाने पर मिल चलाना सरमाएदार के बूते की बात नहीं रहेगी और अन्त में उसे चलाएगा मजदूर। यह दिन भारत के कोने-कोने में आ चुका है, मैं जानती हूँ, परन्तु कुछ समय लगेगा इस ज्वाला को प्रज्ज्वलित होने में।"

आजाद पूर्ण रूप से सहमत था कमला के विचारों से। आजाद क्या है इसे समझना अब अधिक बाकी नहीं रहा परन्तु इतना अवश्य है कि सैनिक होने के नाते उसके जीवन के कुछ भावुक अंग अधिक प्रस्फुटित नहीं हो पाए। आजाद के हृदय में भावुकता की कमी नहीं थी। वह कमला को प्रेम करता है और अन्य भी किसी सुन्दर लड़की को कर सकता है यदि वह उसके जीवन में आ जाए। औरत आजाद के जीवन की एक बड़ी कमजोरी है जो उसे खींचकर कहीं भी ले जा सकती है, जिसके लिए आजाद सब प्रकार का बलिदान दे सकता है।

आजाद का जीवन एक धागे के समान कमला की सूई के नकवे से होकर निकलता था। उसमें अपनापन नहीं रह गया था परन्तु जब से कमला के मस्तिष्क की दशा बिगड़ने लगी थी आजाद भी अपने पुराने जीवन की तरफ कभी-कभी दृष्टि डाल लेता था। वैसे तो पिछला जीवन काफी भूल में पड़ चुका था और परिस्थितियाँ भी उसमें लौटने के बिलकुल प्रतिकूल थीं परन्तु फिर भी कभी-कभी उसकी छाया आकर आजाद के नेत्रों में घूम जाती थी।

आजाद अब एक पर कटे हुए पक्षी की भाँति था। 'इन्सान' कार्यालय के संचालक का पीछा उसने नहीं छोड़ा था। उसका विचार था कि यदि वह उसे समाप्त कर देगा तो शायद कमला की दशा फिर सुधर जाएगी। वह नित्य रात्रि में उधर जाता था परन्तु वहाँ पर पहरा इतना व्यवस्थित रहता था कि अन्दर घुसना उसके लिए एकदम असम्भव था।

सरदार करमसिंह कमला के प्रति आज भी वफादार था, इस माने में कि वह रोज नियमपूर्वक दो डबल रोटियाँ लाकर यहाँ दे जाता था। कुछ दिन परेशान करके करमसिंह को पुलिस ने छोड़ दिया था, परन्तु करमसिंह निकला काफी मजबूत। उसने पुलिस को अपना कोई राज नहीं दिया और न कमला तथा आजाद का पता ही पुलिस को मिल सका। रामू और माँगे भी छुप-छुपकर कभी-कभी आते थे; पुलिस की नजरों से बच-बचकर। उन्होंने अब एक और प्रेस में नौकरी कर ली थी। कारीगर आदमी थे, काम की उनके लिए कमी नहीं थी। रामू और माँगे एक आदमी के राशन से अपना दोनों का गुजारा करते थे और एक का राशन लाकर कमला को दे जाते थे। वास्तव में अपना कर्तव्य निभाने वाले सच्चे मजदूर थे। मजदूर करमसिंह भी था परन्तु उसकी डबलरोटियों में उसकी कमजोरी छुपी हुई थी, वही कमजोरी जिसके बल पर आजाद किसी के प्राण लेने को उतारू था।

आजाद की इस कमजोरी को, रमेश बाबू भली प्रकार पहचानते थे और इसीलिए सन् ब्यालीस के आन्दोलन में रमेश बाबू ने शान्ता को आगे रखकर आजाद से वे कार्य कराए कि जिन्हें सुनकर भी आज रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रमेश बाबू आजाद की नस-नस पहचानते थे और वही नस आज़ाद की कमला ने पहचान ली थी। यही कारण था कि कमला आजाद से आज तक काम लेती रही, और वह भी सफलता-पूर्वक। वह आजाद को जो कुछ भी बनाना चाहती थी, उसने बना लिया था।

आजाद कमला से खेल रहा था और कमला आजाद से। यह जीवन का खेल था दोनों के लिए परन्तु मार्ग रुक जाने के कारण वह खेल भी समाप्त हो गया और जीवन भार स्वरूप प्रतीत होने लगा। कुछ करने वाले व्यक्ति के लिए काम चाहिए। आजाद काम के बिना नहीं रह सकता था। इस प्रकार व्यर्थ पड़े-पड़े जीवन खोना उसे अच्छा नहीं लगता था और कमला में अब वह सामर्थ्य नहीं थी कि वह आजाद का पथ-प्रदर्शन कर सके।

आजाद राजनीति का कीड़ा बन चुका था। वह दुनिया के और सब कामों के लिए अपूर्ण और अयोग्य था। उसका राजनीतिक क्षेत्र अब अवरुद्ध था। फिर वह आखिर करे क्या ? क्या दिन भर बैठा-बैठा उस पगली कमला के बालों में उँगलियाँ डालकर सहलाया करे और कभी-कभी सनक में आकर जो वह व्याख्यान देती थी उसे

"एक्सीलैण्ट, बहुत खूब, आजाद बाबू बहुत खूब !" उछलकर कमला ने कहा, "बस यही तो मैं कहना चाहती थी। मेरा विश्वास अटल है। पूँजी पूँजीपतियों के हाथों में से जिस प्रकार भी हो सके छीन लेनी चाहिए। वह उस थाती को सँभालने के योग्य नहीं हैं। धरोहर वह सँभाल सकता है जिसके मन में ईमानदारी हो। वह मजदूर का रक्त चूसना चाहता है अपने धन की पिचकारी लगाकर। अब यह नहीं हो सकेगा, नहीं हो सकेगा, नहीं हो सकेगा, असम्भव है। यह क्रान्ति का युग है। इस देश में भी क्रान्ति होकर रहेगी।

"गत महायुद्ध का प्रभाव अभी ज्यों का त्यों बना हुआ है। मजदूर की माँगें ज्यों की त्यों अटल हैं। वह कम नहीं हो सकतीं। बेरोजगारी फैलती जा रही है, काम की कमी है, पैसा देखने को भी नहीं रहा। आज भारत की परिस्थिति बहुत गम्भीर बन चुकी है आजाद बाबू ! माल है, परन्तु उसका मूल्य देने को पैसा, नहीं। ऐसी दशा में आप जानते हैं क्या होगा ? मूल्य न मिलने पर माल मजदूरों का हो जाएगा स्वयं अपने आप समय अब दूर नहीं रहा है कि जब मिल वाले कहेंगे कि हम मिल नहीं चला सकते, हमारे पास पैसा नहीं है। मजदूर कहेंगे हम चला सकते हैं, हमें पैसा नहीं चाहिए। हम राष्ट्र का कारखाना बन्द नहीं होने देंगे, तुम दूर हटो, यह कारखाना राष्ट्र का है और इसे बन्द करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। चलाओ या चलाने दो। मजदूरी बढ़ जाने पर मिल चलाना सरमाएदार के बूते की बात नहीं रहेगी और अन्त में उसे चलाएगा मजदूर। यह दिन भारत के कोने-कोने में आ चुका है, मैं जानती हूँ, परन्तु कुछ समय लगेगा इस ज्वाला को प्रज्ज्वलित होने में।"

आजाद पूर्ण रूप से सहमत था कमला के विचारों से। आजाद क्या है इसे समझना अब अधिक बाकी नहीं रहा परन्तु इतना अवश्य है कि सैनिक होने के नाते उसके जीवन के कुछ भावुक अंग अधिक प्रस्फुटित नहीं हो पाए। आजाद के हृदय में भावुकता की कमी नहीं थी। वह कमला को प्रेम करता है और अन्य भी किसी सुन्दर लड़की को कर सकता है यदि वह उसके जीवन में आ जाए। औरत आजाद के जीवन की एक बड़ी कमजोरी है जो उसे खींचकर कहीं भी ले जा सकती है, जिसके लिए आजाद सब प्रकार का बलिदान दे सकता है।

आजाद का जीवन एक धागे के समान कमला की सूई के नकवे से होकर निकलता था। उसमें अपनापन नहीं रह गया था परन्तु जब से कमला के मस्तिष्क की दशा बिगड़ने लगी थी आजाद भी अपने पुराने जीवन की तरफ कभी-कभी दृष्टि डाल लेता था। वैसे तो पिछला जीवन काफी भूल में पड़ चुका था और परिस्थितियाँ भी उसमें लौटने के बिलकुल प्रतिकूल थीं परन्तु फिर भी कभी-कभी उसकी छाया आकर आजाद के नेत्रों में घूम जाती थी।

आजाद अब एक पर कटे हुए पक्षी की भाँति था। 'इन्सान' कार्यालय के संचालक का पीछा उसने नहीं छोड़ा था। उसका विचार था कि यदि वह उसे समाप्त कर देगा तो शायद कमला की दशा फिर सुधर जाएगी। वह नित्य रात्रि में उधर जाता था परन्तु वहाँ पर पहरा इतना व्यवस्थित रहता था कि अन्दर घुसना उसके लिए एकदम असम्भव था।

सरदार करमसिंह कमला के प्रति आज भी वफादार था, इस माने में कि वह रोज नियमपूर्वक दो डबल रोटियाँ लाकर यहाँ दे जाता था। कुछ दिन परेशान करके करमसिंह को पुलिस ने छोड़ दिया था, परन्तु करमसिंह निकला काफी मजबूत। उसने पुलिस को अपना कोई राज नहीं दिया और न कमला तथा आजाद का पता ही पुलिस को मिल सका। रामू और माँगे भी छुप-छुपकर कभी-कभी आते थे; पुलिस की नजरों से बच-बचकर। उन्होंने अब एक और प्रेस में नौकरी कर ली थी। कारीगर आदमी थे, काम की उनके लिए कमी नहीं थी। रामू और माँगे एक आदमी के राशन से अपना दोनों का गुजारा करते थे और एक का राशन लाकर कमला को दे जाते थे। वास्तव में अपना कर्तव्य निभाने वाले सच्चे मजदूर थे। मजदूर करमसिंह भी था परन्तु उसकी डबलरोटियों में उसकी कमजोरी छुपी हुई थी, वही कमजोरी जिसके बल पर आजाद किसी के प्राण लेने को उतारू था।

आजाद की इस कमजोरी को, रमेश बाबू भली प्रकार पहचानते थे और इसीलिए सन् ब्यालीस के आन्दोलन में रमेश बाबू ने शान्ता को आगे रखकर आजाद से वे कार्य कराए कि जिन्हें सुनकर भी आज रोंगटे खड़े हो जाते हैं। रमेश बाबू आजाद की नस-नस पहचानते थे और वही नस आज़ाद की कमला ने पहचान ली थी। यही कारण था कि कमला आजाद से आज तक काम लेती रही, और वह भी सफलता-पूर्वक। वह आजाद को जो कुछ भी बनाना चाहती थी, उसने बना लिया था।

आजाद कमला से खेल रहा था और कमला आजाद से। यह जीवन का खेल था दोनों के लिए परन्तु मार्ग रुक जाने के कारण वह खेल भी समाप्त हो गया और जीवन भार स्वरूप प्रतीत होने लगा। कुछ करने वाले व्यक्ति के लिए काम चाहिए। आजाद काम के बिना नहीं रह सकता था। इस प्रकार व्यर्थ पड़े-पड़े जीवन खोना उसे अच्छा नहीं लगता था और कमला में अब वह सामर्थ्य नहीं थी कि वह आजाद का पथ-प्रदर्शन कर सके।

आजाद राजनीति का कीड़ा बन चुका था। वह दुनिया के और सब कामों के लिए अपूर्ण और अयोग्य था। उसका राजनीतिक क्षेत्र अब अवरुद्ध था। फिर वह आखिर करे क्या ? क्या दिन भर बैठा-बैठा उस पगली कमला के बालों में उँगलियाँ डालकर सहलाया करे और कभी-कभी सनक में आकर जो वह व्याख्यान देती थी उसे

कानों में उँगलियाँ डालकर सुना करे।

कमरे की बन्द कैदी से पंछी उड़ने के लिए पर फड़फड़ाने लगा, परन्तु उसका पुलिस के पास वारंट था। यदि इधर-उधर घूमता मिल गया तो पुलिस उसे हवालात में बन्द कर देगी और फिर कमला का क्या होगा ?

कभी-कभी आजाद को कमला के ऊपर बहुत क्रोध आता और वह यह सोचने लगता कि जाकर स्वयं पुलिस को सूचना दे डाले कि 'हम दोनों यहाँ हैं। तुम हमें पकड़कर ले जाओ' परन्तु फिर पर कटे पक्षी की तरह तड़पकर रह जाता था। कभी-कभी आजाद यह भी सोचता था कि कमला ने व्यर्थ के लिए उसे कम्यूनिज्म के जंजाल में फँसा दिया। सन् ब्यालीस में तो रमेश बाबू ने रगड़ा और चैन से नहीं बैठने दिया। कांग्रेस का राज्य हुआ तो हमें रास्ता दिखलाने के लिए मिल गई यह कमलादेवी और वह महाशय रमेश बाबू रफूचक्कर हो गए। कमला ने मुझे कम्यूनिस्ट बना लिया और कम्यूनिस्ट क्या बना लिया बल्कि यों कहो कि बिला पैसे का अपना गुलाम बना लिया। दिन भर बैठा इनकी खिदमत किया करूँ और रात को जाकर 'इन्सान-कार्यालय' का चक्कर लगा आऊँ। आज आठ दिन हो गए इसी कार्यक्रम को।

कभी-कभी आजाद को जब अधिक क्रोध आता तो वह यह भी सोचने लगता कि चलो क्या है ? अब तो कम्यूनिस्ट बन ही गए। यदि उस मूजी को मौत के घाट उतारकर भी बच गए तो फिर क्रान्तिकारी कम्यूनिस्ट के नाम से पुकारा जाऊँगा। मेरा भय चारों ओर छा जाएगा और फिर किसी भी कारखाने या मिल को बन्द करा देना मेरे लिए चुटकियों का काम होगा। मिल वाले मुझसे घबराने लगेंगे और मेरा आतंक फैल जाएगा। उस परिस्थिति में कमला फिर चहचहाती हुई बुलबुल की तरह फुदक-फुदककर मेरे सामने आएगी और जीवन का यह रूखापन फिर समाप्त हो जाएगा।

दिन भर आजाद इसी उत्साह को लिए कमला की सेवा में संलग्न रहता और रात्रि को अपना पिस्तौल लेकर 'इन्सान-कार्यालय' की तरफ चल देता।

३४

शान्ता आज प्रथम बार 'इन्सान-कार्यालय' में आ रही थी, इसलिए चारों ओर सफ़ाई कराई गई थी। सड़कें साफ हुईं। कार भी आज धुलवाकर रशीदा ने साफ

कराई। गमलों में पानी दिलवाया जा रहा था और कोठी के सामने वाले लॉन में ही बैठने के लिए कुर्सियाँ डलवाई गई थीं।

आज शान्ता ठीक समय पर कालेज से चली आई और कुछ काम जो रह भी गया था उसे मेज की दराज में दूसरे दिन करने के लिए बन्द कर दिया। गर्मी का मौसम था इसलिए अपने मकान पर आकर पहले स्नान किया और फिर अपनी वही खद्दर की सफेद साड़ी बाँधी, जिसमें कन्नी नहीं थी; परन्तु कितनी सुन्दर शोभा देती थी वह शान्ता के बदन पर—सौन्दर्य को बनावट की दरकार नहीं, वह तो यों ही प्रस्फुटित होता है। सफेद ब्लाऊज था। सिर में सीधी माँग थी और माथे पर छोटी-सी गोल बिन्दी—साधारण परन्तु विशेष आकर्षक। पैरों में वही सफेद साबर के चप्पल थे।

शान्ता की प्रतीक्षा में रमेश बाबू पहले से ही लॉन की एक कुर्सी पर आकर बैठ गए थे और रमा रसोईए के पास कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध करा रही थी। रशीदा का विचार था कि शान्ता बहन किसी ताँगे पर आएँगी, सो उसकी दृष्टि हर उधर से गुजरने वाले ताँगे पर पड़कर निराश हो जाती थी। जिस समय घड़ी ने पाँच बजाए और रमेश बाबू ने अपनी कलाई की घड़ी पर दृष्टि डालकर दरवाजे की तरफ देखा तो शान्ता पैदल अन्दर आती हुई दिखलाई दी। शान्ता को देखकर रमेश बाबू खड़े होकर स्वागत के लिए आगे बढ़े और एक कमरे में से अमरनाथजी भी, जो कि न जाने कब से खिड़की के रास्ते द्वार पर दृष्टि फैलाए बैठे थे, बाहर निकल आए। रशीदा भी सामने आ गई और तीनों शान्ता को लिवाकर लॉन में ले आए।

अमरनाथजी और रमेश बाबू कुर्सी पर बैठ गए। रशीदा खड़ी रही और शान्ता कुछ इधर-उधर देखती रही।

"आपकी आँखें जिसे खोजना चाहती हैं वह यहीं हैं। आज तुम्हारे आने की उन्हें इतनी प्रसन्नता है कि सुबह से यह समय आ गया तैयारी करते हुए। उन्होंने पता नहीं क्या समझा है कि शान्ता जाने क्या-क्या खा जाएगी ?"

"बड़ी पगली है रमा।" शान्ता ने मुस्कुराकर बैठते हुए कहा। परन्तु बैठते ही फिर खड़ी होकर रशीदा से बोली, "चलो जरा मैं भी तो देखूं वह क्या कर रही है ?"

रशीदा और शान्ता दोनों अन्दर को चल दीं। रमेश बाबू तथा अमरनाथजी वहीं बैठे रहे। रशीदा ने सम्पूर्ण कार्यालय शान्ता जीजी को दिखलाया। मशीनें भी दिखलाईं और अन्त में वह रमेश बाबू के कमरे में शान्ता को ले गई। कमरा बिलकुल सादा था। उसके अन्दर जो सोफे पहले पड़े रहते थे उन्हें भी रमेश बाबू ने निकलवा कर साधारण बेंत की कुर्सियाँ डलवा दी थीं और अपने लिए वही तख्त था लकड़ी का, जिस पर एक दरी और ऊपर खद्दर की सफेद चादर के अतिरिक्त और कुछ

कानों में उँगलियाँ डालकर सुना करे।

कमरे की बन्द कैदी से पंछी उड़ने के लिए पर फड़फड़ाने लगा, परन्तु उसका पुलिस के पास वारंट था। यदि इधर-उधर घूमता मिल गया तो पुलिस उसे हवालात में बन्द कर देगी और फिर कमला का क्या होगा ?

कभी-कभी आजाद को कमला के ऊपर बहुत क्रोध आता और वह यह सोचने लगता कि जाकर स्वयं पुलिस को सूचना दे डाले कि 'हम दोनों यहाँ हैं। तुम हमें पकड़कर ले जाओ' परन्तु फिर पर कटे पक्षी की तरह तड़पकर रह जाता था। कभी-कभी आजाद यह भी सोचता था कि कमला ने व्यर्थ के लिए उसे कम्यूनिज्म के जंजाल में फँसा दिया। सन् ब्यालीस में तो रमेश बाबू ने रगड़ा और चैन से नहीं बैठने दिया। कांग्रेस का राज्य हुआ तो हमें रास्ता दिखलाने के लिए मिल गई यह कमलादेवी और वह महाशय रमेश बाबू रफूचक्कर हो गए। कमला ने मुझे कम्यूनिस्ट बना लिया और कम्यूनिस्ट क्या बना लिया बल्कि यों कहो कि बिला पैसे का अपना गुलाम बना लिया। दिन भर बैठा इनकी खिदमत किया करूँ और रात को जाकर 'इन्सान-कार्यलिय' का चक्कर लगा आऊँ। आज आठ दिन हो गए इसी कार्यक्रम को।

कभी-कभी आजाद को जब अधिक क्रोध आता तो वह यह भी सोचने लगता कि चलो क्या है ? अब तो कम्यूनिस्ट बन ही गए। यदि उस मूजी को मौत के घाट उतारकर भी बच गए तो फिर क्रान्तिकारी कम्यूनिस्ट के नाम से पुकारा जाऊँगा। मेरा भय चारों ओर छा जाएगा और फिर किसी भी कारखाने या मिल को बन्द करा देना मेरे लिए चुटखियों का काम होगा। मिल वाले मुझसे घबराने लगेंगे और मेरा आतंक फैल जाएगा। उस परिस्थिति में कमला फिर चहचहाती हुई बुलबुल की तरह फुदक-फुदककर मेरे सामने आएगी और जीवन का यह रूखापन फिर समाप्त हो जाएगा।

दिन भर आजाद इसी उत्साह को लिए कमला की सेवा में संलग्न रहता और रात्रि को अपना पिस्तौल लेकर 'इन्सान-कार्यालय' की तरफ चल देता।

३४

शान्ता आज प्रथम बार 'इन्सान-कार्यालय' में आ रही थी, इसलिए चारों ओर सफ़ाई कराई गई थी। सड़कें साफ हुईं। कार भी आज धुलवाकर रशीदा ने साफ

कराई। गमलों में पानी दिलवाया जा रहा था और कोठी के सामने वाले लॉन में ही बैठने के लिए कुर्सियाँ डलवाई गई थीं।

आज शान्ता ठीक समय पर कालेज से चली आई और कुछ काम जो रह भी गया था उसे मेज की दराज में दूसरे दिन करने के लिए बन्द कर दिया। गर्मी का मौसम था इसलिए अपने मकान पर आकर पहले स्नान किया और फिर अपनी वही खद्दर की सफेद साड़ी बाँधी, जिसमें कन्नी नहीं थी; परन्तु कितनी सुन्दर शोभा देती थी। वह शान्ता के बदन पर—सौन्दर्य को बनावट की दरकार नहीं, वह तो यों ही प्रस्फुटित होता है। सफेद ब्लाऊज था। सिर में सीधी माँग थी और माथे पर छोटी-सी गोल बिन्दी—साधारण परन्तु विशेष आकर्षक। पैरों में वही सफेद साबर के चप्पल थे।

शान्ता की प्रतीक्षा में रमेश बाबू पहले से ही लॉन की एक कुर्सी पर आकर बैठ गए थे और रमा रसोईए के पास कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध करा रही थी। रशीदा का विचार था कि शान्ता बहन किसी ताँगे पर आएँगी, सो उसकी दृष्टि हर उधर से गुजरने वाले ताँगे पर पड़कर निराश हो जाती थी। जिस समय घड़ी ने पाँच बजाए और रमेश बाबू ने अपनी कलाई की घड़ी पर दृष्टि डालकर दरवाजे की तरफ देखा तो शान्ता पैदल अन्दर आती हुई दिखलाई दी। शान्ता को देखकर रमेश बाबू खड़े होकर स्वागत के लिए आगे बढ़े और एक कमरे में से अमरनाथजी भी, जो कि न जाने कब से खिड़की के रास्ते द्वार पर दृष्टि फैलाए बैठे थे, बाहर निकल आए। रशीदा भी सामने आ गई और तीनों शान्ता को लिवाकर लॉन में ले आए।

अमरनाथजी और रमेश बाबू कुर्सी पर बैठ गए। रशीदा खड़ी रही और शान्ता कुछ इधर-उधर देखती रही।

"आपकी आँखें जिसे खोजना चाहती हैं वह यहीं हैं। आज तुम्हारे आने की उन्हें इतनी प्रसन्नता है कि सुबह से यह समय आ गया तैयारी करते हुए। उन्होंने पता नहीं क्या समझा है कि शान्ता जाने क्या-क्या खा जाएगी ?"

"बड़ी पगली है रमा।" शान्ता ने मुस्कुराकर बैठते हुए कहा। परन्तु बैठते ही फिर खड़ी होकर रशीदा से बोली, "चलो जरा मैं भी तो देखूं वह क्या कर रही है ?"

रशीदा और शान्ता दोनों अन्दर को चल दीं। रमेश बाबू तथा अमरनाथजी वहीं बैठे रहे। रशीदा ने सम्पूर्ण कार्यालय शान्ता जीजी को दिखलाया। मशीनें भी दिखलाईं और अन्त में वह रमेश बाबू के कमरे में शान्ता को ले गई। कमरा बिलकुल सादा था। उसके अन्दर जो सोफे पहले पड़े रहते थे उन्हें भी रमेश बाबू ने निकलवा कर साधारण बेंत की कुर्सियाँ डलवा दी थीं और अपने लिए वही तख्त था लकड़ी का, जिस पर एक दरी और ऊपर खद्दर की सफेद चादर के अतिरिक्त और कुछ

नहीं था।

शान्ता ने देखा कि तख्त के ऊपर दीवार पर एक चित्र लगा था और वह चित्र शान्ता का अपना चित्र था। शान्ता एक क्षण के लिए खड़ी ही रह गई। शान्ता और रशीदा खड़े इस चित्र को देख रहे थे। शान्ता का समस्त शरीर रोमांचित हो उठा, आँखें बन्द हो गईं और उनमें रमेश बाबू की मधुर मूर्ति समा गई। इस समय उसने अनुभव किया कि किसी ने पीछे से आकर उसके दोनों कन्धों पर अपने दोनों प्यार भरे हाथ रखकर कहा, "केवल यही तो मैं पाकिस्तान से बचाकर ला सका था शान्ता! मेरे उजड़े हुए जीवन की यही सम्पत्ति मेरे पास शेष बची थी।" शान्ता प्यार में चुपचाप खड़ी थी कि अचानक रमा के आने से उसका स्वप्न भंग हो गया।

"सम्पूर्ण कोठी में आपको केवल अपना ही चित्र देखने योग्य वस्तु मिली शान्ता जीजी !" नुकीला मजाक करते हुए रमा ने मुस्कुराकर पूछा।

शान्ता लजाई नहीं प्यार भरे मीठे शब्दों में कहना प्रारम्भ किया, "रमा ! यह चित्र जिस परिस्थिति में खींचा गया था, मुझे आज चित्र देखकर वह समय याद आ गया। हम लोग उस दिन चार दिन के भूखे थे। जो कुछ पैसे थे वे इस चित्र पर लगा दिए रमेश बाबू ने, इसलिए कि हम उस दिन ऐसे कार्य को एक दूसरे से विदा हो रहे थे कि जीवन में फिर मिलने की आशा समाप्त हो चुकी थी। रावी नदी के उस किनारे पर खड़े होकर मैंने यह चित्र रमेश बाबू को दिया था और फिर मैं पानी में कूद गई थी।"

"ऐसा क्यों किया था जीजी ?" आश्चर्य से रमा और रशीदा ने पूछा।

"क्योंकि पुल पर पुलिस का कड़ा पहरा था। रमेश बाबू का शहर में किसी रूप में भी घुसना सम्भव नहीं था। एक सूचना हमें अनारकली में एक नियत स्थान पर ले जानी थी। सूचना न पहुँचने पर देश के चार वीर सपूत फाँसी के तख्ते पर झूल सकते थे। रावी अपने पूर्ण बहाव पर थी; बरसात का मौसम था। एक छोटी-सी लकड़ी का सहारा लेकर मैं पानी में घुस गई।

"रात्रि का समय था। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार। प्राणों की आशा छोड़कर ही मैं पानी में घुसी थी परन्तु ईश्वर की दया से मैं चार बजे बहुत दूरी पर जाकर किनारे से लग गई। वहाँ अँधेरा था, मैंने अपने शरीर के वस्त्र उतारकर निचोड़े और फिर उन्हें किसी प्रकार हिला-डुलाकर अधसुखा करके पहन लिया और......।"

"और क्या बस काम हो गया" रमेश बाबू ने पीछे खड़े हुए कहा।

तीनों ने आश्चर्य के साथ देखा कि पहली पंक्ति में रशीदा, शान्ता और रमा जिस संलग्नता के साथ यह सब सुन रहे थे उसी प्रकार पीछे वाली पंक्ति में रमेश बाबू और अमरनाथजी खड़े थे।

रमेश बाबू ने आगे बढ़कर शान्ता के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, "तुम्हारे इस चित्र ने मेरा बहुत साथ दिया है शान्ता ! मैं सच कहता हूँ इस समय मैं तुमसे अधिक तुम्हारे इस चित्र का आभारी हूँ।"

शान्ता कुछ बोली नहीं, केवल मुस्कान भरी दृष्टि से उसने एक बार रमेश बाबू के मुख पर देखा और फिर गर्दन झुका ली। शान्ता के अंग प्रत्यंग से आनन्द की आभा झलक उठी। उसका हृदय गद-गद हो उठा।

"और हाँ वह तुम्हारी अँगूठी भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। एक दो बार यह मेरे हाथों से जाती रही परन्तु भाग्य से मिल गई। तुम मेरा जीवन जानती ही हो कि कितना अव्यवस्थित हो जाता है बिना आश्रय के। इसी दशा में मैं मंसूरी चला गया। वहाँ एक दिन सचमुच ही यह खो जाती, सो मैंने उस दिन से उसकी रक्षा का भार रमा को सौंप दिया।" रमेश बाबू बोले।

रमा ने अपना हाथ आगे करते हुए कहा, "यही है ना वह अँगूठी जीजी ! मैं इसे बहुत प्यार से रखती हूँ और आशा करती हूँ कि यह आप अब मुझसे वापस नहीं माँगेंगी।"

"वापस माँगने का तो अधिकार भी मेरे पास नहीं है रमा !" प्यार से रमा को बगल में भरते हुए शान्ता ने कहा, "परन्तु हाँ इतना मैं अवश्य कर सकती हूँ तुम्हारे लिए कि मालिक से सिफारिश कर दूँ कि वह तुमसे वापस न माँगे।"

रमा शान्ता की आँखों में आँखें डालकर मुस्करा दी और फिर दोनों ने एक साथ रमेश बाबू के मुँह पर देखा आज के इस प्रेमालाप का मधुर आनन्द-लाभ रशीदा और अमरनाथजी न कर सके, क्योंकि आपस में उन दोनों के गाल फूले हुए थे। इनकी बोल-चाल की हड़ताल को तुड़वाने का प्रयत्न अभी तक रमेश बाबू ने भी नहीं किया था और हो सकता है कि शायद इसकी गम्भीरता का भी रमेश बाबू ने अनुभव नहीं किया हो, परन्तु उन दोनों के मन में यह प्रश्न उठ चुका था कि क्या वास्तव में वे दोनों एक दूसरे के लिए उपयुक्त नहीं हैं ? रशीदा तर्क द्वारा अपनी उपयुक्तता सिद्ध करके हार चुकी थी और अब अपनी उपयुक्तता का अधिक स्पष्टीकरण करना उसे बुरा मालूम देने लगा था। कभी-कभी वह एकान्त में बैठकर बहुत ही दुःखी होती थी और सोचती थी कि क्या यह इसी बात का कुपरिणाम है कि उसने भैया से बिना अनुमति लिए यह सब किया। जो अमरनाथ व्यवहार में एक हीरा था आज की परिस्थिति में पत्थर बन गया था, न उसमें चमक थी और न जीवन। निर्जीव मशीन की तरह वह काम करता था परन्तु काम में कभी कोई अन्तर उसके नहीं आया। जीवन नीरस होने पर भी काम में सरसता स्पष्ट दिखलाई देती थी। अमरनाथजी की लेखन-कला को जंग नहीं लगा था। उसमें वही तीखापन और इधर कुछ दिनों से हड़ताल

नहीं था।

शान्ता ने देखा कि तख्त के ऊपर दीवार पर एक चित्र लगा था और वह चित्र शान्ता का अपना चित्र था। शान्ता एक क्षण के लिए खड़ी ही रह गई। शान्ता और रशीदा खड़े इस चित्र को देख रहे थे। शान्ता का समस्त शरीर रोमांचित हो उठा, आँखें बन्द हो गईं और उनमें रमेश बाबू की मधुर मूर्ति समा गई। इस समय उसने अनुभव किया कि किसी ने पीछे से आकर उसके दोनों कन्धों पर अपने दोनों प्यार भरे हाथ रखकर कहा, "केवल यही तो मैं पाकिस्तान से बचाकर ला सका था शान्ता! मेरे उजड़े हुए जीवन की यही सम्पत्ति मेरे पास शेष बची थी।" शान्ता प्यार में चुपचाप खड़ी थी कि अचानक रमा के आने से उसका स्वप्न भंग हो गया।

"सम्पूर्ण कोठी में आपको केवल अपना ही चित्र देखने योग्य वस्तु मिली शान्ता जीजी!" नुकीला मजाक करते हुए रमा ने मुस्कुराकर पूछा।

शान्ता लजाई नहीं प्यार भरे मीठे शब्दों में कहना प्रारम्भ किया, "रमा! यह चित्र जिस परिस्थिति में खींचा गया था, मुझे आज चित्र देखकर वह समय याद आ गया। हम लोग उस दिन चार दिन के भूखे थे। जो कुछ पैसे थे वे इस चित्र पर लगा दिए रमेश बाबू ने, इसलिए कि हम उस दिन ऐसे कार्य को एक दूसरे से विदा हो रहे थे कि जीवन में फिर मिलने की आशा समाप्त हो चुकी थी। रावी नदी के उस किनारे पर खड़े होकर मैंने यह चित्र रमेश बाबू को दिया था और फिर मैं पानी में कूद गई थी।"

"ऐसा क्यों किया था जीजी?" आश्चर्य से रमा और रशीदा ने पूछा।

"क्योंकि पुल पर पुलिस का कड़ा पहरा था। रमेश बाबू का शहर में किसी रूप में भी घुसना सम्भव नहीं था। एक सूचना हमें अनारकली में एक नियत स्थान पर ले जानी थी। सूचना न पहुँचने पर देश के चार वीर सपूत फाँसी के तख्ते पर झूल सकते थे। रावी अपने पूर्ण बहाव पर थी; बरसात का मौसम था। एक छोटी-सी लकड़ी का सहारा लेकर मैं पानी में घुस गई।

"रात्रि का समय था। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार। प्राणों की आशा छोड़कर ही मैं पानी में घुसी थी परन्तु ईश्वर की दया से मैं चार बजे बहुत दूरी पर जाकर किनारे से लग गई। वहाँ अँधेरा था, मैंने अपने शरीर के वस्त्र उतारकर निचोड़े और फिर उन्हें किसी प्रकार हिला-डुलाकर अधसुखा करके पहन लिया और......।"

"और क्या बस काम हो गया" रमेश बाबू ने पीछे खड़े हुए कहा।

तीनों ने आश्चर्य के साथ देखा कि पहली पंक्ति में रशीदा, शान्ता और रमा जिस संलग्नता के साथ यह सब सुन रहे थे उसी प्रकार पीछे वाली पंक्ति में रमेश बाबू और अमरनाथजी खड़े थे।

रमेश बाबू ने आगे बढ़कर शान्ता के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, "तुम्हारे इस चित्र ने मेरा बहुत साथ दिया है शान्ता ! मैं सच कहता हूँ इस समय मैं तुमसे अधिक तुम्हारे इस चित्र का आभारी हूँ।"

शान्ता कुछ बोली नहीं, केवल मुस्कान भरी दृष्टि से उसने एक बार रमेश बाबू के मुख पर देखा और फिर गर्दन झुका ली। शान्ता के अंग प्रत्यंग से आनन्द की आभा झलक उठी। उसका हृदय गद-गद हो उठा।

"और हाँ वह तुम्हारी अँगूठी भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। एक दो बार यह मेरे हाथों से जाती रही परन्तु भाग्य से मिल गई। तुम मेरा जीवन जानती ही हो कि कितना अव्यवस्थित हो जाता है बिना आश्रय के। इसी दशा में मैं मंसूरी चला गया। वहाँ एक दिन सचमुच ही यह खो जाती, सो मैंने उस दिन से उसकी रक्षा का भार रमा को सौंप दिया।" रमेश बाबू बोले।

रमा ने अपना हाथ आगे करते हुए कहा, "यही है ना वह अँगूठी जीजी ! मैं इसे बहुत प्यार से रखती हूँ और आशा करती हूँ कि यह आप अब मुझसे वापस नहीं माँगेंगी।"

"वापस माँगने का तो अधिकार भी मेरे पास नहीं है रमा !" प्यार से रमा को बगल में भरते हुए शान्ता ने कहा, "परन्तु हाँ इतना मैं अवश्य कर सकती हूँ तुम्हारे लिए कि मालिक से सिफारिश कर दूँ कि वह तुमसे वापस न माँगे।"

रमा शान्ता की आँखों में आँखें डालकर मुस्करा दी और फिर दोनों ने एक साथ रमेश बाबू के मुँह पर देखा आज के इस प्रेमालाप का मधुर आनन्द-लाभ रशीदा और अमरनाथजी न कर सके, क्योंकि आपस में उन दोनों के गाल फूले हुए थे। इनकी बोल-चाल की हड़ताल को तुड़वाने का प्रयत्न अभी तक रमेश बाबू ने भी नहीं किया था और हो सकता है कि शायद इसकी गम्भीरता का भी रमेश बाबू ने अनुभव नहीं किया हो, परन्तु उन दोनों के मन में यह प्रश्न उठ चुका था कि क्या वास्तव में वे दोनों एक दूसरे के लिए उपयुक्त नहीं हैं ? रशीदा तर्क द्वारा अपनी उपयुक्तता सिद्ध करके हार चुकी थी और अब अपनी उपयुक्तता का अधिक स्पष्टीकरण करना उसे बुरा मालूम देने लगा था। कभी-कभी वह एकान्त में बैठकर बहुत ही दुःखी होती थी और सोचती थी कि क्या यह इसी बात का कुपरिणाम है कि उसने भैया से बिना अनुमति लिए यह सब किया। जो अमरनाथ व्यवहार में एक हीरा था आज की परि-स्थिति में पत्थर बन गया था, न उसमें चमक थी और न जीवन। निर्जीव मशीन की तरह वह काम करता था परन्तु काम में कभी कोई अन्तर उसके नहीं आया। जीवन नीरस होने पर भी काम में सरसता स्पष्ट दिखलाई देती थी। अमरनाथजी की लेखन-कला को जंग नहीं लगा था। उसमें वही तीखापन और इधर कुछ दिनों से हड़ताल

के बाद तो उसमें और भी सजीवता आ गई थी।

इसके पश्चात् रमेश बाबू ने शान्ता को अपने पत्र की फाइल दिखलाते हुए कहा "शान्ता यह है मेरी दिल्ली आने के बाद की जमा की हुई पूँजी।"

"यह फाइल मेरे पास भी आपसे कम पूर्ण नहीं हैं।" रमेश बाबू के मुख की तरफ देखकर शान्ता ने कहा "पहले अंक से लगाकर आज तक जितने भी अंक प्रकाशित हुए हैं, सभी मेरे पास सुरक्षित हैं।"

रमेश बाबू का सीना गर्व से कई अंगुल ऊपर को हो गया। शान्ता की सम्मति का वह पहले से ही बहुत मान किया करते थे और सच बात तो यह थी कि किसी भी साधारण वस्तु को व्यर्थ के लिए हाँ-हाँ करके सम्मान देना शान्ता को नहीं आता था। किसी का दिल दुखाने वाला प्रश्न उसके सामने नहीं रहता था, जब वह समालोचना-पथ पर उतरती थी। रमेश बाबू के कुछ अंकों की भी बहुत कटु आलोचनाएँ शान्ता ने लिखकर रखी हुई थीं परन्तु अपने को कभी भी प्रकाश में लाने का प्रयत्न शान्ता ने नहीं किया। वह रचनात्मक कार्य करना पसन्द करती थी। इसीलिए उसने अपना क्षेत्र चुना शिक्षा-विभाग जहाँ से वह कुछ योग्य बच्चे भारत को दे सके।

"पूरा फाइल बनाकर भी तुमने कभी उस पर अपने विचार प्रकट नहीं किए शान्ता!" अमरनाथजी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा। अमरनाथजी ने शान्ता का आज वह रूप देखा जो स्वप्न में भी नहीं विचारा था।

"आप नहीं जानते कि मैं कभी पत्रों में प्रकाशनार्थ कोई चीज भेजना पसन्द नहीं करती। इसीलिए आलोचना या समालोचना सब मेरी डायरी में सुरक्षित हैं।" गम्भीरतापूर्वक शान्ता ने कहा।

रमा चुपचाप खड़ी यह सब सुन रही थी। अब उससे और अधिक न रहा गया क्योंकि उसने सुबह से जो परिश्रम किया था उसका मजा इस प्रकार की बातों में व्यर्थ के लिए नष्ट हो रहा था। इतने दिन के बिछुड़े हुए दो प्रेमियों के भावुकतापूर्ण सम्मिलन में किसी प्रकार की बाधा भी वह उपस्थित नहीं करना चाहती थी। एक ओर को शान्ता का मुँह करके रमेश बाबू की तरफ देखते हुए बोली, "मैंने कहा कि आप लोगों को क्या कुछ मेरे परिश्रम का भी ध्यान है? चलिए बाहर लॉन में चलिए, अब इस प्रकार की बातें वहीं पर बैठकर होंगी। 'इन्सान' पत्र की समालोचना शान्ता बहन ने क्या लिखी होगी जो मैं और रशीदा बहन बैठकर लिखेंगे।" रमा की बात सुनकर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े और रमेश बाबू यह कहते हुए कमरे से बाहर लॉन की तरफ चल दिए "बहुत अच्छा रमा देवी! बहुत अच्छा रमा देवी!" और उनके साथ ही साथ सब लॉन में पहुँच गए।

सबने आश्चर्य के साथ देखा कि वहाँ का तो नक्शा ही बदला हुआ था। शान्ता

भी इस प्रबन्ध को देखकर दंग रह गई कि रमा उनके साथ ही थी और उनका प्रबन्ध इतनी कुशलतापूर्वक हो रहा था।

"देखो शान्ता !" रमेश बाबू से कहे बिना न रहा गया, "यही तो है रमा की खूबी। हमें मालूम भी न हुआ और यहाँ पर सब प्रबन्ध भी हो चुका। रमा बहुत ही कुशल है इन कामों में। आज मैं तुम्हें एक बात और बतलाता हूँ शान्ता ! कि रमा हमेशा की ऐसी नहीं थी। जब मैं मंसूरी में पहुँचा तो उस समय यह बहुत नटखट थीं। एक दिन तो इसने मुझे वह जोर की टक्कर दी कि मैं कितनी ही देर तक सिर पकड़े बैठा रहा।" रमेश बाबू कहते जा रहे थे और शान्ता ध्यानपूर्वक बड़ी ही आनन्द लेकर सुन रही थी। रमा कुछ प्रबन्ध कार्य से अन्दर गई हुई थी। "बस उसी दिन मेरी और इनकी प्रथम भेंट हुई। इनकी कोठी मेरे बिलकुल बराबर थी। फिर नित्य का आना-जाना प्रारम्भ हो गया। रमा को शौक था, टेनिस खेलने का, बिलियर्ड खेलने का, सिनेमा देखने का, होटलों में जाने का, मित्रों के साथ घूमने का—यह सब शौक मानो इनके मेरे सम्पर्क में आते ही काफूर होते चले गए और रमा ने अपने उन शौकों को बड़ी ही कुशलतापूर्वक मेरी अपूर्णताओं को पूर्ण करने में लगा दिया। जीवन की जो व्यवस्था मैंने रमा में देखी उसमें मुझे तुम्हारी व्यवस्था की छाया मिली। सच कहता हूँ शान्ता कि मैंने रमा को शान्ता का रूप देकर जीवन में स्वीकार कर लिया था। यह तुम मेरी कमजोरी समझो या······" कहते-कहते रमेश बाबू का गला रुँध गया और मुँह में शब्द नहीं आए।

"आपने ठीक ही किया था रमेश बाबू !" मुस्कुराते हुए अविचल भाव से शान्ता ने कहा। "रमा वास्तव में इसी योग्य लड़की है और योग्य को सम्मान देना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। यदि मेरे जीवन में भी कोई ऐसा व्यक्ति आता तो कोई कारण नहीं था कि मैं उसका सम्मान न करती।" और यह कहते हुए शान्ता ने रमेश बाबू की गर्म हथेली अपने हाथ में ले ली। दोनों बराबर कुर्सियों पर बैठे थे। सामने से रमा आती दिखलाई दी। शान्ता ने रमा को देखकर कहा "रमा तुम बहुत बुरी हो। इतनी देर हो गई और तुम अन्दर ही जाकर बैठ गईं।"

"खैर मैं बुरी ही सही।" मुस्कुराकर रमा ने कहा, "परन्तु आप लोग इन चीजों को खराब करने पर क्यों तुले हैं ? आपने खाना क्यों नहीं प्रारम्भ किया ?"

"तब क्या यह सब कुछ हम दोनों के ही लिए है ?" आश्चर्य से शान्ता ने पूछा।

"फिर नहीं तो क्या ? प्रबन्ध सब के लिए है परन्तु खाने के स्थान पृथक्-पृथक् हैं।" रमा बोली।

"और तुम्हारा स्थान कहाँ है" शान्ता ने पूछा।

के बाद तो उसमें और भी सजीवता आ गई थी।

इसके पश्चात् रमेश बाबू ने शान्ता को अपने पत्र की फाइल दिखलाते हुए कहा "शान्ता यह है मेरी दिल्ली आने के बाद की जमा की हुई पूँजी।"

"यह फाइल मेरे पास भी आपसे कम पूर्ण नहीं हैं।" रमेश बाबू के मुख की तरफ देखकर शान्ता ने कहा "पहले अंक से लगाकर आज तक जितने भी अंक प्रकाशित हुए हैं, सभी मेरे पास सुरक्षित हैं।"

रमेश बाबू का सीना गर्व से कई अंगुल ऊपर को हो गया। शान्ता की सम्मति का वह पहले से ही बहुत मान किया करते थे और सच बात तो यह थी कि किसी भी साधारण वस्तु को व्यर्थ के लिए हाँ-हाँ करके सम्मान देना शान्ता को नहीं आता था। किसी का दिल दुखाने वाला प्रश्न उसके सामने नहीं रहता था, जब वह समालोचना-पथ पर उतरती थी। रमेश बाबू के कुछ अंकों की भी बहुत कटु आलोचनाएँ शान्ता ने लिखकर रखी हुई थीं परन्तु अपने को कभी भी प्रकाश में लाने का प्रयत्न शान्ता ने नहीं किया। वह रचनात्मक कार्य करना पसन्द करती थी। इसीलिए उसने अपना क्षेत्र चुना शिक्षा-विभाग जहाँ से वह कुछ योग्य बच्चे भारत को दे सके।

"पूरा फाइल बनाकर भी तुमने कभी उस पर अपने विचार प्रकट नहीं किए शान्ता!" अमरनाथजी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा। अमरनाथजी ने शान्ता का आज वह रूप देखा जो स्वप्न में भी नहीं विचारा था।

"आप नहीं जानते कि मैं कभी पत्रों में प्रकाशनार्थ कोई चीज भेजना पसन्द नहीं करती। इसीलिए आलोचना या समालोचना सब मेरी डायरी में सुरक्षित हैं।" गम्भीरतापूर्वक शान्ता ने कहा।

रमा चुपचाप खड़ी यह सब सुन रही थी। अब उससे और अधिक न रहा गया क्योंकि उसने सुबह से जो परिश्रम किया था उसका मजा इस प्रकार की बातों में व्यर्थ के लिए नष्ट हो रहा था। इतने दिन के बिछुड़े हुए दो प्रेमियों के भावुकतापूर्ण सम्मिलन में किसी प्रकार की बाधा भी वह उपस्थित नहीं करना चाहती थी। एक ओर को शान्ता का मुँह करके रमेश बाबू की तरफ देखते हुए बोली, "मैंने कहा कि आप लोगों को क्या कुछ मेरे परिश्रम का भी ध्यान है? चलिए बाहर लॉन में चलिए, अब इस प्रकार की बातें वहीं पर बैठकर होंगी। 'इन्सान' पत्र की समालोचना शान्ता बहन ने क्या लिखी होगी जो मैं और रशीदा बहन बैठकर लिखेंगे।" रमा की बात सुनकर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े और रमेश बाबू यह कहते हुए कमरे से बाहर लॉन की तरफ चल दिए "बहुत अच्छा रमा देवी! बहुत अच्छा रमा देवी!" और उनके साथ ही साथ सब लॉन में पहुँच गए।

सबने आश्चर्य के साथ देखा कि वहाँ का तो नक्शा ही बदला हुआ था। शान्ता

भी इस प्रबन्ध को देखकर दंग रह गई कि रमा उनके साथ ही थी और उनका प्रबन्ध इतनी कुशलतापूर्वक हो रहा था।

"देखो शान्ता !" रमेश बाबू से कहे बिना न रहा गया, "यही तो है रमा की खूबी। हमें मालूम भी न हुआ और यहाँ पर सब प्रबन्ध भी हो चुका। रमा बहुत ही कुशल है इन कामों में। आज मैं तुम्हें एक बात और बतलाता हूँ शान्ता ! कि रमा हमेशा की ऐसी नहीं थी। जब मैं मंसूरी में पहुँचा तो उस समय यह बहुत नटखट थीं। एक दिन तो इसने मुझे वह जोर की टक्कर दी कि मैं कितनी ही देर तक सिर पकड़े बैठा रहा।" रमेश बाबू कहते जा रहे थे और शान्ता ध्यानपूर्वक बड़ा ही आनन्द लेकर सुन रही थी। रमा कुछ प्रबन्ध कार्य से अन्दर गई हुई थी। "बस उसी दिन मेरी और इनकी प्रथम भेंट हुई। इनकी कोठी मेरे बिलकुल बराबर थी। फिर नित्य का आना-जाना प्रारम्भ हो गया। रमा को शौक था, टेनिस खेलने का, बिलि-यर्ड खेलने का, सिनेमा देखने का, होटलों में जाने का, मित्रों के साथ घूमने का—यह सब शौक मानो इनके मेरे सम्पर्क में आते ही काफूर होते चले गए और रमा ने अपने उन शौकों को बड़ी ही कुशलतापूर्वक मेरी अपूर्णताओं को पूर्ण करने में लगा दिया। जीवन की जो व्यवस्था मैंने रमा में देखी उसमें मुझे तुम्हारी व्यवस्था की छाया मिली। सच कहता हूँ शान्ता कि मैंने रमा को शान्ता का रूप देकर जीवन में स्वीकार कर लिया था। यह तुम मेरी कमजोरी समझो या......" कहते-कहते रमेश बाबू का गला रुँध गया और मुँह में शब्द नहीं आए।

"आपने ठीक ही किया था रमेश बाबू !" मुस्कुराते हुए अविचल भाव से शान्ता ने कहा। "रमा वास्तव में इसी योग्य लड़की है और योग्य को सम्मान देना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। यदि मेरे जीवन में भी कोई ऐसा व्यक्ति आता तो कोई कारण नहीं था कि मैं उसका सम्मान न करती।" और यह कहते हुए शान्ता ने रमेश बाबू की गर्म हथेली अपने हाथ में ले ली। दोनों बराबर कुर्सियों पर बैठे थे। सामने से रमा आती दिखलाई दी। शान्ता ने रमा को देखकर कहा "रमा तुम बहुत बुरी हो। इतनी देर हो गई और तुम अन्दर ही जाकर बैठ गईं।"

"खैर मैं बुरी ही सही।" मुस्कुराकर रमा ने कहा, "परन्तु आप लोग इन चीजों को खराब करने पर क्यों तुले हैं ? आपने खाना क्यों नहीं प्रारम्भ किया ?"

"तब क्या यह सब कुछ हम दोनों के ही लिए है ?" आश्चर्य से शान्ता ने पूछा।

"फिर नहीं तो क्या ? प्रबन्ध सब के लिए है परन्तु खाने के स्थान पृथक्-पृथक् हैं।" रमा बोली।

"और तुम्हारा स्थान कहाँ है" शान्ता ने पूछा।

"आप नहीं जानतीं कि प्रवन्धक का स्थान कब और कहाँ होता है शान्ता बहन ?" मुस्कुराकर रमा ने कहा।

"यह नहीं चलेगा। यदि इस प्रकार की बातें करोगी तो मैं चली जाऊँगी।" कहकर भूठमूठ ही शान्ता ने उठने का प्रयास किया, परन्तु रमा उन्हें बिठलाती हुई बोली, "अच्छा जीजी ! मैं भी बैठती हूँ।" कहकर वह सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई और उठाकर एक मोटा रसगुल्ला मुँह में रख लिया। उसे खा कर बोली, "लो खाना भी पहले मैंने ही प्रारम्भ कर दिया। अब तो आप लोग अपना व्रत खोलिए।"

रमेश बाबू और शान्ता ने भी मुस्कुराकर खाना प्रारम्भ कर दिया। खाने के पश्चात् शान्ता और रमेश बाबू के बीच आजाद का प्रसंग छिड़ गया और शान्ता कह उठी, "आपने आजाद भैया के विषय में क्या सोचा रमेश बाबू ?"

"हाँ ! मैं तो तुमसे कहने को ही था; मैंने आजाद का पूरा पता निकाल लिया है। चलो मैं और तुम खाना खाकर उसके पास चलते हैं।" साधारणतया रमेश बाबू ने कहा।

"जैसा आप उचित समझें, परन्तु परिस्थिति की गम्भीरता पर विचार कर लीजिए।" शान्ता बोली।

"मैं विचार कर चुका।" चलो सब कुशल ही होगा साहस के साथ रमेश बाबू ने कहा और फिर रमा की तरफ मुँह करके रमेश बाबू बोले, "अच्छा रमा ! हम जाते हैं और लौटने में कुछ देर हुई तो चिन्ता न करना।" इतना कहकर शान्ता और रमेश बाबू दोनों चल दिए। मार्ग में चलते हुए रमेश बाबू बोले, "और हाँ अपनी शान्ता बहन के लिए भी अपने कमरे में सोने का प्रबन्ध कर रखना।"

"उसकी आप चिन्ता न करें, परन्तु अपने कमरे में या आपके कमरे में ?" मुस्कुराकर रमा ने कहा और तिरछी नजर से शान्ता के मुख पर देखकर मुँह फेर लिया। शान्ता और रमेश बाबू भी मुस्कुरा दिए।

शान्ता और रमेश बाबू जाकर गाड़ी में बैठ गए। रमेश बाबू कार स्वयं चला रहे थे और शान्ता अपने आनन्द के स्वप्नलोक में, रमेश बाबू के पास वाली सीट पर बैठी, विचरण कर रही थी। शान्ता देख रही थी कि उसका जीवन यौवन, उसका आनन्द, उसकी अभिलाषा, उसकी मनोकाँक्षा, उसके सपने सब सजीव होकर उसके सामने आ गए। तेज चलती हुई मोटर में शान्ता के घुंघराले बालों की अलकें इधर-उधर को स्वच्छन्दतापूर्वक उड़ रही थीं। शान्ता जीवन का बिछुड़ा हुआ आनन्द लाभ कर रही थी और रमेश बाबू किसी विचार में निमग्न थे। अचानक रमेश बाबू कह उठे शान्ता, "मैं नहीं समझ सकता था कि मेरा आजाद इतना पागल भी हो सकता है।"

"यही मैं भी विचार करती थी, परन्तु कमला ने वास्तव में उसे पागल बना दिया है रमेश बाबू ! मैं सच कहती हूँ आपसे कि वह कमाल की लड़की है। बड़े काम की लड़की है। उसके सिर पर यह कम्यूनिज्म का जो फितूर सवार हुआ है इसने उसे खराब कर दिया है, वरना हीरा लड़की है। आपको लाखों में एक भी लड़की कमला जैसी नहीं मिल सकती।"

"यह बात है ?" आश्चर्य के साथ कमला की प्रशंसा सुनकर रमेश बाबू ने कहा।

"बिलकुल यही बात है। वह आपके बहुत काम की लड़की हो सकती है, बशर्ते कि उसके दिमाग से कम्यूनिज्म का भूत निकल जाए।"

"तुम कम्यूनिज्म से इतनी चिड़ती क्यों हो शान्ता।" रमेश बाबू ने शान्ता के मुख पर मुस्करान भरी दृष्टि डाल कर कहा।

"मैं कम्यूनिज्म के सिद्धान्तों को बुरा नहीं समझती, उनके तरीकों को, जो वे अपन सिद्धान्तों को सफल बनाने के लिए प्रयोग कर रहे हैं उन्हें गलत समझती हूँ। और देशों का मुझे ज्ञान नहीं, पुस्तकों का ज्ञान अपूर्ण रहता है, परन्तु भारत में जो कुछ मैं देख रही हूँ वह मुझे अच्छा नहीं लगता। हुल्लड़बाजी और गुंडा गर्दी का नाम तो कम्यूनिज्म नहीं कहा जा सकता। केवल हड़ताल कराने से ही तो मजदूरों का हित नहीं हो सकता, विपक्षी का गला घोंट कर ही उसकी आवाज को बन्द नहीं किया जा सकता, और भी तो अच्छे मार्ग खोजे जा सकते हैं। हो सकता है रूस में यह मार्ग सफल रहा हो, परन्तु भारत में भी यह सफल होगा, इसके विषय में मुझे पूरा-पूरा सन्देह है।" शान्ता गम्भीरतापूर्वक कह रही थी कि गाड़ी एक मोड़ पर मुड़कर सीधे हाथ वाली गली में घुस गई और केवल पाँच द्वार आगे बढ़कर रुक गई।

"क्यों क्या यहीं आना था हमें ?" शान्ता ने पूछा।

"हाँ" रमेश बाबू ने गम्भीरतापूर्वक कहा और फिर बोले, "तुम यहीं गाड़ी में बैठी रहो शान्ता !" और स्वयं कार का दरवाजा खोलकर सड़क पर उतर पड़े। शान्ता रुक न सकी और साथ ही साथ दूसरी ओर का द्वार खोलते हुए बोली, "नहीं रमेश बाबू ! मैं आपके साथ चलूंगी, अकेला आपको नहीं जाने दूंगी।" और साथ-साथ हो ली।

रमेश बाबू ने आगे बढ़कर द्वार खटखटाया और एक क्षण पश्चात् एक व्यक्ति ने आकर द्वार खोला। द्वार खोलने वाला व्यक्ति सरदार करमसिंह था। वह रमेश बाबू को इस प्रकार वहाँ देखकर हक्का-बक्का-सा रह गया और उसकी समझ में ही न आया कि वह क्या करे ? एक टक रमेश बाबू का मुँह ताकता रहा, मानो उसने कोई रमेश बाबू का बड़ा भारी अपराध किया था और अब इस प्रकार चोर की भाँति

"आप नहीं जानतीं कि प्रवन्धक का स्थान कब और कहाँ होता है शान्ता बहन ?" मुस्कुराकर रमा ने कहा।

"यह नहीं चलेगा। यदि इस प्रकार की बातें करोगी तो मैं चली जाऊँगी।" कहकर झूठमूठ ही शान्ता ने उठने का प्रयास किया, परन्तु रमा उन्हें बिठलाती हुई बोली, "अच्छा जीजी ! मैं भी बैठती हूँ।" कहकर वह सामने वाली कुर्सी पर बैठ गई और उठाकर एक मोटा रसगुल्ला मुँह में रख लिया। उसे खा कर बोली, "लो खाना भी पहले मैंने ही प्रारम्भ कर दिया। अब तो आप लोग अपना व्रत खोलिए।"

रमेश बाबू और शान्ता ने भी मुस्कुराकर खाना प्रारम्भ कर दिया। खाने के पश्चात् शान्ता और रमेश बाबू के बीच आजाद का प्रसंग छिड़ गया और शान्ता कह उठी, "आपने आजाद भैया के विषय में क्या सोचा रमेश बाबू ?"

"हाँ ! मैं तो तुमसे कहने को ही था ; मैंने आजाद का पूरा पता निकाल लिया है। चलो मैं और तुम खाना खाकर उसके पास चलते हैं।" साधारणतया रमेश बाबू ने कहा।

"जैसा आप उचित समझें, परन्तु परिस्थिति की गम्भीरता पर विचार कर लीजिए।" शान्ता बोली।

"मैं विचार कर चुका।" चलो सब कुशल ही होगा साहस के साथ रमेश बाबू ने कहा और फिर रमा की तरफ मुँह करके रमेश बाबू बोले, "अच्छा रमा ! हम जाते हैं और लौटने में कुछ देर हुई तो चिन्ता न करना।" इतना कहकर शान्ता और रमेश बाबू दोनों चल दिए। मार्ग में चलते हुए रमेश बाबू बोले, "और हाँ अपनी शान्ता बहन के लिए भी अपने कमरे में सोने का प्रबन्ध कर रखना।"

"उसकी आप चिन्ता न करें, परन्तु अपने कमरे में या आपके कमरे में ?" मुस्कुराकर रमा ने कहा और तिरछी नजर से शान्ता के मुख पर देखकर मुँह फेर लिया। शान्ता और रमेश बाबू भी मुस्कुरा दिए।

शान्ता और रमेश बाबू जाकर गाड़ी में बैठ गए। रमेश बाबू कार स्वयं चला रहे थे और शान्ता अपने आनन्द के स्वप्नलोक में, रमेश बाबू के पास वाली सीट पर बैठी, विचरण कर रही थी। शान्ता देख रही थी कि उसका जीवन यौवन, उसका आनन्द, उसकी अभिलाषा, उसकी मनोकाँक्षा, उसके सपने सब सजीव होकर उसके सामने आ गए। तेज चलती हुई मोटर में शान्ता के घुंघराले बालों की अलकें इधर-उधर को स्वच्छन्दतापूर्वक उड़ रही थी। शान्ता जीवन का बिछुड़ा हुआ आनन्द लाभ कर रही थी और रमेश बाबू किसी विचार में निमग्न थे। अचानक रमेश बाबू कह उठे शान्ता, "मैं नहीं समझ सकता था कि मेरा आजाद इतना पागल भी हो सकता है।"

"यही मैं भी विचार करती थी, परन्तु कमला ने वास्तव में उसे पागल बना दिया है रमेश बाबू ! मैं सच कहती हूँ आपसे कि वह कमाल की लड़की है। बड़े काम की लड़की है। उसके सिर पर यह कम्यूनिज्म का जो फितूर सवार हुआ है इसने उसे खराब कर दिया है, वरना हीरा लड़की है। आपको लाखों में एक भी लड़की कमला जैसी नहीं मिल सकती।"

"यह बात है ?" आश्चर्य के साथ कमला की प्रशंसा सुनकर रमेश बाबू ने कहा।

"बिलकुल यही बात है। वह आपके बहुत काम की लड़की हो सकती है, बशर्ते कि उसके दिमाग से कम्यूनिज्म का भूत निकल जाए।"

"तुम कम्यूनिज्म से इतनी चिड़ती क्यों हो शान्ता।" रमेश बाबू ने शान्ता के मुख पर मुस्करान भरी दृष्टि डाल कर कहा।

"मैं कम्यूनिज्म के सिद्धान्तों को बुरा नहीं समझती, उनके तरीकों को, जो वे अपन सिद्धान्तों को सफल बनाने के लिए प्रयोग कर रहे हैं उन्हें गलत समझती हूँ। और देशों का मुझे ज्ञान नहीं, पुस्तकों का ज्ञान अपूर्ण रहता है, परन्तु भारत में जो कुछ मैं देख रही हूँ वह मुझे अच्छा नहीं लगता। हुल्लड़बाजी और गुंडा गर्दी का नाम तो कम्यूनिज्म नहीं कहा जा सकता। केवल हड़ताल कराने से ही तो मजदूरों का हित नहीं हो सकता, विपक्षी का गला घोंट कर ही उसकी आवाज को बन्द नहीं किया जा सकता, और भी तो अच्छे मार्ग खोजे जा सकते हैं। हो सकता है रूस में यह मार्ग सफल रहा हो, परन्तु भारत में भी यह सफल होगा, इसके विषय में मुझे पूरा-पूरा सन्देह है।" शान्ता गम्भीरतापूर्वक कह रही थी कि गाड़ी एक मोड़ पर मुड़कर सीधे हाथ वाली गली में घुस गई और केवल पाँच द्वार आगे बढ़कर रुक गई।

"क्यों क्या यहीं आना था हमें ?" शान्ता ने पूछा।

"हाँ" रमेश बाबू ने गम्भीरतापूर्वक कहा और फिर बोले, "तुम यहीं गाड़ी में बैठी रहो शान्ता !" और स्वयं कार का दरवाजा खोलकर सड़क पर उतर पड़े। शान्ता रुक न सकी और साथ ही साथ दूसरी ओर का द्वार खोलते हुए बोली, "नहीं रमेश बाबू ! मैं आपके साथ चलूंगी, अकेला आपको नहीं जाने दूंगी।" और साथ-साथ हो ली।

रमेश बाबू ने आगे बढ़कर द्वार खटखटाया और एक क्षण पश्चात् एक व्यक्ति ने आकर द्वार खोला। द्वार खोलने वाला व्यक्ति सरदार करमसिंह था। वह रमेश बाबू को इस प्रकार वहाँ देखकर हक्का-बक्का-सा रह गया और उसकी समझ में ही न आया कि वह क्या करे ? एक टक रमेश बाबू का मुँह ताकता रहा, मानो उसने कोई रमेश बाबू का बड़ा भारी अपराध किया था और अब इस प्रकार चोर की भाँति

पकड़े जाने पर उसके पैरों के नीचे की जमीन निकली जा रही थी। रमेश बाबू ने अधिक इन्तजार नहीं किया और वह दनदनाते हुए अन्दर घुस गए। शान्ता उनके पीछे-पीछे थी।

वहाँ की दशा बहुत विचित्र थी। आजाद एक तरफ पड़ा था, शायद बुखार था उसे और कमला एक तरफ। दोनों की शकलें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि शायद इन दोनों में कुछ खटपट हो गई है। रमेश बाबू ने आगे बढ़कर बहुत स्थिर आवाज में कहा, "आजाद !" और आजाद एकदम रमेश बाबू का शब्द कानों में पड़ते ही उठकर बैठा हो गया। आजाद को ऐसा लगा कि मानों डूबते को सहारा मिल गया। वह भाग कर रमेश बाबू से लिपट जाना चाहता था परन्तु रमेश बाबू ने कहा, "अभी नहीं आजाद ! पहले तुम्हें अपना कर्तव्य पूरा करना होगा।"

आजाद वहीं पर सहम गया। कमला भी यह दृश्य बड़ी उत्सुकता से देख रही थी। फिर रमेश बाबू ने कमला की तरफ मुँह किया और उतनी ही गम्भीर आवाज में बोले, "कमलादेवी ! आपने मुझे नहीं पहचाना होगा, और न आप पहचान ही सकती हैं, परन्तु मैं आपको पहचानता हूँ !"

इतना कह कर रमेश बाबू ने अपनी जेब से एक रिवालवर निकाला और उसे आजाद और कमला के बीच में फेंकते हुए कहा, "यह लीजिए रिवालवर और जिस काम को करने के लिए आप लोग इतने दिन से परेशान थे उसे कर डालिए। मैं ही हूँ 'इन्सान' का संचालक 'रमेश'। इतना कहकर रमेश बाबू ने अपने कुर्ते के बटन खोल दिए। "गोली मारिए, आपके सिद्धान्तों की पूर्ति होगी।" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू एक कदम आगे बढ़कर बोले।

कमला और आजाद ठगे से रह गए। कमला ने इतना बड़ा व्यक्तित्व अभी तक नहीं देखा था, इसलिए वह सहम कर अपने ही स्थान पर बैठी रह गई और बैठे-बैठे उसकी आँखें पथराने लगीं। कमला की दशा खराब थी। स्वास्थ्य उसका बहुत खराब हो चुका था। वास्तव में वह आधी पागल हो गई थी। रिवालवर की तरफ एक दृष्टि उसने डाली और फिर रमेश बाबू की तरफ। पीछे शान्ता खड़ी थी। उसे कुछ न सूझा और वह चिल्लाकर "शान्ता बहन !" कहती हुई खड़ी होकर शान्ता से लिपट गई। शान्ता ने भी स्नेह से कमला को सँभाला और उसके अचेत होकर गिरने से पूर्व ही उसे अंक में भर लिया। आजाद "रमेश भैया" कह कर रमेश बाबू के पैरों से लिपट गया।

यह दृश्य अभी पूरी तरह समाप्त भी न हो पाया था कि अचानक पुलिस ने इस मकान को घेर लिया और कमला तथा आजाद दोनों को बन्दी बना लिया गया। बन्दी होने में किसी को भी कुछ संकोच न हुआ। आजाद ने विदा होते समय कहा,

"अच्छा भैया रमेश ! फिर मिलेंगे, अब चले" और कमला को अचेतन अवस्था में ही पुलिस ले गई। शान्ता भी कमला के ही साथ चली गई, इसमें पुलिस ने कोई आपत्ति नहीं की।

कमला की दशा खराब थी और दिन-प्रति-दिन खराब ही होती जा रही थी। इसलिए रमेश बाबू की जमानत पर उसे मुक्त कर दिया गया। आजाद भी जमानत पर छूट अवश्य गया, परन्तु मुकदमा उस पर बराबर चलता रहा।

शान्ता कमला को अपने मकान पर ले गई और वहाँ कमला की सेवा का भार अमरनाथजी ने अपने हाथों में लिया। सरदार करमसिंहजी भी नियमित रूप से उसे देखने आते थे और दो-चार बार उजागरमलजी भी आए परन्तु कमला की दशा में कोई तबदीली नहीं हो रही थी। कमला के घरवालों ने कई बार उसे अपने घर ले जाने का आग्रह किया, परन्तु कमला नहीं मानीं और वह शान्ता के ही मकान पर रही।

एक दिन एकान्त में जब शान्ता अपने कॉलेज को गई हुई थी तो कमला ने अमरनाथजी का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, "अमरनाथजी ? क्या वास्तव में आप मुझे आज भी उतना ही प्यार करते हैं ?" इतना कहकर कमला की आँखों से दो गर्म-गर्म आँसू की बूंदें निकलकर अमरनाथजी की गोद में गिर पड़ीं।

"प्रेम कहने की बात नहीं कमला ! अनुभव करने की वस्तु है। मैंने तुम्हारे मार्ग को गलत समझते हुए भी तुमको अपनी दृष्टि से नहीं गिराया। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम्हारे सिद्धान्त को नहीं। व्यक्ति से सिद्धान्त बड़ी चीज है इसीलिए हम दोनों को अपना-अपना जीवन-पथ बदलना पड़ा। में जानता था कि तुम अपनी हठ छोड़ने वाली नहीं हो, इसीलिए मैंने जीवन-नौका को भाग्य के सहारे छोड़कर जीवन को नैराश्य के हाथों में सौंप दिया।" गम्भीरतापूर्वक कमला के बालों में ऊंगलियाँ डालकर सहलाते हुए अमरनाथजी बोले।

"और रशीदा !" कहकर कमला ने प्रश्न सूचक दृष्टि से अमरनाथजी के मुख पर दृष्टि डाली।

"रशीदा एक योग्य और चतुर लड़की है। उसने अपने को मेरे योग्य साबित करने में कुछ भी उठा नहीं रखा, परन्तु मैं उसे प्यार करने का प्रयास करने पर भी प्यार न कर सका। मैंने जीवन में अभिनय करने का प्रयत्न किया परन्तु वह मैं कर न सका और मेरा प्रयत्न असफल रहा।" अमरनाथजी बोले।

कमला का ढाँचा एक बार प्यार से सजीव हो उठा और अमरनाथजी ने भी फिर कमला को, "मेरी कमला कहकर प्यार से अंक में भर लिया।" उस दिन से कमला का स्वास्थ्य सुधरने लगा। रमेश बाबू ने अमरनाथजी को एक मास की छुट्टी देकर देहरादून रहने के लिए भेज दिया। उस दिन से कमला ने राजनीति की ओर से

पकड़े जाने पर उसके पैरों के नीचे की जमीन निकली जा रही थी। रमेश बाबू ने अधिक इन्तजार नहीं किया और वह दनदनाते हुए अन्दर घुस गए। शान्ता उनके पीछे-पीछे थी।

वहाँ की दशा बहुत विचित्र थी। आजाद एक तरफ पड़ा था, शायद बुखार था उसे और कमला एक तरफ। दोनों की शकलें देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि शायद इन दोनों में कुछ खटपट हो गई है। रमेश बाबू ने आगे बढ़कर बहुत स्थिर आवाज में कहा, "आजाद !" और आजाद एकदम रमेश बाबू का शब्द कानों में पड़ते ही उठकर बैठा हो गया। आजाद को ऐसा लगा कि मानों डूबते को सहारा मिल गया। वह भाग कर रमेश बाबू से लिपट जाना चाहता था परन्तु रमेश बाबू ने कहा, "अभी नहीं आजाद ! पहले तुम्हें अपना कर्तव्य पूरा करना होगा।"

आजाद वहीं पर सहम गया। कमला भी यह दृश्य बड़ी उत्सुकता से देख रही थी। फिर रमेश बाबू ने कमला की तरफ मुँह किया और उतनी ही गम्भीर आवाज में बोले, "कमलादेवी ! आपने मुझे नहीं पहचाना होगा, और न आप पहचान ही सकती हैं, परन्तु मैं आपको पहचानता हूँ !"

इतना कह कर रमेश बाबू ने अपनी जेब से एक रिवालवर निकाला और उसे आजाद और कमला के बीच में फेंकते हुए कहा, "यह लीजिए रिवालवर और जिस काम को करने के लिए आप लोग इतने दिन से परेशान थे उसे कर डालिए। मैं ही हूँ 'इन्सान' का संचालक 'रमेश'। इतना कहकर रमेश बाबू ने अपने कुर्ते के बटन खोल दिए। "गोली मारिए, आपके सिद्धान्तों की पूर्ति होगी।" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू एक कदम आगे बढ़कर बोले।

कमला और आजाद ठगे से रह गए। कमला ने इतना बड़ा व्यक्तित्व अभी तक नहीं देखा था, इसलिए वह सहम कर अपने ही स्थान पर बैठी रह गई और बैठे-बैठे उसकी आँखें पथराने लगीं। कमला की दशा खराब थी। स्वास्थ्य उसका बहुत खराब हो चुका था। वास्तव में वह आधी पागल हो गई थी। रिवालवर की तरफ एक दृष्टि उसने डाली और फिर रमेश बाबू की तरफ। पीछे शान्ता खड़ी थी। उसे कुछ न सूझा और वह चिल्लाकर "शान्ता बहन !" कहती हुई खड़ी होकर शान्ता से लिपट गई। शान्ता ने भी स्नेह से कमला को सँभाला और उसके अचेत होकर गिरने से पूर्व ही उसे अँक में भर लिया। आजाद "रमेश भैया" कह कर रमेश बाबू के पैरों से लिपट गया।

यह दृश्य अभी पूरी तरह समाप्त भी न हो पाया था कि अचानक पुलिस ने इस मकान को घेर लिया और कमला तथा आजाद दोनों को बन्दी बना लिया गया। बन्दी होने में किसी को भी कुछ संकोच न हुआ। आजाद ने विदा होते समय कहा,

"अच्छा भैया रमेश ! फिर मिलेंगे, अब चले" और कमला को अचेतन अवस्था में ही पुलिस ले गई। शान्ता भी कमला के ही साथ चली गई, इसमें पुलिस ने कोई आपत्ति नहीं की।

कमला की दशा खराव थी और दिन-प्रति-दिन खराव ही होती जा रही थी। इसलिए रमेश वावू की जमानत पर उसे मुक्त कर दिया गया। आजाद भी जमानत पर छूट अवश्य गया, परन्तु मुकदमा उस पर वरावर चलता रहा।

शान्ता कमला को अपने मकान पर ले गई और वहाँ कमला की सेवा का भार अमरनाथजी ने अपने हाथों में लिया। सरदार करमसिंहजी भी नियमित रूप से उसे देखने आते थे और दो-चार वार उजागरमलजी भी आए परन्तु कमला की दशा में कोई तवदीली नहीं हो रही थी। कमला के घरवालों ने कई वार उसे अपने घर ले जाने का आग्रह किया, परन्तु कमला नहीं मानीं और वह शान्ता के ही मकान पर रही।

एक दिन एकान्त में जब शान्ता अपने कॉलेज को गई हुई थी तो कमला ने अमरनाथजी का हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, "अमरनाथजी ? क्या वास्तव में आप मुझे आज भी उतना ही प्यार करते हैं ?" इतना कहकर कमला की आँखों से दो गर्म-गर्म आँसू की बूँदें निकलकर अमरनाथजी की गोद में गिर पड़ीं।

"प्रेम कहने की वात नहीं कमला ! अनुभव करने की वस्तु है। मैंने तुम्हारे मार्ग को गलत समझते हुए भी तुमको अपनी दृष्टि से नहीं गिराया। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, तुम्हारे सिद्धान्त को नहीं। व्यक्ति से सिद्धान्त वड़ी चीज है इसीलिए हम दोनों को अपना-अपना जीवन-पथ वदलना पड़ा। मैं जानता था कि तुम अपनी हठ छोड़ने वाली नहीं हो, इसीलिए मैंने जीवन-नौका को भाग्य के सहारे छोड़कर जीवन को नैराश्य के हाथों में सौंप दिया।" गम्भीरतापूर्वक कमला के वालों में ऊंगलियाँ डालकर सहलाते हुए अमरनाथजी वोले।

"और रशीदा !" कहकर कमला ने प्रश्न सूचक दृष्टि से अमरनाथजी के मुख पर दृष्टि डाली।

"रशीदा एक योग्य और चतुर लड़की है। उसने अपने को मेरे योग्य सावित करने में कुछ भी उठा नहीं रखा, परन्तु मैं उसे प्यार करने का प्रयास करने पर भी प्यार न कर सका। मैंने जीवन में अभिनय करने का प्रयत्न किया परन्तु वह मैं कर न सका और मेरा प्रयत्न असफल रहा।" अमरनाथजी वोले।

कमला का ढाँचा एक वार प्यार से सजीव हो उठा और अमरनाथजी ने भी फिर कमला को, "मेरी कमला कहकर प्यार से अंक में भर लिया।" उस दिन से कमला का स्वास्थ्य सुधरने लगा। रमेश वावू ने अमरनाथजी को एक मास की छुट्टी देकर देहरादून रहने के लिए भेज दिया। उस दिन से कमला ने राजनीति की ओर से

गृहस्थ की ओर अपना मन लगाया और एक मास बाद जब वह देहली लौटकर आई तो रमेश बाबू ने देखा कि कमला में वही चपलता थी जो उन्होंने लक्ष्मी रैस्टोरेण्ट में प्रथम बार देखी थी। वही जीवन था, वही मादकता, जिसकी प्रत्येक थिरकन के सम्मुख सरदार करमसिंहजी और उजागरमलजी अपने भावुक हृदयों को मसोस कर रह जाते थे। राजनीति कमला के लिए कोई घृणा की वस्तु नहीं हो गई परन्तु उसका जीवन केवल राजनीति के ही लिए हो, ऐसी बात नहीं रह गई थी। आज कमला का जीवन था आनन्दपूर्वक दुनिया को दुनिया मानकर जीने के लिए। कमला के विचारों ने अमरनाथजी की लेखनी को वह तीखापन प्रदान किया कि अमरनाथजी की लेखनी चमक उठी। जहाँ पहले केवल रमेश बाबू के ही लेखों के कारण 'इन्सान' पत्र की माँग होती थी वहाँ अब अमरनाथजी के लेखों के वास्ते भी यह पत्र कम संख्या में नहीं बिकता था। कमला के मिल जाने से अमरनाथजी के लेखों में अपनापन आ गया और पाठकों ने स्पष्ट रूप से देखा कि पत्र दो तीव्र धाराओं में पहले से भी अधिक सजीवता के साथ बह रहा था।

रमेश बाबू ने अमरनाथजी की यह प्रगति स्पष्ट रूप से देखी और उन्हें शान्ता के वे शब्द याद आगए जब उसने कहा था कि—कमला उनके लिए बड़े काम की लड़की हो सकती है। रमेश बाबू मान गए कि शान्ता भी किसी व्यक्तित्व के अध्ययन में अपना विपक्षी नहीं रखती। जो मत किसी व्यक्ति के विषय में शान्ता ने दे दिया बस अटल था, सत्य था और उसमें कोई गलती नहीं हो सकती थी। अमरनाथजी के विचारों की प्रगति से रमेश बाबू बहुत सन्तुष्ट थे परन्तु फिर भी वह सर्वदा ही अमरनाथजी को सीमा उलंघन करने से रोकते रहते थे और अमरनाथजी का यह स्वभाव बनता जा रहा था कि यों साधारणतया वह रमेश बाबू के पथ पर चलते थे और इनके कथन का उल्लंघन करने में उन्हें कष्ट होता था परन्तु फिर भी कठोर सत्य पर परदा डालना अमरनाथजी की शक्ति से बाहर की बात थी। अमरनाथजी अब कभी-कभी रमेश बाबू के मत का खण्डन भी कर डालते थे परन्तु रमेश बाबू को कभी उन्होंने क्रुद्ध होते नहीं पाया। रमेश बाबू जब कभी यह समझते कि अमरनाथजी का यह मत गलत है तो हँसकर टाल देते थे और और वह भी समझने पर कि उनका मत गलत था अपनी गलती मानने के लिए उद्यत हो जाते थे।

'इन्सान' पत्र अपने स्वतन्त्र विचारों से बहुत शान के साथ चल रहा था। न उसमें कांग्रेस की गलतियों पर लीपापोती होती थी और न कम्यूनिस्टों की ध्वंसात्मक नीति का ही अनुसरण किया जाता था। वह था भारत की राजधानी से निकलने वाला एक ऐसा पत्र जिसका मुख्य उद्देश्य भारत को पार्टीबाजी के बखेड़े में फँसाना न होकर भारत की जनता को एक ठीक सही मार्ग दिखलाना था। इस पत्र में प्रत्येक गलत चीज की समुचित आलोचना की जाती थी और इस आलोचना से सरकार

भी बचकर निकल जाती हो ऐसी बात नहीं थी। अमरनाथजी के प्रखर लेखों की भारत में धूम मच गई और पत्र की संख्या दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ने लगी।

आजाद बाबू जिन्हें पिछले अभियोगों में छः मास की सजा हो गई थी जब लौट कर आए तो वह रमेश बाबू के पैर पकड़ते हुए बोले, "भैया मुझे क्षमा कर दो। मैं जो पाप करने जा रहा था वह बिलकुल अज्ञानवश था।"

"यह मैं जानता हूँ आजाद ! मुझे खेद है कि मैं तुम्हें प्रयत्न करने पर भी जेल जाने से न बचा सका। कमला का मस्तिष्क ठीक न होने के कारण मैं उसे बचाने में सफल हो गया।" यह कहते हुए रमेश बाबू ने आजाद को उठाकर छाती से लगा लिया।

"अब मैं भैया यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगा"। सामने कुर्सी पर बैठते हुए आजाद ने कहा।

"जो तुम चाहोगे वही होगा आजाद !" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू बोले, "और मैंने तुम्हारे लिए एक सुन्दर-सी दुलहन भी खोज रखी है।" मुस्कुराकर रमेश बाबू बोले।

आजाद ने भी मुस्कुराकर सिर नीचा कर लिया। रशीदा आजाद को पहले से ही पसन्द थी और रशीदा भी पहले से आजाद को पसन्द कर चुकी थी। रमेश बाबू ने आजाद और रशीदा का विवाह आपस में करा दिया।

शान्ता के पास कालेज का काम इतना अधिक था कि वह उसे छोड़कर विवाह का भार सिर पर लेने के लिए उद्यत नहीं थी और रमेश बाबू के ऊपर भी 'इन्सान' का उत्तरदायित्व कम नहीं था। रमा किसी समय भी याद करने पर आने का शान्ता और रमेश बाबू से वायदा करके अकेले अपने पिताजी की देखभाल के लिए मंसूरी चली गई। रमा के चलते समय शान्ता और रमेश बाबू दोनों की आँखों में आँसू थे। तीनों व्यक्ति अपनी-अपनी राह पर चल दिए।

गृहस्थ की ओर अपना मन लगाया और एक मास बाद जब वह देहली लौटकर आई तो रमेश बाबू ने देखा कि कमला में वही चपलता थी जो उन्होंने लक्ष्मी रैस्टोरेण्ट में प्रथम बार देखी थी। वही जीवन था, वही मादकता, जिसकी प्रत्येक थिरकन के सम्मुख सरदार करमसिंहजी और उजागरमलजी अपने भावुक हृदयों को मसोस कर रह जाते थे। राजनीति कमला के लिए कोई घृणा की वस्तु नहीं हो गई परन्तु उसका जीवन केवल राजनीति के ही लिए हो, ऐसी बात नहीं रह गई थी। आज कमला का जीवन था आनन्दपूर्वक दुनिया को दुनिया मानकर जीने के लिए। कमला के विचारों ने अमरनाथजी की लेखनी को वह तीखापन प्रदान किया कि अमरनाथजी की लेखनी चमक उठी। जहाँ पहले केवल रमेश बाबू के ही लेखों के कारण 'इन्सान' पत्र की माँग होती थी वहाँ अब अमरनाथजी के लेखों के वास्ते भी यह पत्र कम संख्या में नहीं बिकता था। कमला के मिल जाने से अमरनाथजी के लेखों में अपनापन आ गया और पाठकों ने स्पष्ट रूप से देखा कि पत्र दो तीव्र धाराओं में पहले से भी अधिक सजीवता के साथ बह रहा था।

रमेश बाबू ने अमरनाथजी की यह प्रगति स्पष्ट रूप से देखी और उन्हें शान्ता के वे शब्द याद आगए जब उसने कहा था कि—कमला उनके लिए बड़े काम की लड़की हो सकती है। रमेश बाबू मान गए कि शान्ता भी किसी व्यक्तित्व के अध्ययन में अपना विपक्षी नहीं रखती। जो मत किसी व्यक्ति के विषय में शान्ता ने दे दिया बस अटल था, सत्य था और उसमें कोई गलती नहीं हो सकती थी। अमरनाथजी के विचारों की प्रगति से रमेश बाबू बहुत सन्तुष्ट थे परन्तु फिर भी वह सर्वदा ही अमरनाथजी को सीमा उलंघन करने से रोकते रहते थे और अमरनाथजी का यह स्वभाव बनता जा रहा था कि यों साधारणतया वह रमेश बाबू के पथ पर चलते थे और इनके कथन का उल्लंघन करने में उन्हें कष्ट होता था परन्तु फिर भी कठोर सत्य पर परदा डालना अमरनाथजी की शक्ति से बाहर की बात थी। अमरनाथजी अब कभी-कभी रमेश बाबू के मत का खण्डन भी कर डालते थे परन्तु रमेश बाबू को कभी उन्होंने क्रुद्ध होते नहीं पाया। रमेश बाबू जब कभी यह समझते कि अमरनाथजी का यह मत गलत है तो हँसकर टाल देते थे और और वह भी समझने पर कि उनका मत गलत था अपनी गलती मानने के लिए उद्यत हो जाते थे।

'इन्सान' पत्र अपने स्वतन्त्र विचारों से बहुत शान के साथ चल रहा था। न उसमें कांग्रेस की गलतियों पर लीपापोती होती थी और न कम्यूनिस्टों की ध्वंसात्मक नीति का ही अनुसरण किया जाता था। वह था भारत की राजधानी से निकलने वाला एक ऐसा पत्र जिसका मुख्य उद्देश्य भारत को पार्टीबाजी के बखेड़े में फँसाना न होकर भारत की जनता को एक ठीक सही मार्ग दिखलाना था। इस पत्र में प्रत्येक गलत चीज की समुचित आलोचना की जाती थी और इस आलोचना से सरकार

भी बचकर निकल जाती हो ऐसी बात नहीं थी। अमरनाथजी के प्रखर लेखों की भारत में धूम मच गई और पत्र की संख्या दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ने लगी।

आजाद बाबू जिन्हें पिछले अभियोगों में छः मास की सजा हो गई थी जब लौट कर आए तो वह रमेश बाबू के पैर पकड़ते हुए बोले, "भैया मुझे क्षमा कर दो। मैं जो पाप करने जा रहा था वह बिलकुल अज्ञानवश था।"

"यह मैं जानता हूँ आजाद ! मुझे खेद है कि मैं तुम्हें प्रयत्न करने पर भी जेल जाने से न बचा सका। कमला का मस्तिष्क ठीक न होने के कारण मैं उसे बचाने में सफल हो गया।" यह कहते हुए रमेश बाबू ने आजाद को उठाकर छाती से लगा लिया।

"अब मैं भैया यहाँ से कहीं नहीं जाऊँगा"। सामने कुर्सी पर बैठते हुए आजाद ने कहा।

"जो तुम चाहोगे वही होगा आजाद !" गम्भीरतापूर्वक रमेश बाबू बोले, "और मैंने तुम्हारे लिए एक सुन्दर-सी दुलहन भी खोज रखी है।" मुस्कुराकर रमेश बाबू बोले।

आजाद ने भी मुस्कुराकर सिर नीचा कर लिया। रशीदा आजाद को पहले से ही पसन्द थी और रशीदा भी पहले से आजाद को पसन्द कर चुकी थी। रमेश बाबू ने आजाद और रशीदा का विवाह आपस में करा दिया।

शान्ता के पास कालेज का काम इतना अधिक था कि वह उसे छोड़कर विवाह का भार सिर पर लेने के लिए उद्यत नहीं थी और रमेश बाबू के ऊपर भी 'इन्सान' का उत्तरदायित्व कम नहीं था। रमा किसी समय भी याद करने पर आने का शान्ता और रमेश बाबू से वायदा करके अकेले अपने पिताजी की देखभाल के लिए मंसूरी चली गई। रमा के चलते समय शान्ता और रमेश बाबू दोनों की आँखों में आँसू थे। तीनों व्यक्ति अपनी-अपनी राह पर चल दिए।